

॥श्रीराम॥

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचित

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

॥श्रीहरिः॥

श्रीरामचरितमानस की विषय-सूची

अयोध्या काण्ड

- मंगलाचरण
- राम राज्याभिषेक की तैयारी, देवताओं की व्याकूलता तथा सरस्वती से उनकी प्रार्थना
- सरस्वती का मन्थरा की बुद्धि फेरना, कैकेयी-मन्थरा संवाद, प्रजा में खुशी
- कैकेयी का कोपभवन में जाना
- दशरथ-कैकेयी संवाद और दशरथ शोक, सुमन्त्र का महल में जाना और वहाँ से लौटकर श्री रामजी को महल में भेजना
- श्री राम-कैकेयी संवाद
- श्री राम-दशरथ संवाद, अवधवासियों का विषाद, कैकेयी को समझाना
- श्री राम-कौसल्या संवाद
- श्री सीता-राम संवाद
- श्री राम-कौसल्या-सीता संवाद
- श्री राम-लक्ष्मण संवाद
- श्री लक्ष्मण-सुमित्रा संवाद
- श्री रामजी, लक्ष्मणजी, सीताजी का महाराज दशरथ के पास विदा माँगने जाना, दशरथजी का सीताजी को समझाना
- श्री राम-सीता-लक्ष्मण का वन गमन और नगर निवासियों को सोए छोड़कर आगे बढ़ना
- श्री राम का श्रृंगवेरपुर पहुँचना, निषाद के द्वारा सेवा
- लक्ष्मण-निषाद संवाद, श्री राम-सीता से सुमन्त्र का संवाद, सुमन्त्र का लौटना
- केवट का प्रेम और गंगा पार जाना
- प्रयाग पहुँचना, भरद्वाज संवाद, यमुनातीर निवासियों का प्रेम
- तापस प्रकरण
- यमुना को प्रणाम, वनवासियों का प्रेम
- श्री राम-वाल्मीकि संवाद
- चित्रकूट में निवास, कोल-भीलों के द्वारा सेवा
- सुमन्त्र का अयोध्या को लौटना और सर्वत्र शोक देखना
- दशरथ-सुमन्त्र संवाद, दशरथ मरण
- मुनि वशिष्ठ का भरतजी को बुलाने के लिए दूत भेजना
- श्री भरत-शत्रुघ्न का आगमन और शोक
- भरत-कौसल्या संवाद और दशरथजी की अन्त्येष्टि क्रिया
- वशिष्ठ-भरत संवाद, श्री रामजी को लाने के लिए चित्रकूट जाने की तैयारी

- अयोध्यावासियों सहित श्री भरत-शत्रुघ्न आदि का वनगमन
- निषाद की शंका और सावधानी
- भरत-निषाद मिलन और संवाद और भरतजी का तथा नगरवासियों का प्रेम
- भरतजी का प्रयाग जाना और भरत-भरद्वाज संवाद
- भरद्वाज द्वारा भरत का सत्कार
- इंद्र-बृहस्पति संवाद
- भरतजी चित्रकूट के मार्ग में
- श्री सीताजी का स्वप्न, श्री रामजी को कोल-किरातों द्वारा भरतजी के आगमन की सूचना, रामजी का शोक, लक्ष्मणजी का क्रोध
- श्री रामजी का लक्ष्मणजी को समझाना एवं भरतजी की महिमा कहना
- भरतजी का मन्दाकिनी स्नान, चित्रकूट में पहुँचना, भरतादि सबका परस्पर मिलाप, पिता का शोक और श्राद्ध
- वनवासियों द्वारा भरतजी की मंडली का सत्कार, कैकेयी का पश्चाताप
- श्री वशिष्ठजी का भाषण
- श्री राम-भरतादि का संवाद
- जनकजी का पहुँचना, कोल किरातादि की भेंट, सबका परस्पर मिलाप
- कौसल्या सुनयना-संवाद, श्री सीताजी का शील
- जनक-सुनयना संवाद, भरतजी की महिमा
- जनक-वशिष्ठादि संवाद, इंद्र की चिंता, सरस्वती का इंद्र को समझाना
- श्री राम-भरत संवाद
- भरतजी का तीर्थ जल स्थापन तथा चित्रकूट भ्रमण
- श्री राम-भरत-संवाद, पादुका प्रदान, भरतजी की बिदाई
- भरतजी का अयोध्या लौटना, भरतजी द्वारा पादुका की स्थापना, नन्दिग्राम में निवास और श्री भरतजी के चरित्र श्रवण की महिमा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

॥ श्रीरामचरितमानस ॥

द्वितीय सोपान

॥ अयोध्याकाण्ड ॥

श्लोक :

यस्यांके च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्री शंकरः पातु माम् ॥1॥

जिनकी गोद में हिमाचलसुता पार्वतीजी, मस्तक पर गंगाजी, ललाट पर द्वितीया का चन्द्रमा, कंठ में हलाहल विष और वक्षःस्थल पर सर्पराज शेषजी सुशोभित हैं, वे भस्म से विभूषित, देवताओं में श्रेष्ठ, सर्वेश्वर, संहारकर्ता (या भक्तों के पापनाशक), सर्वव्यापक, कल्याण रूप, चन्द्रमा के समान शुभवर्ण श्री शंकरजी सदा मेरी रक्षा करें॥1॥

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मंजुलमंगलप्रदा॥2॥

रघुकुल को आनंद देने वाले श्री रामचन्द्रजी के मुखारविंद की जो शोभा राज्याभिषेक से (राज्याभिषेक की बात सुनकर) न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दुःख से मलिन ही हुई, वह (मुखकमल की छबि) मेरे लिए सदा सुंदर मंगलों की देने वाली हो॥2॥

निलांबुजश्यामलकोमलांग सीता समारोपित वामभागम्।
पाणौ महा सायक चारु चापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥3॥

नीले कमल के समान श्याम और कोमल जिनके अंग हैं, श्री सीताजी जिनके वाम भाग में

विराजमान हैं और जिनके हाथों में (क्रमशः) अमोघ बाण और सुंदर धनुष है, उन रघुवंश के स्वामी श्री रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥3॥

दोहा :

श्री गुरु चरन सरोज रज निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनऊँ रघुबर बिमल जसु जो दायकु फल चारि॥

श्री गुरुजी के चरण कमलों की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ करके मैं श्री रघुनाथजी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों को (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को) देने वाला है।

चौपाई :

जब तैं रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥1॥

जब से श्री रामचन्द्रजी विवाह करके घर आए, तब से (अयोध्या में) नित्य नए मंगल हो रहे हैं और आनंद के बधावे बज रहे हैं। चौदहों लोक रूपी बड़े भारी पर्वतों पर पुण्य रूपी मेघ सुख रूपी जल बरसा रहे हैं॥1॥

रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहूँ आई॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुंदर सब भाँती॥2॥

ऋद्धि-सिद्धि और सम्पत्ति रूपी सुहावनी नदियाँ उमड़-उमड़कर अयोध्या रूपी समुद्र में आ मिलीं। नगर के स्त्री-पुरुष अच्छी जाति के मणियों के समूह हैं, जो सब प्रकार से पवित्र, अमूल्य और सुंदर हैं॥2॥

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरंचि करतूती॥
सब बिधि सब पुर लोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी॥3॥

नगर का ऐश्वर्य कुछ कहा नहीं जाता। ऐसा जान पड़ता है, मानो ब्रह्माजी की कारीगरी बस इतनी ही है। सब नगर निवासी श्री रामचन्द्रजी के मुखचन्द्र को देखकर सब प्रकार से सुखी हैं॥3॥

मुदित मातु सब सखीं सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ॥4॥

सब माताएँ और सखी-सहेलियाँ अपनी मनोरथ रूपी बेल को फली हुई देखकर आनंदित हैं। श्री रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देख-सुनकर राजा दशरथजी बहुत ही आनंदित होते हैं॥4॥

दोहा :

सब कें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।

आप अछत जुबराज पद रामहि देउ नरेसु॥1॥

सबके हृदय में ऐसी अभिलाषा है और सब महादेवजी को मनाकर (प्रार्थना करके) कहते हैं कि राजा अपने जीते जी श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद दे दें॥1॥

चौपाई :

एक समय सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा॥

सकल सुकृत मूरति नरनाहू। राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू॥1॥

एक समय रघुकुल के राजा दशरथजी अपने सारे समाज सहित राजसभा में विराजमान थे। महाराज समस्त पुण्यों की मूर्ति हैं, उन्हें श्री रामचन्द्रजी का सुंदर यश सुनकर अत्यन्त आनंद हो रहा है॥1॥

नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषें। लोकप करहिं प्रीति रुख राखें॥

वन तीनि काल जग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं॥2॥

सब राजा उनकी कृपा चाहते हैं और लोकपालगण उनके रुख को रखते हुए (अनुकूल होकर) प्रीति करते हैं। (पृथ्वी, आकाश, पाताल) तीनों भुवनों में और (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों में दशरथजी के समान बड़भागी (और) कोई नहीं है॥2॥

मंगलमूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू॥

रायँ सुभायँ मुकुरु कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा॥3॥

मंगलों के मूल श्री रामचन्द्रजी जिनके पुत्र हैं, उनके लिए जो कुछ कहा जाए सब थोड़ा है। राजा ने स्वाभाविक ही हाथ में दर्पण ले लिया और उसमें अपना मुँह देखकर मुकुट को सीधा किया॥

3॥

श्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा॥

नृप जुबराजु राम कहूँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू॥4॥

(देखा कि) कानों के पास बाल सफेद हो गए हैं, मानो बुढ़ापा ऐसा उपदेश कर रहा है कि हे राजन्! श्री रामचन्द्रजी को युवराज पद देकर अपने जीवन और जन्म का लाभ क्यों नहीं लेते॥

4॥

दोहा :

यह बिचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।

प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायउ जाइ॥2॥

हृदय में यह विचार लाकर (युवराज पद देने का निश्चय कर) राजा दशरथजी ने शुभ दिन और

सुंदर समय पाकर, प्रेम से पुलकित शरीर हो आनंदमग्न मन से उसे गुरु वशिष्ठजी को जा
सुनाया॥2॥

चौपाई :

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भए राम सब बिधि सब लायक॥

सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे हमार अरि मित्र उदासी॥1॥

राजा ने कहा- हे मुनिराज! (कृपया यह निवेदन) सुनिए। श्री रामचन्द्रजी अब सब प्रकार से सब योग्य हो गए हैं। सेवक, मंत्री, सब नगर निवासी और जो हमारे शत्रु, मित्र या उदासीन हैं-॥1॥

सबहि रामु प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥

बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाई॥2॥

सभी को श्री रामचन्द्र जैसे ही प्रिय हैं, जैसे वे मुझको हैं। (उनके रूप में) आपका आशीर्वाद ही मानो शरीर धारण करके शोभित हो रहा है। हे स्वामी! सारे ब्राह्मण, परिवार सहित आपके ही समान उन पर स्नेह करते हैं॥2॥

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥

मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें। सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥3॥

जो लोग गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वे मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं। इसका अनुभव मेरे समान दूसरे किसी ने नहीं किया। आपकी पवित्र चरण रज की पूजा करके मैंने सब कुछ पा लिया॥3॥

अब अभिलाषु एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें॥

मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥4॥

अब मेरे मन में एक ही अभिलाषा है। हे नाथ! वह भी आप ही के अनुग्रह से पूरी होगी। राजा का सहज प्रेम देखकर मुनि ने प्रसन्न होकर कहा- नरेश! आज्ञा दीजिए (कहिए, क्या अभिलाषा है?)॥4॥

दोहा :

राजन राउर नामु जसु सब अभिमत दातार।

फल अनुगामी महिप मनि मन अभिलाषु तुम्हार॥3॥

हे राजन! आपका नाम और यश ही सम्पूर्ण मनचाही वस्तुओं को देने वाला है। हे राजाओं के मुकुटमणि! आपके मन की अभिलाषा फल का अनुगमन करती है (अर्थात् आपके इच्छा करने के पहले ही फल उत्पन्न हो जाता है)॥3॥

चौपाई :

सब बिधि गुरु प्रसन्न जियँ जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदु बानी॥

नाथ रामु करिअहिं जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥1॥

अपने जी में गुरुजी को सब प्रकार से प्रसन्न जानकर, हर्षित होकर राजा कोमल वाणी से बोले-
हे नाथ! श्री रामचन्द्र को युवराज कीजिए। कृपा करके कहिए (आज्ञा दीजिए) तो तैयारी की
जाए॥1॥

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं॥2॥

मेरे जीते जी यह आनंद उत्सव हो जाए, (जिससे) सब लोग अपने नेत्रों का लाभ प्राप्त करें। प्रभु
(आप) के प्रसाद से शिवजी ने सब कुछ निबाह दिया (सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं), केवल यही एक
लालसा मन में रह गई है॥2॥

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहिं न होइ पाछें पछिताऊ॥

सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥3॥

(इस लालसा के पूर्ण हो जाने पर) फिर सोच नहीं, शरीर रहे या चला जाए, जिससे मुझे पीछे
पछतावा न हो। दशरथजी के मंगल और आनंद के मूल सुंदर वचन सुनकर मुनि मन में बहुत
प्रसन्न हुए॥3॥

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥

भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥4॥

(वशिष्ठजी ने कहा-) हे राजन्! सुनिए, जिनसे विमुख होकर लोग पछताते हैं और जिनके भजन
बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी (सर्वलोक महेश्वर) श्री रामजी आपके पुत्र हुए हैं, जो
पवित्र प्रेम के अनुगामी हैं। (श्री रामजी पवित्र प्रेम के पीछे-पीछे चलने वाले हैं, इसी से तो
प्रेमवश आपके पुत्र हुए हैं)॥4॥

दोहा :

बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।

सुदिन सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुबराजु॥4॥

हे राजन्! अब देर न कीजिए, शीघ्र सब सामान सजाइए। शुभ दिन और सुंदर मंगल तभी है, जब
श्री रामचन्द्रजी युवराज हो जाएँ (अर्थात् उनके अभिषेक के लिए सभी दिन शुभ और मंगलमय
हैं)॥4॥

चौपाई :

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥

कहि जयजीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥1॥

राजा आनंदित होकर महल में आए और उन्होंने सेवकों को तथा मंत्री सुमंत्र को बुलवाया। उन लोगों ने 'जय-जीव' कहकर सिर नवाए। तब राजा ने सुंदर मंगलमय वचन (श्री रामजी को युवराज पद देने का प्रस्ताव) सुनाए॥1॥

जौं पाँचहि मत लागै नीका। करहु हरषि हियँ रामहि टीका॥2॥

(और कहा-) यदि पंचों को (आप सबको) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्री रामचन्द्र का राजतिलक कीजिए॥2॥

मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरवँ परेउ जनु पानी॥

बिनती सचिव करहिं कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी॥3॥

इस प्रिय वाणी को सुनते ही मंत्री ऐसे आनंदित हुए मानो उनके मनोरथ रूपी पौधे पर पानी पड़ गया हो। मंत्री हाथ जोड़कर विनती करते हैं कि हे जगत्पति! आप करोड़ों वर्ष जिएँ॥3॥

जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥

नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा। बढत बौंड जनु लही सुसाखा॥4॥

आपने जगतभर का मंगल करने वाला भला काम सोचा है। हे नाथ! शीघ्रता कीजिए, देर न लगाइए। मंत्रियों की सुंदर वाणी सुनकर राजा को ऐसा आनंद हुआ मानो बढ़ती हुई बेल सुंदर डाली का सहारा पा गई हो॥4॥

दोहा :

कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ।

राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥5॥

राजा ने कहा- श्री रामचन्द्र के राज्याभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठजी की जो-जो आज्ञा हो, आप लोग वही सब तुरंत करें॥5॥

चौपाई :

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी। आनहु सकल सुतीरथ पानी॥

औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मंगल नाना॥1॥

मुनिराज ने हर्षित होकर कोमल वाणी से कहा कि सम्पूर्ण श्रेष्ठ तीर्थों का जल ले आओ। फिर उन्होंने औषधि, मूल, फूल, फल और पत्र आदि अनेकों मांगलिक वस्तुओं के नाम गिनकर बताए॥1॥

चामर चरम बसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित जाती॥

मनिगन मंगल बस्तु अनेका। जो जग जोगु भूप अभिषेका॥2॥

चँवर, मृगचर्म, बहुत प्रकार के वस्त्र, असंख्यों जातियों के ऊनी और रेशमी कपड़े, (नाना प्रकार की) मणियाँ (रत्न) तथा और भी बहुत सी मंगल वस्तुएँ, जो जगत में राज्याभिषेक के योग्य होती हैं, (सबको मँगाने की उन्होंने आज्ञा दी)॥2॥

बेद बिदित कहि सकल बिधाना। कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना॥

सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा॥3॥

मुनि ने वेदों में कहा हुआ सब विधान बताकर कहा-नगर में बहुत से मंडप (चँदोवे) सजाओ। फलों समेत आम, सुपारी और केले के वृक्ष नगर की गलियों में चारों ओर रोप दो॥3॥

रचहु मंजु मनि चौकें चारु। कहहु बनावन बेगि बजारु॥

पूजहु गनपति गुर कुलदेवा। सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा॥4॥

सुंदर मणियों के मनोहर चौक पुरवाओ और बाजार को तुरंत सजाने के लिए कह दो। श्री गणेशजी, गुरु और कुलदेवता की पूजा करो और भूदेव ब्राह्मणों की सब प्रकार से सेवा करो॥4॥

दोहा :

ध्वज पताक तोरन कलस सजहु तुरग रथ नाग।

सिर धरि मुनिबर बचन सबु निज निज काजहिं लाग॥6॥

ध्वजा, पताका, तोरण, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सबको सजाओ! मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी के वचनों को शिरोधार्य करके सब लोग अपने-अपने काम में लग गए॥6॥

चौपाई :

जो मुनीस जेहि आयसु दीन्हा। सो तेहिं काजु प्रथम जनु कीन्हा॥

बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा॥1॥

मुनीश्वर ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी, उसने वह काम (इतनी शीघ्रता से कर डाला कि) मानो पहले से ही कर रखा था। राजा ब्राह्मण, साधु और देवताओं को पूज रहे हैं और श्री रामचन्द्रजी के लिए सब मंगल कार्य कर रहे हैं॥1॥

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥

राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥2॥

श्री रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवधभर में बड़ी धूम से बधावे बजने लगे। श्री रामचन्द्रजी और सीताजी के शरीर में भी शुभ शकुन सूचित हुए। उनके सुंदर मंगल अंग फड़कने लगे॥2॥

पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥

भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥3॥

पुलकित होकर वे दोनों प्रेम सहित एक-दूसरे से कहते हैं कि ये सब शकुन भरत के आने की सूचना देने वाले हैं। (उनको मामा के घर गए) बहुत दिन हो गए, बहुत ही अवसेर आ रही है (बार-बार उनसे मिलने की मन में आती है) शकुनों से प्रिय (भरत) के मिलने का विश्वास होता है॥3॥

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥

रामहि बंधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती॥4॥

और भरत के समान जगत में (हमें) कौन प्यारा है! शकुन का बस, यही फल है, दूसरा नहीं। श्री रामचन्द्रजी को (अपने) भाई भरत का दिन-रात ऐसा सोच रहता है जैसा कछुए का हृदय अंडों में रहता है॥4॥

दोहा :

एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहँसेउ रनिवासु।

सोभत लखि बिधु बढत जनु बारिधि बीचि बिलासु॥7॥

इसी समय यह परम मंगल समाचार सुनकर सारा रनिवास हर्षित हो उठा। जैसे चन्द्रमा को बढते देखकर समुद्र में लहरों का विलास (आनंद) सुशोभित होता है॥7॥

चौपाई :

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥

प्रेम पुलकि तन मन अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥1॥

सबसे पहले (रनिवास में) जाकर जिन्होंने ये वचन (समाचार) सुनाए, उन्होंने बहुत से आभूषण और वस्त्र पाए। रानियों का शरीर प्रेम से पुलकित हो उठा और मन प्रेम में मग्न हो गया। वे सब मंगल कलश सजाने लगीं॥1॥

चौकें चारु सुमित्राँ पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥

आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥2॥

सुमित्राजी ने मणियों (रत्नों) के बहुत प्रकार के अत्यन्त सुंदर और मनोहर चौक पूरे। आनंद में मग्न हुई श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी ने ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत दान दिए॥2॥

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलिभागा॥

जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू॥3॥

उन्होंने ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों की पूजा की और फिर बलि भेंट देने को कहा (अर्थात् कार्य सिद्ध होने पर फिर पूजा करने की मनौती मानी) और प्रार्थना की कि जिस प्रकार से श्री रामचन्द्रजी का कल्याण हो, दया करके वही वरदान दीजिए॥3॥

गावहिं मंगल कोकिलबयनीं। बिधुबदनीं मृगसावकनयनीं॥4॥

कोयल की सी मीठी वाणी वाली, चन्द्रमा के समान मुख वाली और हिरन के बच्चे के से नेत्रों वाली स्त्रियाँ मंगलगान करने लगीं॥4॥

दोहा :

राम राज अभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि।

लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥8॥

श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक सुनकर सभी स्त्री-पुरुष हृदय में हर्षित हो उठे और विधाता को अपने अनुकूल समझकर सब सुंदर मंगल साज सजाने लगे॥8॥

चौपाई :

तब नरनाहँ बसिष्ठ बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए॥

गुरु आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायठ माथा॥1॥

तब राजा ने वशिष्ठजी को बुलाया और शिक्षा (समयोचित उपदेश) देने के लिए श्री रामचन्द्रजी के महल में भेजा। गुरु का आगमन सुनते ही श्री रघुनाथजी ने दरवाजे पर आकर उनके चरणों में मस्तक नवाया॥1॥

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने॥

गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी॥2॥

आदरपूर्वक अर्घ्य देकर उन्हें घर में लाए और षोडशोपचार से पूजा करके उनका सम्मान किया। फिर सीताजी सहित उनके चरण स्पर्श किए और कमल के समान दोनों हाथों को जोड़कर श्री रामजी बोले-॥2॥

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥

तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती॥3॥

यद्यपि सेवक के घर स्वामी का पधारना मंगलों का मूल और अमंगलों का नाश करने वाला होता है, तथापि हे नाथ! उचित तो यही था कि प्रेमपूर्वक दास को ही कार्य के लिए बुला भेजते, ऐसी ही नीति है॥3॥

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥

आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लइह स्वामि सेवकाईं॥4॥

परन्तु प्रभु (आप) ने प्रभुता छोड़कर (स्वयं यहाँ पधारकर) जो स्नेह किया, इससे आज यह घर पवित्र हो गया! हे गोसाईं! (अब) जो आज्ञा हो, मैं वही करूँ। स्वामी की सेवा में ही सेवक का लाभ है॥4॥

दोहा :

सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।

राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥9॥

(श्री रामचन्द्रजी के) प्रेम में सने हुए वचनों को सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने श्री रघुनाथजी की प्रशंसा करते हुए कहा कि हे राम! भला आप ऐसा क्यों न कहें। आप सूर्यवंश के भूषण जो हैं॥

9॥

चौपाई :

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ। बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥

भूप सजेठ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥1॥

श्री रामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का बखान कर, मुनिराज प्रेम से पुलकित होकर बोले- (हे रामचन्द्रजी!) राजा (दशरथजी) ने राज्याभिषेक की तैयारी की है। वे आपको युवराज पद देना चाहते हैं॥1॥

राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहै काजू॥

गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदयँ अस बिसमठ भयऊ॥2॥

(इसलिए) हे रामजी! आज आप (उपवास, हवन आदि विधिपूर्वक) सब संयम कीजिए, जिससे विधाता कुशलपूर्वक इस काम को निबाह दें (सफल कर दें)। गुरुजी शिक्षा देकर राजा दशरथजी के पास चले गए। श्री रामचन्द्रजी के हृदय में (यह सुनकर) इस बात का खेद हुआ कि-॥2॥

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥

करनबेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥3॥

हम सब भाई एक ही साथ जन्मे, खाना, सोना, लड़कपन के खेल-कूद, कनछेदन, यज्ञोपवीत और विवाह आदि उत्सव सब साथ-साथ ही हुए॥3॥

बिमल बंस यह अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बडेहि अभिषेकू॥

प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरठ भगत मन कै कुटिलाई॥4॥

पर इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि और सब भाइयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही (मेरा ही) होता है। (तुलसीदासजी कहते हैं कि) प्रभु श्री रामचन्द्रजी का यह सुंदर प्रेमपूर्ण पछतावा भक्तों के मन की कुटिलता को हरण करे॥4॥

दोहा :

तेहि अवसर आए लखन मगन प्रेम आनंद।

सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद॥10॥

उसी समय प्रेम और आनंद में मग्न लक्ष्मणजी आए। रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर उनका सम्मान किया॥10॥

चौपाई :

बाजहिं बाजने बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना॥

भरत आगमनु सकल मनावहिं। आवहुँ बेगि नयन फलु पावहिं॥1॥

बहुत प्रकार के बाजे बज रहे हैं। नगर के अतिशय आनंद का वर्णन नहीं हो सकता। सब लोग भरतजी का आगमन मना रहे हैं और कह रहे हैं कि वे भी शीघ्र आवें और (राज्याभिषेक का उत्सव देखकर) नेत्रों का फल प्राप्त करें॥1॥

हाट बाट घर गलीं अथाई। कहहिं परसपर लोग लोगाई॥

कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥2॥

बाजार, रास्ते, घर, गली और चबूतरों पर (जहाँ-तहाँ) पुरुष और स्त्री आपस में यही कहते हैं कि कल वह शुभ लगन (मुहूर्त) कितने समय है, जब विधाता हमारी अभिलाषा पूरी करेंगे॥2॥

कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता॥

सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन मनावहिं देव कुचाली॥3॥

जब सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी सुवर्ण के सिंहासन पर विराजेंगे और हमारा मनचीता होगा (मनःकामना पूरी होगी)। इधर तो सब यह कह रहे हैं कि कल कब होगा, उधर कुचक्री देवता विघ्न मना रहे हैं॥3॥

तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चंदिनि राति न भावा॥

सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥4॥

उन्हें (देवताओं को) अवध के बधावे नहीं सुहाते, जैसे चोर को चाँदनी रात नहीं भाती। सरस्वतीजी को बुलाकर देवता विनय कर रहे हैं और बार-बार उनके पैरों को पकड़कर उन पर गिरते हैं॥4॥

दोहा :

बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।

रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥1॥

(वे कहते हैं-) हे माता! हमारी बड़ी विपत्ति को देखकर आज वही कीजिए जिससे श्री रामचन्द्रजी राज्य त्यागकर वन को चले जाएँ और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो॥1॥

चौपाई :

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती। भइँ सरोज बिपिन हिमराती॥

देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥1॥

देवताओं की विनती सुनकर सरस्वतीजी खड़ी-खड़ी पछता रही हैं कि (हाय!) मैं कमलवन के लिए हेमंत ऋतु की रात हुई। उन्हें इस प्रकार पछताते देखकर देवता विनय करके कहने लगे- हे माता! इसमें आपको जरा भी दोष न लगेगा॥1॥

बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥

जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी॥2॥

श्री रघुनाथजी विषाद और हर्ष से रहित हैं। आप तो श्री रामजी के सब प्रभाव को जानती ही हैं। जीव अपने कर्मवश ही सुख-दुःख का भागी होता है। अतएव देवताओं के हित के लिए आप अयोध्या जाइए॥2॥

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥

ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥3॥

बार-बार चरण पकड़कर देवताओं ने सरस्वती को संकोच में डाल दिया। तब वे यह विचारकर चलीं कि देवताओं की बुद्धि ओछी है। इनका निवास तो ऊँचा है, पर इनकी करनी नीची है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नहीं देख सकते॥3॥

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी॥

हरषि हृदयँ दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥4॥

परन्तु आगे के काम का विचार करके (श्री रामजी के वन जाने से राक्षसों का वध होगा, जिससे सारा जगत सुखी हो जाएगा) चतुर कवि (श्री रामजी के वनवास के चरित्रों का वर्णन करने के लिए) मेरी चाह (कामना) करेंगे। ऐसा विचार कर सरस्वती हृदय में हर्षित होकर दशरथजी की पुरी अयोध्या में आई, मानो दुःसह दुःख देने वाली कोई ग्रहदशा आई हो॥4॥

दोहा :

नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकड़ केरि।

अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥12॥

मन्थरा नाम की कैकेई की एक मंदबुद्धि दासी थी, उसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेरकर चली गई॥12॥

चौपाई :

दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥

पूछेसि लोगन्ह काह उछाह। राम तिलकु सुनि भा उर दाह॥1॥

मंथरा ने देखा कि नगर सजाया हुआ है। सुंदर मंगलमय बधावे बज रहे हैं। उसने लोगों से

पूछा कि कैसा उत्सव है? (उनसे) श्री रामचन्द्रजी के राजतिलक की बात सुनते ही उसका हृदय
जल उठा॥1॥

करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवनि बिधि राती॥

देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकइ लेउँ केहि भाँती॥2॥

वह दुर्बुद्धि, नीच जाति वाली दासी विचार करने लगी कि किस प्रकार से यह काम रात ही रात
में बिगड़ जाए, जैसे कोई कुटिल भीलनी शहद का छत्ता लगा देखकर घात लगाती है कि इसको
किस तरह से उखाड़ लूँ॥2॥

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥

ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥3॥

वह उदास होकर भरतजी की माता कैकेयी के पास गई। रानी कैकेयी ने हँसकर कहा- तू उदास
क्यों है? मंथरा कुछ उत्तर नहीं देती, केवल लंबी साँस ले रही है और त्रियाचरित्र करके आँसू
ढरका रही है॥3॥

हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥

तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥4॥

रानी हँसकर कहने लगी कि तेरे बड़े गाल हैं (तू बहुत बढ-बढकर बोलने वाली है)। मेरा मन
कहता है कि लक्ष्मण ने तुझे कुछ सीख दी है (दण्ड दिया है)। तब भी वह महापापिनी दासी
कुछ भी नहीं बोलती। ऐसी लंबी साँस छोड़ रही है, मानो काली नागिन (फुफकार छोड़ रही) हो॥

4॥

दोहा :

सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।

लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥13॥

तब रानी ने डरकर कहा- अरी! कहती क्यों नहीं? श्री रामचन्द्र, राजा, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न
कुशल से तो हैं? यह सुनकर कुबरी मंथरा के हृदय में बड़ी ही पीड़ा हुई॥13॥

चौपाई :

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥

रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु देइ जुबराजू॥1॥

(वह कहने लगी-) हे माई! हमें कोई क्यों सीख देगा और मैं किसका बल पाकर गाल करूँगी
(बढ-बढकर बोलूँगी)। रामचन्द्र को छोड़कर आज और किसकी कुशल है, जिन्हें राजा युवराज पद
दे रहे हैं॥1॥

भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥

देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥2॥

आज कौसल्या को विधाता बहुत ही दाहिने (अनुकूल) हुए हैं, यह देखकर उनके हृदय में गर्व समाता नहीं। तुम स्वयं जाकर सब शोभा क्यों नहीं देख लेतीं, जिसे देखकर मेरे मन में क्षोभ हुआ है॥2॥

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु बस नाहु हमारें॥

नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥3॥

तुम्हारा पुत्र परदेस में है, तुम्हें कुछ सोच नहीं। जानती हो कि स्वामी हमारे वश में हैं। तुम्हें तो तोशक-पलँग पर पड़े-पड़े नींद लेना ही बहुत प्यारा लगता है, राजा की कपटभरी चतुराई तुम नहीं देखतीं॥3॥

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावउँ तोरी॥4॥

मन्थरा के प्रिय वचन सुनकर, किन्तु उसको मन की मैली जानकर रानी झुककर (डॉटकर) बोली- बस, अब चुप रह घरफोड़ी कहीं की! जो फिर कभी ऐसा कहा तो तेरी जीभ पकड़कर निकलवा लूँगी॥4॥

दोहा :

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।

तिय बिसेषि पुनिचेरि कहि भरतमातु मुसुकानि॥14॥

कानों, लंगड़ों और कुबड़ों को कुटिल और कुचाली जानना चाहिए। उनमें भी स्त्री और खासकर दासी! इतना कहकर भरतजी की माता कैकेयी मुस्कुरा दीं॥14॥

चौपाई :

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोपु न मोही॥

सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥1॥

(और फिर बोलीं-) हे प्रिय वचन कहने वाली मन्थरा! मैंने तुझको यह सीख दी है (शिक्षा के लिए इतनी बात कही है)। मुझे तुझ पर स्वप्न में भी क्रोध नहीं है। सुंदर मंगलदायक शुभ दिन वही होगा, जिस दिन तेरा कहना सत्य होगा (अर्थात् श्री राम का राज्यतिलक होगा)॥1॥

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥

राम तिलकु जौं साँचेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली॥2॥

बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यवंश की सुहावनी रीति ही है। यदि

सचमुच कल ही श्री राम का तिलक है, तो हे सखी! तेरे मन को अच्छी लगे वही वस्तु माँग ले,
में दूँगी॥2॥

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥

मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥3॥

राम को सहज स्वभाव से सब माताएँ कौसल्या के समान ही प्यारी हैं। मुझ पर तो वे विशेष
प्रेम करते हैं। मैंने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है॥3॥

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहूँ राम सिय पूत पुतोहू॥

प्राण तैं अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कैं तिलक छोभु कस तोरें॥4॥

जो विधाता कृपा करके जन्म दें तो (यह भी दें कि) श्री रामचन्द्र पुत्र और सीता बहू हों। श्री
राम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक से (उनके तिलक की बात सुनकर) तुझे
क्षोभ कैसा?॥4॥

दोहा :

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराड।

हरष समय बिसमड करसि कारन मोहि सुनाड॥15॥

तुझे भरत की सौगंध है, छल-कपट छोड़कर सच-सच कह। तू हर्ष के समय विषाद कर रही है,
मुझे इसका कारण सुना॥15॥

चौपाई :

एकहिं बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥

फोरें जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहि लागा॥1॥

(मंथरा ने कहा-) सारी आशाएँ तो एक ही बार कहने में पूरी हो गईं। अब तो दूसरी जीभ
लगाकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल तो फोड़ने ही योग्य है, जो अच्छी बात कहने पर भी
आपको दुःख होता है॥1॥

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि करुइ में माई॥

हमहूँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥2॥

जो झूठी-सच्ची बातें बनाकर कहते हैं, हे माई! वे ही तुम्हें प्रिय हैं और मैं कड़वी लगती हूँ! अब
मैं भी ठकुरसुहाती (मुँह देखी) कहा करूँगी। नहीं तो दिन-रात चुप रहूँगी॥2॥

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा॥

कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाडि अब होब कि रानी॥3॥

विधाता ने कुरूप बनाकर मुझे परवश कर दिया! (दूसरे को क्या दोष) जो बोया सो काटती हूँ,

दिया सो पाती हूँ। कोई भी राजा हो, हमारी क्या हानि है? दासी छोड़कर क्या अब मैं रानी होऊँगी! (अर्थात् रानी तो होने से रही)॥3॥

जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥

तार्तै कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ि चूक हमारी॥4॥

हमारा स्वभाव तो जलाने ही योग्य है, क्योंकि तुम्हारा अहित मुझसे देखा नहीं जाता, इसलिए कुछ बात चलाई थी, किन्तु हे देवी! हमारी बड़ी भूल हुई, क्षमा करो॥4॥

दोहा :

गूढ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।

सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥16॥

आधाररहित (अस्थिर) बुद्धि की स्त्री और देवताओं की माया के वश में होने के कारण रहस्ययुक्त कपट भरे प्रिय वचनों को सुनकर रानी कैकेयी ने बैरिन मन्थरा को अपनी सुहृद् (अर्थात् हित करने वाली) जानकर उसका विश्वास कर लिया॥16॥

चौपाई :

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥

तसि मति फिरी अहइ जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥1॥

बार-बार रानी उससे आदर के साथ पूछ रही है, मानो भीलनी के गान से हिरनी मोहित हो गई हो। जैसी भावी (होनहार) है, वैसी ही बुद्धि भी फिर गई। दासी अपना दाँव लगा जानकर हर्षित हुई॥1॥

तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराउँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥

सजि प्रतीति बहुबिधि गढि छोली। अवध साढसाती तब बोली॥2॥

तुम पूछती हो, किन्तु मैं कहते डरती हूँ, क्योंकि तुमने पहले ही मेरा नाम घरफोड़ी रख दिया है। बहुत तरह से गढ़-छोलकर, खूब विश्वास जमाकर, तब वह अयोध्या की साढ़ साती (शनि की साढ़े साती वर्ष की दशा रूपी मन्थरा) बोली-॥2॥

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥

रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥3॥

हे रानी! तुमने जो कहा कि मुझे सीता-राम प्रिय हैं और राम को तुम प्रिय हो, सो यह बात सच्ची है, परन्तु यह बात पहले थी, वे दिन अब बीत गए। समय फिर जाने पर मित्र भी शत्रु हो जाते हैं॥3॥

भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल जारि करइ सोइ छारा॥

जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाठ बर बारी॥4॥

सूर्य कमल के कुल का पालन करने वाला है, पर बिना जल के वही सूर्य उनको (कमलों को) जलाकर भस्म कर देता है। सौत कौसल्या तुम्हारी जड़ उखाड़ना चाहती है। अतः उपाय रूपी श्रेष्ठ बाड़ (घेरा) लगाकर उसे रूँध दो (सुरक्षित कर दो)॥4॥

दोहा :

तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राठ।

मन मलीन मुँह मीठ नृपु राठर सरल सुभाउ॥17॥

तुमको अपने सुहाग के (झूठे) बल पर कुछ भी सोच नहीं है, राजा को अपने वश में जानती हो, किन्तु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं! और आपका सीधा स्वभाव है (आप कपट-चतुराई जानती ही नहीं)॥17॥

चौपाई :

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥

पठए भरतु भूप ननिअउरें। राम मातु मत जानब रउरें॥1॥

राम की माता (कौसल्या) बड़ी चतुर और गंभीर है (उसकी थाह कोई नहीं पाता)। उसने मौका पाकर अपनी बात बना ली। राजा ने जो भरत को ननिहाल भेज दिया, उसमें आप बस राम की माता की ही सलाह समझिए!॥1॥

सेवहिं सकल सवति मोहि नीकें। गरबित भरत मातु बल पी कें॥

सालु तुमर कौसिलहि माई। कपट चतुर नहिं होई जनाई॥2॥

(कौसल्या समझती है कि) और सब सौतें तो मेरी अच्छी तरह सेवा करती हैं, एक भरत की माँ पति के बल पर गर्वित रहती है! इसी से हे माई! कौसल्या को तुम बहुत ही साल (खटक) रही हो, किन्तु वह कपट करने में चतुर है, अतः उसके हृदय का भाव जानने में नहीं आता (वह उसे चतुरता से छिपाए रखती है)॥2॥

राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥

रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥3॥

राजा का तुम पर विशेष प्रेम है। कौसल्या सौत के स्वभाव से उसे देख नहीं सकती, इसलिए उसने जाल रचकर राजा को अपने वश में करके, (भरत की अनुपस्थिति में) राम के राजतिलक के लिए लगन निश्चय करा लिया॥3॥

यह कुल उचित राम कहँ टीका। सबहि सोहाइ मोहि सुठि नीका॥

आगिलि बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥4॥

राम को तिलक हो, यह कुल (रघुकुल) के उचित ही है और यह बात सभी को सुहाती है और मुझे तो बहुत ही अच्छी लगती है, परन्तु मुझे तो आगे की बात विचारकर डर लगता है। दैव उलटकर इसका फल उसी (कौसल्या) को दे॥4॥

दोहा :

रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ बिरोधु॥18॥

इस तरह करोड़ों कुटिलपन की बातें गढ़-छोलकर मन्थरा ने कैकेयी को उलटा-सीधा समझा दिया और सैकड़ों सौतों की कहानियाँ इस प्रकार (बना-बनाकर) कहीं जिस प्रकार विरोध बढ़े॥

18॥

चौपाई :

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई॥

का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना॥1॥

होनहार वश कैकेयी के मन में विश्वास हो गया। रानी फिर सौगंध दिलाकर पूछने लगी। (मन्थरा बोली-) क्या पूछती हो? अरे, तुमने अब भी नहीं समझा? अपने भले-बुरे को (अथवा मित्र-शत्रु को) तो पशु भी पहचान लेते हैं॥1॥

भयउ पाखु दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥

खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे। सत्य कहें नहिं दोषु हमारे॥2॥

पूरा पखवाड़ा बीत गया सामान सजते और तुमने खबर पाई है आज मुझसे! मैं तुम्हारे राज में खाती-पहनती हूँ, इसलिए सच कहने में मुझे कोई दोष नहीं है॥2॥

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥

रामहि तिलक कालि जौं भयऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥3॥

यदि मैं कुछ बनाकर झूठ कहती होऊँगी तो विधाता मुझे दंड देगा। यदि कल राम को राजतिलक हो गया तो (समझ रखना कि) तुम्हारे लिए विधाता ने विपत्ति का बीज बो दिया॥3॥

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥

जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥4॥

मैं यह बात लकीर खींचकर बलपूर्वक कहती हूँ, हे भामिनी! तुम तो अब दूध की मक्खी हो गई! (जैसे दूध में पड़ी हुई मक्खी को लोग निकालकर फेंक देते हैं, वैसे ही तुम्हें भी लोग घर से निकाल बाहर करेंगे) जो पुत्र सहित (कौसल्या की) चाकरी बजाओगी तो घर में रह सकोगी, (अन्यथा घर में रहने का) दूसरा उपाय नहीं॥4॥

दोहा :

कद्रू बिनतहि दीन्ह दुखु तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदिगृह सेइहहिं लखनु राम के नेब॥19॥

कद्रू ने विनता को दुःख दिया था, तुम्हें कौसल्या देगी। भरत कारागार का सेवन करेंगे (जेल की हवा खाएँगे) और लक्ष्मण राम के नायब (सहकारी) होंगे॥19॥

चौपाई :

कैकयसुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरीं दसन जीभ तब चाँपी॥1॥

कैकेयी मन्थरा की कड़वी वाणी सुनते ही डरकर सूख गई, कुछ बोल नहीं सकती। शरीर में पसीना हो आया और वह केले की तरह काँपने लगी। तब कुबरी (मन्थरा) ने अपनी जीभ दाँतों तले दबाई (उसे भय हुआ कि कहीं भविष्य का अत्यन्त डरावना चित्र सुनकर कैकेयी के हृदय की गति न रुक जाए, जिससे उलटा सारा काम ही बिगड़ जाए)॥1॥

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली॥2॥

फिर कपट की करोड़ों कहानियाँ कह-कहकर उसने रानी को खूब समझाया कि धीरज रखो! कैकेयी का भाग्य पलट गया, उसे कुचाल प्यारी लगी। वह बगुली को हंसिनी मानकर (वैरिन को हित मानकर) उसकी सराहना करने लगी॥2॥

सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी॥
दिन प्रति देखउँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने॥3॥

कैकेयी ने कहा- मन्थरा! सुन, तेरी बात सत्य है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फड़का करती है। मैं प्रतिदिन रात को बुरे स्वप्न देखती हूँ, किन्तु अपने अज्ञानवश तुझसे कहती नहीं॥3॥

काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ॥4॥
सखी! क्या करूँ, मेरा तो सीधा स्वभाव है। मैं दायाँ-बायाँ कुछ भी नहीं जानती॥4॥

दोहा :

अपनेँ चलत न आजु लागि अनभल काहुक कीन्ह।
केहिं अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह॥20॥

अपनी चलते (जहाँ तक मेरा वश चला) मैंने आज तक कभी किसी का बुरा नहीं किया। फिर न जाने किस पाप से दैव ने मुझे एक ही साथ यह दुःसह दुःख दिया॥20॥

चौपाई :

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सवति सेवकाई॥

अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥1॥

में भले ही नैहर जाकर वहीं जीवन बिता दूँगी, पर जीते जी सौत की चाकरी नहीं करूँगी। दैव जिसको शत्रु के वश में रखकर जिलाता है, उसके लिए तो जीने की अपेक्षा मरना ही अच्छा है॥

1॥

दीन बचन कह बहुबिधि रानी। सुनि कुबरीं तियमाया ठानी॥

अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहूँ दिन दूना॥2॥

रानी ने बहुत प्रकार के दीन वचन कहे। उन्हें सुनकर कुबरी ने त्रिया चरित्र फैलाया। (वह बोली-) तुम मन में ग्लानि मानकर ऐसा क्यों कह रही हो, तुम्हारा सुख-सुहाग दिन-दिन दूना होगा॥2॥

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि यहु फलु परिपाका॥

जब तें कुमत सुना में स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि॥3॥

जिसने तुम्हारी बुराई चाही है, वही परिणाम में यह (बुराई रूप) फल पाएगी। हे स्वामिनि! मैंने जब से यह कुमत सुना है, तबसे मुझे न तो दिन में कुछ भूख लगती है और न रात में नींद ही आती है॥3॥

पूँछेँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यह साँची॥

भामिनि करहु त कहीं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ॥4॥

मैंने ज्योतिषियों से पूछा, तो उन्होंने रेखा खींचकर (गणित करके अथवा निश्चयपूर्वक) कहा कि भरत राजा होंगे, यह सत्य बात है। हे भामिनि! तुम करो तो उपाय मैं बताऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश में हैं ही॥4॥

दोहा :

परउँ कूप तुअ बचन पर सकउँ पूत पति त्यागि।

कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि॥21॥

(कैकेयी ने कहा-) मैं तेरे कहने से कुँ में गिर सकती हूँ, पुत्र और पति को भी छोड़ सकती हूँ। जब तू मेरा बड़ा भारी दुःख देखकर कुछ कहती है, तो भला मैं अपने हित के लिए उसे क्यों न करूँगी॥21॥

चौपाई :

कुबरीं करि कबुली कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई॥

लखइ ना रानि निकट दुखु कैसैं। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसैं॥1॥

कुबरी ने कैकेयी को (सब तरह से) कबूल करवाकर (अर्थात बलि पशु बनाकर) कपट रूप छुरी को अपने (कठोर) हृदय रूपी पत्थर पर टेया (उसकी धार को तेज किया)। रानी कैकेयी अपने निकट के (शीघ्र आने वाले) दुःख को कैसे नहीं देखती, जैसे बलि का पशु हरी-हरी घास चरता है। (पर यह नहीं जानता कि मौत सिर पर नाच रही है)॥1॥

सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥

कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥2॥

मन्थरा की बातें सुनने में तो कोमल हैं, पर परिणाम में कठोर (भयानक) हैं। मानो वह शहद में घोलकर जहर पिला रही हो। दासी कहती है- हे स्वामिनि! तुमने मुझको एक कथा कही थी, उसकी याद है कि नहीं?॥2॥

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥

सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥3॥

तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर हैं। आज उन्हें राजा से माँगकर अपनी छाती ठंडी करो। पुत्र को राज्य और राम को वनवास दो और सौत का सारा आनंद तुम ले लो॥3॥

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहिं बचनु न टरई॥

होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें॥4॥

जब राजा राम की सौगंध खा लें, तब वर माँगना, जिससे वचन न टलने पावे। आज की रात बीत गई, तो काम बिगड़ जाएगा। मेरी बात को हृदय से प्रिय (या प्राणों से भी प्यारी) समझना॥

4॥

दोहा :

बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृहँ जाहु।

काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु॥22॥

पापिनी मन्थरा ने बड़ी बुरी घात लगाकर कहा- कोपभवन में जाओ। सब काम बड़ी सावधानी से बनाना, राजा पर सहसा विश्वास न कर लेना (उनकी बातों में न आ जाना)॥22॥

चौपाई :

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बुद्धि बखानी॥

तोहि सम हित न मोर संसारा। बहे जात कई भइसि अधारा॥1॥

कुबरी को रानी ने प्राणों के समान प्रिय समझकर बार-बार उसकी बड़ी बुद्धि का बखान किया और बोली- संसार में मेरा तेरे समान हितकारी और कोई नहीं है। तू मुझे बही जाती हुई के लिए सहारा हुई है॥1॥

जों बिधि पुरब मनोरथु काली। करों तोहि चख पूतरि आली॥

बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकई॥2॥

यदि विधाता कल मेरा मनोरथ पूरा कर दें तो हे सखी! मैं तुझे आँखों की पुतली बना लूँ। इस प्रकार दासी को बहुत तरह से आदर देकर कैकेयी कोपभवन में चली गई॥2॥

बिपत्ति बीजु बरषा रितु चरी। भुइँ भइ कुमति कैकई करी॥

पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोठ दल दुख फल परिनामा॥3॥

विपत्ति (कलह) बीज है, दासी वर्षा ऋतु है, कैकेयी की कुबुद्धि (उस बीज के बोने के लिए) जमीन हो गई। उसमें कपट रूपी जल पाकर अंकुर फूट निकला। दोनों वरदान उस अंकुर के दो पत्ते हैं और अंत में इसके दुःख रूपी फल होगा॥3॥

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥

राउर नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई॥4॥

कैकेयी कोप का सब साज सजकर (कोपभवन में) जा सोई। राज्य करती हुई वह अपनी दुष्ट बुद्धि से नष्ट हो गई। राजमहल और नगर में धूम-धाम मच रही है। इस कुचाल को कोई कुछ नहीं जानता॥4॥

दोहा :

प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगलचार।

एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥23॥

बड़े ही आनन्दित होकर नगर के सब स्त्री-पुरुष शुभ मंगलाचार के साथ सज रहे हैं। कोई भीतर जाता है, कोई बाहर निकलता है, राजद्वार में बड़ी भीड़ हो रही है॥23॥

चौपाई :

बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पाँच राम पहिं जाहीं॥

प्रभु आदरहिं प्रेमु पहिचानी। पूँछहिं कुसल खेम मृदु बानी॥1॥

श्री रामचन्द्रजी के बाल सखा राजतिलक का समाचार सुनकर हृदय में हर्षित होते हैं। वे दस-पाँच मिलकर श्री रामचन्द्रजी के पास जाते हैं। प्रेम पहचानकर प्रभु श्री रामचन्द्रजी उनका आदर करते हैं और कोमल वाणी से कुशल क्षेम पूछते हैं॥1॥

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥

को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥2॥

अपने प्रिय सखा श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर वे आपस में एक-दूसरे से श्री रामचन्द्रजी की बड़ाई करते हुए घर लौटते हैं और कहते हैं- संसार में श्री रघुनाथजी के समान शील और स्नेह

को निबाहने वाला कौन है?॥2॥

जेहिं-जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥

सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू॥3॥

भगवान हमें यही दें कि हम अपने कर्मवश भ्रमते हुए जिस-जिस योनि में जन्में, वहाँ-वहाँ (उस-उस योनि में) हम तो सेवक हों और सीतापति श्री रामचन्द्रजी हमारे स्वामी हों और यह नाता अन्त तक निभ जाए॥

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदयँ अति दाहू॥

को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥4॥

नगर में सबकी ऐसी ही अभिलाषा है, परन्तु कैकेयी के हृदय में बड़ी जलन हो रही है। कुसंगति पाकर कौन नष्ट नहीं होता। नीच के मत के अनुसार चलने से चतुराई नहीं रह जाती॥4॥

दोहा :

साँझ समय सानंद नृपु गयउ कैकई गेहँ।

गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहँ॥24॥

संध्या के समय राजा दशरथ आनंद के साथ कैकेयी के महल में गए। मानो साक्षात् स्नेह ही शरीर धारण कर निष्ठुरता के पास गया हो!॥24॥

चौपाई :

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुइ परइ न पाऊ॥

सुरपति बसइ बाहँबल जाकैँ। नरपति सकल रहहिँ रुख ताकैँ॥1॥

कोप भवन का नाम सुनकर राजा सहम गए। डर के मारे उनका पाँव आगे को नहीं पड़ता। स्वयं देवराज इन्द्र जिनकी भुजाओं के बल पर (राक्षसों से निर्भय होकर) बसता है और सम्पूर्ण राजा लोग जिनका रुख देखते रहते हैं॥1॥

सो सुनि तिय रिस गयउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥

सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥2॥

वही राजा दशरथ स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गए। कामदेव का प्रताप और महिमा तो देखिए। जो त्रिशूल, वज्र और तलवार आदि की चोट अपने अंगों पर सहने वाले हैं, वे रतिनाथ कामदेव के पुष्पबाण से मारे गए॥2॥

सभय नरेसु प्रिया पहिँ गयऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥

भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना॥3॥

राजा डरते-डरते अपनी प्यारी कैकेयी के पास गए। उसकी दशा देखकर उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ।

कैकेयी जमीन पर पड़ी है। पुराना मोटा कपड़ा पहने हुए है। शरीर के नाना आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है।

कुमतिहि कसि कुवेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी॥

जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी॥4॥

उस दुर्बुद्धि कैकेयी को यह कुवेषता (बुरा वेष) कैसी फब रही है, मानो भावी विधवापन की सूचना दे रही हो। राजा उसके पास जाकर कोमल वाणी से बोले- हे प्राणप्रिये! किसलिए रिसाई (रूठी) हो?॥4॥

छन्द :

केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।

मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई॥

दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।

तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई॥

'हे रानी! किसलिए रूठी हो?' यह कहकर राजा उसे हाथ से स्पर्श करते हैं, तो वह उनके हाथ को (झटककर) हटा देती है और ऐसे देखती है मानो क्रोध में भरी हुई नागिन क्रूर दृष्टि से देख रही हो। दोनों (वरदानों की) वासनाएँ उस नागिन की दो जीभें हैं और दोनों वरदान दाँत हैं, वह काटने के लिए मर्मस्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा दशरथ होनहार के वश में होकर इसे (इस प्रकार हाथ झटकने और नागिन की भाँति देखने को) कामदेव की क्रीड़ा ही समझ रहे हैं।

सोरठा :

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।

कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर॥25॥

राजा बार-बार कह रहे हैं- हे सुमुखी! हे सुलोचनी! हे कोकिलबयनी! हे गजगामिनी! मुझे अपने क्रोध का कारण तो सुना॥25॥

चौपाई :

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा॥

कहु केहि रंकहि करों नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासीं देसू॥1॥

हे प्रिये! किसने तेरा अनिष्ट किया? किसके दो सिर हैं? यमराज किसको लेना (अपने लोक को ले जाना) चाहते हैं? कह, किस कंगाल को राजा कर दूँ या किस राजा को देश से निकाल दूँ?॥1॥

सकउँ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी॥

जानसि मोर सुभाउ बरोरु। मनु तव आनन चंद चकोरु॥2॥

तेरा शत्रु अमर (देवता) भी हो, तो मैं उसे भी मार सकता हूँ। बेचारे कीड़े-मकोड़े सरीखे नर-नारी तो चीज ही क्या हैं। हे सुंदरी! तू तो मेरा स्वभाव जानती ही है कि मेरा मन सदा तेरे मुख रूपी चन्द्रमा का चकोर है॥2॥

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें॥

जों कछु कहों कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥3॥

हे प्रिये! मेरी प्रजा, कुटम्बी, सर्वस्व (सम्पत्ति), पुत्र, यहाँ तक कि मेरे प्राण भी, ये सब तेरे वश में (अधीन) हैं। यदि मैं तुझसे कुछ कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी! मुझे सौ बार राम की सौगंध है॥3॥

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥।

घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥4॥

तू हँसकर (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी मनचाही बात माँग ले और अपने मनोहर अंगों को आभूषणों से सजा। मौका-बेमौका तो मन में विचार कर देख। हे प्रिये! जल्दी इस बुरे वेष को त्याग दे॥

4॥

दोहा :

यह सुनि मन गुनि सपथ बडि बिहसि उठी मतिमंद।

भूषन सजति बिलोकिमृगु मनहुँ किरातिनि फंद॥26॥

यह सुनकर और मन में रामजी की बड़ी सौगंध को विचारकर मंदबुद्धि कैकेयी हँसती हुई उठी और गहने पहनने लगी, मानो कोई भीलनी मृग को देखकर फंदा तैयार कर रही हो!॥26॥

चौपाई :

पुनि कह राउ सुहृद जियँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी॥

भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनंद बधावा॥1॥

अपने जी में कैकेयी को सुहृद् जानकर राजा दशरथजी प्रेम से पुलकित होकर कोमल और सुंदर वाणी से फिर बोले- हे भामिनि! तेरा मनचीता हो गया। नगर में घर-घर आनंद के बधावे बज रहे हैं॥1॥

रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥

दलकि उठेउ सुनि हृदउ कठोरु। जनु छुड़ गयउ पाक बरतोरु॥2॥

मैं कल ही राम को युवराज पद दे रहा हूँ, इसलिए हे सुनयनी! तू मंगल साज सज। यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दलक उठा (फटने लगा)। मानो पका हुआ बालतोड़ (फोड़ा) छू गया हो॥

ऐसिउ पीर बिहसि तेहिं गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥
लखहिं न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरु पढाई॥3॥

ऐसी भारी पीड़ा को भी उसने हँसकर छिपा लिया, जैसे चोर की स्त्री प्रकट होकर नहीं रोती (जिसमें उसका भेद न खुल जाए)। राजा उसकी कपट-चतुराई को नहीं लख रहे हैं, क्योंकि वह करोड़ों कुटिलों की शिरोमणि गुरु मंथरा की पढ़ाई हुई है॥3॥

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू। नारिचरित जलनिधि अवगाहू॥
कपट सनेहु बढाई बहोरी। बोली बिहसि नयन मुहु मोरी॥4॥

यद्यपि राजा नीति में निपुण हैं, परन्तु त्रियाचरित्र अथाह समुद्र है। फिर वह कपटयुक्त प्रेम बढ़ाकर (ऊपर से प्रेम दिखाकर) नेत्र और मुँह मोड़कर हँसती हुई बोली-॥4॥

दोहा :

मागु मागु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु॥27॥

हे प्रियतम! आप माँग-माँग तो कहा करते हैं, पर देते-लेते कभी कुछ भी नहीं। आपने दो वरदान देने को कहा था, उनके भी मिलने में संदेह है॥27॥

चौपाई :

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न मागिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥1॥

राजा ने हँसकर कहा कि अब मैं तुम्हारा मर्म (मतलब) समझा। मान करना तुम्हें परम प्रिय है। तुमने उन वरों को थाती (धरोहर) रखकर फिर कभी माँगा ही नहीं और मेरा भूलने का स्वभाव होने से मुझे भी वह प्रसंग याद नहीं रहा॥1॥

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि मागि मकु लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ परु बचनु न जाई॥2॥

मुझे झूठ-मूठ दोष मत दो। चाहे दो के बदले चार माँग लो। रघुकुल में सदा से यह रीति चली आई है कि प्राण भले ही चले जाएँ, पर वचन नहीं जाता॥2॥

नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥

सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए॥3॥

असत्य के समान पापों का समूह भी नहीं है। क्या करोड़ों घुँघचियाँ मिलकर भी कहीं पहाड़ के समान हो सकती हैं। 'सत्य' ही समस्त उत्तम सुकृतों (पुण्यों) की जड़ है। यह बात वेद-पुराणों में

प्रसिद्ध है और मनुजी ने भी यही कहा है॥3॥

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥

बाद दृढाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली॥4॥

उस पर मेरे द्वारा श्री रामजी की शपथ करने में आ गई (मुँह से निकल पड़ी)। श्री रघुनाथजी मेरे सुकृत (पुण्य) और स्नेह की सीमा हैं। इस प्रकार बात पक्की कराके दुर्बुद्धि कैकेयी हँसकर बोली, मानो उसने कुमत (बुरे विचार) रूपी दुष्ट पक्षी (बाज) (को छोड़ने के लिए उस) की कुलही (आँखों पर की टोपी) खोल दी॥4॥

दोहा :

भूप मनोरथ सुभग बन सुख सुबिहंग समाजु।

भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकरु बाजु॥28॥

राजा का मनोरथ सुंदर वन है, सुख सुंदर पक्षियों का समुदाय है। उस पर भीलनी की तरह कैकेयी अपना वचन रूपी भयंकर बाज छोड़ना चाहती है॥28॥

मासपारायण, तेरहवाँ विश्राम

चौपाई :

सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥

मागउँ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥1॥

(वह बोली-) हे प्राण प्यारे! सुनिए, मेरे मन को भाने वाला एक वर तो दीजिए, भरत को राजतिलक और हे नाथ! दूसरा वर भी मैं हाथ जोड़कर माँगती हूँ, मेरा मनोरथ पूरा कीजिए-॥1॥

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥

सुनि मृदु बचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत बिकल जिमि कोकू॥2॥

तपस्वियों के वेष में विशेष उदासीन भाव से (राज्य और कुटुम्ब आदि की ओर से भलीभाँति उदासीन होकर विरक्त मुनियों की भाँति) राम चौदह वर्ष तक वन में निवास करें। कैकेयी के कोमल (विनययुक्त) वचन सुनकर राजा के हृदय में ऐसा शोक हुआ जैसे चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है॥2॥

गयठ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा॥

बिबरन भयठ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥3॥

राजा सहम गए, उनसे कुछ कहते न बना मानो बाज वन में बटेर पर झपटा हो। राजा का रंग बिलकुल उड़ गया, मानो ताड़ के पेड़ को बिजली ने मारा हो (जैसे ताड़ के पेड़ पर बिजली गिरने

से वह झुलसकर बदरंगा हो जाता है, वही हाल राजा का हुआ)॥3॥

माथें हाथ मूदि दोठ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥4॥

माथे पर हाथ रखकर, दोनों नेत्र बंद करके राजा ऐसे सोच करने लगे, मानो साक्षात् सोच ही शरीर धारण कर सोच कर रहा हो। (वे सोचते हैं- हाय!) मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल चुका था, परन्तु फलते समय कैकेयी ने हथिनी की तरह उसे जड़ समेत उखाड़कर नष्ट कर डाला॥4॥

अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई॥5॥

कैकेयी ने अयोध्या को उजाड़ कर दिया और विपत्ति की अचल (सुदृढ) नींव डाल दी॥5॥

दोहा :

कवनें अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।

जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥29॥

किस अवसर पर क्या हो गया! स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया, जैसे योग की सिद्धि रूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है॥29॥

चौपाई :

एहि बिधि राठ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मन माखा॥

भरतु कि राउर पूत न होंही। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥1॥

इस प्रकार राजा मन ही मन झींख रहे हैं। राजा का ऐसा बुरा हाल देखकर दुर्बुद्धि कैकेयी मन में बुरी तरह से क्रोधित हुई। (और बोली-) क्या भरत आपके पुत्र नहीं हैं? क्या मुझे आप दाम देकर खरीद लाए हैं? (क्या मैं आपकी विवाहिता पत्नी नहीं हूँ?)॥1॥

जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥

देहु उतरु अनु करहु कि नार्हीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल मारहीं॥2॥

जो मेरा वचन सुनते ही आपको बाण सा लगा तो आप सोच-समझकर बात क्यों नहीं कहते? उत्तर दीजिए- हाँ कीजिए, नहीं तो नार्हीं कर दीजिए। आप रघुवंश में सत्य प्रतिज्ञा वाले (प्रसिद्ध) हैं!॥2॥

देन कहेहु अब जनि बरु देह। तजहु सत्य जग अपजसु लेह॥

सत्य सराहि कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि मागि चबेना॥3॥

आपने ही वर देने को कहा था, अब भले ही न दीजिए। सत्य को छोड़ दीजिए और जगत में अपयश लीजिए। सत्य की बड़ी सराहना करके वर देने को कहा था। समझा था कि यह चबेना ही माँग लेगी!॥3॥

सिबि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥

अति कट्टु बचन कहति कैकेई। मानहुँ लोन जरे पर देई॥4॥

राजा शिबि, दधीचि और बलि ने जो कुछ कहा, शरीर और धन त्यागकर भी उन्होंने अपने वचन की प्रतिज्ञा को निबाहा। कैकेयी बहुत ही कडुवे वचन कह रही हैं, मानो जले पर नमक छिड़क रही हो॥4॥

दोहा :

धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे रायँ।

सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ॥30॥

धर्म की धुरी को धारण करने वाले राजा दशरथ ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर तथा लंबी साँस लेकर इस प्रकार कहा कि इसने मुझे बड़े कुठोर मारा (ऐसी कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर दी, जिससे बच निकलना कठिन हो गया)॥30॥

चौपाई :

आगें दीखि जरत सिर भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥

मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरीं सान बनाई॥1॥

प्रचंड क्रोध से जलती हुई कैकेयी सामने इस प्रकार दिखाई पड़ी, मानो क्रोध रूपी तलवार नंगी (म्यान से बाहर) खड़ी हो। कुबुद्धि उस तलवार की मूठ है, निष्ठुरता धार है और वह कुबरी (मंथरा) रूपी सान पर धरकर तेज की हुई है॥1॥

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा॥

बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥2॥

राजा ने देखा कि यह (तलवार) बड़ी ही भयानक और कठोर है (और सोचा-) क्या सत्य ही यह मेरा जीवन लेगी? राजा अपनी छाती कड़ी करके, बहुत ही नम्रता के साथ उसे (कैकेयी को) प्रिय लगने वाली वाणी बोले-॥2॥

प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हाँती॥

मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि संकरु साखी॥3॥

हे प्रिये! हे भीरु! विश्वास और प्रेम को नष्ट करके ऐसे बुरी तरह के वचन कैसे कह रही हो। मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखें (अर्थात् एक से) हैं, यह मैं शंकरजी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ॥3॥

अवसि दूतु में पठइब प्राता। ऐहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥

सुदिन सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहूँ राजु बजाई॥4॥

मैं अवश्य सबेरे ही दूत भेजूँगा। दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) सुनते ही तुरंत आ जाएँगे। अच्छा दिन (शुभ मुहूर्त) शोधवाकर, सब तैयारी करके डंका बजाकर मैं भरत को राज्य दे दूँगा॥4॥

दोहा :

लोभु न रामहि राजु कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जियँ करत रहेउँ नृपनीति॥31॥

राम को राज्य का लोभ नहीं है और भरत पर उनका बड़ा ही प्रेम है। मैं ही अपने मन में बड़े-छोटे का विचार करके राजनीति का पालन कर रहा था (बड़े को राजतिलक देने जा रहा था)॥

31॥

चौपाई :

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूँछैं। तेहि तैं परेउ मनोरथु छूँछैं॥1॥

राम की सौ बार सौगंध खाकर मैं स्वभाव से ही कहता हूँ कि राम की माता (कौसल्या) ने (इस विषय में) मुझसे कभी कुछ नहीं कहा। अवश्य ही मैंने तुमसे बिना पूछे यह सब किया। इसी से मेरा मनोरथ खाली गया॥1॥

रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागी। बर दूसर असमंजस मागी॥2॥

अब क्रोध छोड़ दे और मंगल साज सज। कुछ ही दिनों बाद भरत युवराज हो जाएँगे। एक ही बात का मुझे दुःख लगा कि तूने दूसरा वरदान बड़ी अड़चन का माँगा॥2॥

अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहुँ साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधु। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधु॥3॥

उसकी आँच से अब भी मेरा हृदय जल रहा है। यह दिल्लगी में, क्रोध में अथवा सचमुच ही (वास्तव में) सच्चा है? क्रोध को त्यागकर राम का अपराध तो बता। सब कोई तो कहते हैं कि राम बड़े ही साधु हैं॥3॥

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ संदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनूकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥4॥

तू स्वयं भी राम की सराहना करती और उन पर स्नेह किया करती थी। अब यह सुनकर मुझे संदेह हो गया है (कि तुम्हारी प्रशंसा और स्नेह कहीं झूठे तो न थे?) जिसका स्वभाव शत्रु को भी अनूकल है, वह माता के प्रतिकूल आचरण क्यों कर करेगा?॥4॥

दोहा :

प्रिया हास रिस परिहरहि मागु बिचारि बिबेकु।
जेहिं देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु॥32॥
हे प्रिये! हँसी और क्रोध छोड़ दे और विवेक (उचित-अनुचित) विचारकर वर माँग, जिससे अब मैं
नेत्र भरकर भरत का राज्याभिषेक देख सकूँ॥32॥

चौपाई :

जिए मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिए दुख दीना॥
कहँ सुभाउ न छलु मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं॥1॥
मछली चाहे बिना पानी के जीती रहे और साँप भी चाहे बिना मणि के दीन-दुःखी होकर जीता
रहे, परन्तु मैं स्वभाव से ही कहता हूँ, मन में (जरा भी) छल रखकर नहीं कि मेरा जीवन राम के
बिना नहीं है॥1॥

समुझि देखु जियँ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥2॥
हे चतुर प्रिये! जी में समझ देख, मेरा जीवन श्री राम के दर्शन के अधीन है। राजा के कोमल
वचन सुनकर दुर्बुद्धि कैकेयी अत्यन्त जल रही है। मानो अग्नि में घी की आहुतियाँ पड़ रही हैं॥

2॥

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥3॥
(कैकेयी कहती है-) आप करोड़ों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया (चालबाजी) नहीं लगेगी।
या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिए, नहीं तो 'नाहीं' करके अपयश लीजिए। मुझे बहुत प्रपंच
(बखेड़े) नहीं सुहाते॥3॥

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राममातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देऊँ करि साका॥4॥
राम साधु हैं, आप सयाने साधु हैं और राम की माता भी भली है, मैंने सबको पहचान लिया है।
कौसल्या ने मेरा जैसा भला चाहा है, मैं भी साका करके (याद रखने योग्य) उन्हें वैसा ही फल
दूँगी॥4॥

दोहा :

होत प्रात मुनिबेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस नृप समुझिअ मन माहिं॥33॥
(सबेरा होते ही मुनि का वेष धारण कर यदि राम वन को नहीं जाते, तो हे राजन्! मन में

(निश्चय) समझ लीजिए कि मेरा मरना होगा और आपका अपयश!॥33॥

चौपाई :

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥

पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥1॥

ऐसा कहकर कुटिल कैकेयी उठ खड़ी हुई, मानो क्रोध की नदी उमड़ी हो। वह नदी पाप रूपी पहाड़ से प्रकट हुई है और क्रोध रूपी जल से भरी है, (ऐसी भयानक है कि) देखी नहीं जाती!॥1॥

दोउ बर कूल कठिन हठ धारा। भवँर कूबरी बचन प्रचारा॥

ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनूकूला॥2॥

दोनों वरदान उस नदी के दो किनारे हैं, कैकेयी का कठिन हठ ही उसकी (तीव्र) धारा है और कुबरी (मंथरा) के वचनों की प्रेरणा ही भँवर है। (वह क्रोध रूपी नदी) राजा दशरथ रूपी वृक्ष को जड़-मूल से ढहाती हुई विपति रूपी समुद्र की ओर (सीधी) चली है॥2॥

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाची॥

गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥3॥

राजा ने समझ लिया कि बात सचमुच (वास्तव में) सच्ची है, स्त्री के बहाने मेरी मृत्यु ही सिर पर नाच रही है। (तदनन्तर राजा ने कैकेयी के) चरण पकड़कर उसे बिठाकर विनती की कि तू सूर्यकुल (रूपी वृक्ष) के लिए कुल्हाड़ी मत बन॥3॥

मागु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥

राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥4॥

तू मेरा मस्तक माँग ले, मैं तुझे अभी दे दूँ। पर राम के विरह में मुझे मत मार। जिस किसी प्रकार से हो तू राम को रख ले। नहीं तो जन्मभर तेरी छाती जलेगी॥4॥

दोहा :

देखी ब्याधि असाध नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।

कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥34॥

राजा ने देखा कि रोग असाध्य है, तब वे अत्यन्त आर्तवाणी से 'हा राम! हा राम! हा रघुनाथ!' कहते हुए सिर पीटकर जमीन पर गिर पड़े॥34॥

चौपाई :

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥

कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीन बिनु पानी॥1॥

राजा व्याकुल हो गए, उनका सारा शरीर शिथिल पड़ गया, मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को उखाड़

फँका हो। कंठ सूख गया, मुख से बात नहीं निकलती, मानो पानी के बिना पहिना नामक मछली तड़प रही हो॥1॥

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥

जौं अंतहुँ अस करतबु रहेऊ। मागु मागु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥2॥

कैकेयी फिर कड़वे और कठोर वचन बोली, मानो घाव में जहर भर रही हो। (कहती है-) जो अंत में ऐसा ही करना था, तो आपने 'माँग, माँग' किस बल पर कहा था?॥2॥

दुइ कि होइ एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥

दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥3॥

हे राजा! ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना-क्या ये दोनों एक साथ हो सकते हैं? दानी भी कहाना और कंजूसी भी करना। क्या रजपूती में क्षेम-कुशल भी रह सकती है?(लड़ाई में बहादुरी भी दिखावें और कहीं चोट भी न लगे!)॥3॥

छाइहु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥

तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहूँ तृन सम बरनी॥4॥

या तो वचन (प्रतिज्ञा) ही छोड़ दीजिए या धैर्य धारण कीजिए। यों असहाय स्त्री की भाँति रोड़-पीटिए नहीं। सत्यव्रती के लिए तो शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, धन और पृथ्वी-सब तिनके के बराबर कहे गए हैं॥4॥

दोहा :

मरम बचन सुनि राठ कह कहु कछु दोषु न तोर।

लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥35॥

कैकेयी के मर्मभेदी वचन सुनकर राजा ने कहा कि तू जो चाहे कह, तेरा कुछ भी दोष नहीं है। मेरा काल तुझे मानो पिशाच होकर लग गया है, वही तुझसे यह सब कहला रहा है॥35॥

चौपाई :

चहत न भरत भूपतहि भोरें। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरें॥

सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहिं बिधि बामू॥

भरत तो भूलकर भी राजपद नहीं चाहते। होनहारवश तेरे ही जी में कुमति आ बसी। यह सब मेरे पापों का परिणाम है, जिससे कुसमय (बेमौके) में विधाता विपरीत हो गया॥1॥

सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥

करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥2॥

(तेरी उजाड़ी हुई) यह सुंदर अयोध्या फिर भलीभाँति बसेगी और समस्त गुणों के धाम श्री राम

की प्रभुता भी होगी। सब भाई उनकी सेवा करेंगे और तीनों लोकों में श्री राम की बड़ाई होगी॥

2॥

तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥

अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहु गोई॥3॥

केवल तेरा कलंक और मेरा पछतावा मरने पर भी नहीं मिटेगा, यह किसी तरह नहीं जाएगा।

अब तुझे जो अच्छा लगे वही कर। मुँह छिपाकर मेरी आँखों की ओट जा बैठ (अर्थात मेरे सामने से हट जा, मुझे मुँह न दिखा)॥3॥

जब लागि जिओं कहउँ कर जोरी। तब लागि जनि कछु कहसि बहोरी॥

फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥4॥

मैं हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता रहूँ, तब तक फिर कुछ न कहना (अर्थात मुझसे न बोलना)। अरी अभागिनी! फिर तू अन्त में पछताएगी जो तू नहारू (ताँत) के लिए गाय को मार रही है॥4॥

दोहा :

परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।

कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥36॥

राजा करोड़ों प्रकार से (बहुत तरह से) समझाकर (और यह कहकर) कि तू क्यों सर्वनाश कर रही है, पृथ्वी पर गिर पड़े। पर कपट करने में चतुर कैंकेयी कुछ बोलती नहीं, मानो (मौन होकर)

मसान जगा रही हो (श्मशान में बैठकर प्रेतमंत्र सिद्ध कर रही हो)॥36॥

चौपाई :

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू॥

हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहै जनि कोई॥1॥

राजा 'राम-राम' रट रहे हैं और ऐसे व्याकुल हैं, जैसे कोई पक्षी पंख के बिना बेहाल हो। वे अपने हृदय में मनाते हैं कि सबेरा न हो और कोई जाकर श्री रामचन्द्रजी से यह बात न कहे॥1॥

उदउ करहु जनि रबि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर॥

भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई॥2॥

हे रघुकुल के गुरु (बड़ेरे, मूलपुरुष) सूर्य भगवान्! आप अपना उदय न करें। अयोध्या को (बेहाल) देखकर आपके हृदय में बड़ी पीड़ा होगी। राजा की प्रीति और कैंकेयी की निष्ठुरता दोनों को ब्रह्मा ने सीमा तक रचकर बनाया है (अर्थात राजा प्रेम की सीमा है और कैंकेयी निष्ठुरता की)॥2॥

बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥

पढ़हिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक॥3॥

विलाप करते-करते ही राजा को सबेरा हो गया! राज द्वार पर वीणा, बाँसुरी और शंख की ध्वनि होने लगी। भाट लोग विरुदावली पढ़ रहे हैं और गवैये गुणों का गान कर रहे हैं। सुनने पर राजा को वे बाण जैसे लगते हैं॥3॥

मंगल सकल सोहाहिं न कैसें। सहगामिनिहि बिभूषन जैसें॥

तेहि निसि नीद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥4॥

राजा को ये सब मंगल साज कैसे नहीं सुहा रहे हैं, जैसे पति के साथ सती होने वाली स्त्री को आभूषण! श्री रामचन्द्रजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण उस रात्रि में किसी को भी नींद नहीं आई॥4॥

दोहा :

द्वार भीर सेवक सचिव कहहिं उदित रबि देखि।

जागेउ अजहुँ न अवधपति कारनु कवनु बिसेषि॥37॥

राजद्वार पर मंत्रियों और सेवकों की भीड़ लगी है। वे सब सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि ऐसा कौन सा विशेष कारण है कि अवधपति दशरथजी अभी तक नहीं जागे?॥37॥

चौपाई :

पछिले पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि बड़ अचरजु लागा॥

जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥1॥

राजा नित्य ही रात के पिछले पहर जाग जाया करते हैं, किन्तु आज हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। हे सुमंत्र! जाओ, जाकर राजा को जगाओ। उनकी आज्ञा पाकर हम सब काम करें॥1॥

गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥

धाड़ खाई जनु जाइ न हेरा। मानहुँ बिपति बिषाद बसेरा॥2॥

तब सुमंत्र रावले (राजमहल) में गए, पर महल को भयानक देखकर वे जाते हुए डर रहे हैं। (ऐसा लगता है) मानो दौड़कर काट खाएगा, उसकी ओर देखा भी नहीं जाता। मानो विपत्ति और विषाद ने वहाँ डेरा डाल रखा हो॥2॥

पूछें कोउ न ऊतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई॥

कहि जयजीव बैठ सिरु नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥3॥

पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। वे उस महल में गए, जहाँ राजा और कैकेयी थे 'जय जीव' कहकर सिर नवाकर (वंदना करके) बैठे और राजा की दशा देखकर तो वे सूख ही गए॥3॥

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहु कमल मूलु परिहरेऊ॥

सचिउ सभीत सकइ नहिं पूँछी। बोली असुभ भरी सुभ छूँछी॥4॥

(देखा कि-) राजा सोच से व्याकुल हैं, चेहरे का रंग उड़ गया है। जमीन पर ऐसे पड़े हैं, मानो कमल जड़ छोड़कर (जड़ से उखड़कर) (मुर्झाया) पड़ा हो। मंत्री मारे डर के कुछ पूछ नहीं सकते। तब अशुभ से भरी हुई और शुभ से विहीन कैंकेयी बोली-॥4॥

दोहा :

परी न राजहि नीद निसि हेतु जान जगदीसु।

रामु रामु रटि भोरु किय कहइ ना मरमु महीसु॥38॥

राजा को रातभर नींद नहीं आई, इसका कारण जगदीश्वर ही जानें। इन्होंने 'राम राम' रटकर सबेरा कर दिया, परन्तु इसका भेद राजा कुछ भी नहीं बतलाते॥38॥

चौपाई :

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥

चलेउ सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥1॥

तुम जल्दी राम को बुला लाओ। तब आकर समाचार पूछना। राजा का रुख जानकर सुमंत्रजी चले, समझ गए कि रानी ने कुछ कुचाल की है॥1॥

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहिहि का राऊ॥

उर धरि धीरजु गयउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें॥2॥

सुमंत्र सोच से व्याकुल हैं, रास्ते पर पैर नहीं पड़ता (आगे बढ़ा नहीं जाता), (सोचते हैं-) रामजी को बुलाकर राजा क्या कहेंगे? किसी तरह हृदय में धीरज धरकर वे द्वार पर गए। सब लोग उनको मन मारे (उदास) देखकर पूछने लगे॥2॥

समाधानु करि सो सबही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका॥

राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥3॥

सब लोगों का समाधान करके (किसी तरह समझा-बुझाकर) सुमंत्र वहाँ गए, जहाँ सूर्यकुल के तिलक श्री रामचन्द्रजी थे। श्री रामचन्द्रजी ने सुमंत्र को आते देखा तो पिता के समान समझकर उनका आदर किया॥3॥

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई॥

रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥4॥

श्री रामचन्द्रजी के मुख को देखकर और राजा की आज्ञा सुनाकर वे रघुकुल के दीपक श्री रामचन्द्रजी को (अपने साथ) लिवा चले। श्री रामचन्द्रजी मंत्री के साथ बुरी तरह से (बिना किसी लवाजमे के) जा रहे हैं, यह देखकर लोग जहाँ-तहाँ विषाद कर रहे हैं॥4॥

दोहा :

जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ बृद्ध गजराजु॥39॥

रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी ने जाकर देखा कि राजा अत्यन्त ही बुरी हालत में पड़े हैं, मानो सिंहनी को देखकर कोई बूढ़ा गजराज सहमकर गिर पड़ा हो॥39॥

चौपाई :

सूखहिं अधर जरइ सबु अंगू। मनहुँ दीन मनिहीन भुअंगू॥
सरुष समीप दीखि कैकेई। मानहुँ मीचु घरीं गनि लेई॥1॥

राजा के होठ सूख रहे हैं और सारा शरीर जल रहा है, मानो मणि के बिना साँप दुःखी हो रहा हो। पास ही क्रोध से भरी कैकेयी को देखा, मानो (साक्षात) मृत्यु ही बैठी (राजा के जीवन की अंतिम) घड़ियाँ गिन रही हो॥1॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुखु सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥2॥

श्री रामचन्द्रजी का स्वभाव कोमल और करुणामय है। उन्होंने (अपने जीवन में) पहली बार यह दुःख देखा, इससे पहले कभी उन्होंने दुःख सुना भी न था। तो भी समय का विचार करके हृदय में धीरज धरकर उन्होंने मीठे वचनों से माता कैकेयी से पूछा-॥2॥

मोहि कहु मातु तात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन॥

सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥3॥

हे माता! मुझे पिताजी के दुःख का कारण कहो, ताकि उसका निवारण हो (दुःख दूर हो) वह यत्न किया जाए। (कैकेयी ने कहा-) हे राम! सुनो, सारा कारण यही है कि राजा का तुम पर बहुत स्नेह है॥3॥

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। मागेऊँ जो कछु मोहि सोहाना॥

सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥4॥

इन्होंने मुझे दो वरदान देने को कहा था। मुझे जो कुछ अच्छा लगा, वही मैंने माँगा। उसे सुनकर राजा के हृदय में सोच हो गया, क्योंकि ये तुम्हारा संकोच नहीं छोड़ सकते॥4॥

दोहा :

सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।

सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥40॥

इधर तो पुत्र का स्नेह है और उधर वचन (प्रतिज्ञा), राजा इसी धर्मसंकट में पड़ गए हैं। यदि

तुम कर सकते हो, तो राजा की आज्ञा शिरोधार्य करो और इनके कठिन क्लेश को मिटाओ॥40॥

चौपाई :

निधरक बैठी कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥

जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना॥1॥

कैकेयी बेधड़क बैठी ऐसी कड़वी वाणी कह रही है, जिसे सुनकर स्वयं कठोरता भी अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जीभ धनुष है, वचन बहुत से तीर हैं और मानो राजा ही कोमल निशाने के समान हैं॥1॥

जनु कठोरपनु धरें सरीरु। सिखइ धनुषबिद्या बर बीरु॥

सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठी मनहुँ तनु धरि निठुराई॥2॥

(इस सारे साज-समान के साथ) मानो स्वयं कठोरपन श्रेष्ठ वीर का शरीर धारण करके धनुष विद्या सीख रहा है। श्री रघुनाथजी को सब हाल सुनाकर वह ऐसे बैठी है, मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किए हुए हो॥2॥

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥

बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥3॥

सूर्यकुल के सूर्य, स्वाभाविक ही आनंदनिधान श्री रामचन्द्रजी मन में मुस्कुराकर सब दूषणों से रहित ऐसे कोमल और सुंदर वचन बोले जो मानो वाणी के भूषण ही थे-॥3॥

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥

तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥4॥

हे माता! सुनो, वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी (पालन करने वाला) है। (आज्ञा पालन द्वारा) माता-पिता को संतुष्ट करने वाला पुत्र, हे जननी! सारे संसार में दुर्लभ है॥4॥

दोहा :

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।

तेहि महुँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥41॥

वन में विशेष रूप से मुनियों का मिलाप होगा, जिसमें मेरा सभी प्रकार से कल्याण है। उसमें भी, फिर पिताजी की आज्ञा और हे जननी! तुम्हारी सम्मति है,॥41॥

चौपाई :

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥

जौं न जाऊँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ समाजा॥1॥

और प्राण प्रिय भरत राज्य पावेंगे। (इन सभी बातों को देखकर यह प्रतीत होता है कि) आज

विधाता सब प्रकार से मुझे सम्मुख हैं (मेरे अनुकूल हैं)। यदि ऐसे काम के लिए भी मैं वन को न जाऊँ तो मूर्खों के समाज में सबसे पहले मेरी गिनती करनी चाहिए॥1॥

सेवहिं अरँडु कल्पतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु मागी॥

तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं। देखु बिचारि मातु मन माहीं॥2॥

जो कल्पवृक्ष को छोड़कर रेंड की सेवा करते हैं और अमृत त्याग कर विष माँग लेते हैं, हे माता! तुम मन में विचार कर देखो, वे (महामूर्ख) भी ऐसा मौका पाकर कभी न चूकेंगे॥2॥

अंब एक दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥

थोरिहिं बात पितहि दुख भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥3॥

हे माता! मुझे एक ही दुःख विशेष रूप से हो रहा है, वह महाराज को अत्यन्त व्याकुल देखकर। इस थोड़ी सी बात के लिए ही पिताजी को इतना भारी दुःख हो, हे माता! मुझे इस बात पर विश्वास नहीं होता॥3॥

राउ धीर गुन उदधि अगाधु। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधु॥

जातें मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥4॥

क्योंकि महाराज तो बड़े ही धीर और गुणों के अथाह समुद्र हैं। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण महाराज मुझसे कुछ नहीं कहते। तुम्हें मेरी सौगंध है, माता! तुम सच-सच कहो॥4॥

दोहा :

सहज सकल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।

चलइ जाँक जल बक्रगति जद्यपि सलिलु समान॥42॥

रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्रजी के स्वभाव से ही सीधे वचनों को दुर्बुद्धि कैकेयी टेढ़ा ही करके जान रही है, जैसे यद्यपि जल समान ही होता है, परन्तु जाँक उसमें टेढ़ी चाल से ही चलती है॥

42॥

चौपाई :

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥

सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर में कछु जाना॥1॥

रानी कैकेयी श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर हर्षित हो गई और कपटपूर्ण स्नेह दिखाकर बोली- तुम्हारी शपथ और भरत की सौगंध है, मुझे राजा के दुःख का दूसरा कुछ भी कारण विदित नहीं है॥1॥

तुम्ह अपराध जोगु नहिं ताता। जननी जनक बंधु सुखदाता॥

राम सत्य सबु जो कुछ कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥2॥

हे तात! तुम अपराध के योग्य नहीं हो (तुमसे माता-पिता का अपराध बन पड़े यह संभव नहीं)। तुम तो माता-पिता और भाइयों को सुख देने वाले हो। हे राम! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सत्य है। तुम पिता-माता के वचनों (के पालन) में तत्पर हो॥2॥

पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेपन जेहिं अजसु न होई॥

तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहिं दीन्हे। उचित न तासु निरादरु कीन्हे॥3॥

मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ, तुम पिता को समझाकर वही बात कहो, जिससे चौथेपन (बुढापे) में इनका अपयश न हो। जिस पुण्य ने इनको तुम जैसे पुत्र दिए हैं, उसका निरादर करना उचित नहीं॥3॥

लागहिं कुमुख बचन सुभ कैसे। मगहँ गयादिक तीरथ जैसे॥

रामहि मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥4॥

कैकेयी के बुरे मुख में ये शुभ वचन कैसे लगते हैं जैसे मगध देश में गया आदिक तीर्थ! श्री रामचन्द्रजी को माता कैकेयी के सब वचन ऐसे अच्छे लगे जैसे गंगाजी में जाकर (अच्छे-बुरे सभी प्रकार के) जल शुभ, सुंदर हो जाते हैं॥4॥

दोहा :

गइ मुरुछा रामहि सुमिरि नृप फिरि करवट लीन्ह।

सचिव राम आगमन कहि बिनय समय सम कीन्ह॥43॥

इतने में राजा की मूर्छा दूर हुई, उन्होंने राम का स्मरण करके ('राम! राम!' कहकर) फिरकर करवट ली। मंत्री ने श्री रामचन्द्रजी का आना कहकर समयानुकूल विनती की॥43॥

चौपाई :

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥

सचिवँ सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥1॥

जब राजा ने सुना कि श्री रामचन्द्र पधारे हैं तो उन्होंने धीरज धरके नेत्र खोले। मंत्री ने संभालकर राजा को बैठाया। राजा ने श्री रामचन्द्रजी को अपने चरणों में पड़ते (प्रणाम करते) देखा॥1॥

लिए सनेह बिकल उर लाई। गै मनि मनहुँ फनिक फिरि पाई॥

रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥2॥

स्नेह से विकल राजा ने रामजी को हृदय से लगा लिया। मानो साँप ने अपनी खोई हुई मणि फिर से पा ली हो। राजा दशरथजी श्री रामजी को देखते ही रह गए। उनके नेत्रों से आँसुओं की

धारा बह चली॥2॥

सोक बिबस कछु कहै न पारा। हृदयँ लगावत बारहिं बारा॥

बिधिहि मनाव राउ मन माहीं। जेहिं रघुनाथ न कानन जाहीं॥3॥

शोक के विशेष वश होने के कारण राजा कुछ कह नहीं सकते। वे बार-बार श्री रामचन्द्रजी को हृदय से लगाते हैं और मन में ब्रह्माजी को मनाते हैं कि जिससे श्री राघुनाथजी वन को न जाएँ॥3॥

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥

आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥4॥

फिर महादेवजी का स्मरण करके उनसे निहोरा करते हुए कहते हैं- हे सदाशिव! आप मेरी बिनती सुनिए। आप आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होने वाले) और अवढरदानी (मुँहमाँगा दे डालने वाले) हैं। अतः मुझे अपना दीन सेवक जानकर मेरे दुःख को दूर कीजिए॥4॥

दोहा :

तुम्ह प्रेरक सब के हृदयँ सो मति रामहि देहु।

बचनु मोर तजि रहहिं घर परिहरि सीलु सनेहु॥44॥

आप प्रेरक रूप से सबके हृदय में हैं। आप श्री रामचन्द्र को ऐसी बुद्धि दीजिए, जिससे वे मेरे वचन को त्यागकर और शील-स्नेह को छोड़कर घर ही में रह जाएँ॥44॥

चौपाई :

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौं बरु सुरपुरु जाऊ॥

सब दुख दुसह सहावहु मोही। लोचन ओट रामु जनि हौंही॥1॥

जगत में चाहे अपयश हो और सुयश नष्ट हो जाए। चाहे (नया पाप होने से) मैं नरक में गिरूँ, अथवा स्वर्ग चला जाए (पूर्व पुण्यों के फलस्वरूप मिलने वाला स्वर्ग चाहे मुझे न मिले)। और भी सब प्रकार के दुःसह दुःख आप मुझसे सहन करा लें। पर श्री रामचन्द्र मेरी आँखों की ओट न हों॥1॥

अस मन गुनइ राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥

रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥2॥

राजा मन ही मन इस प्रकार विचार कर रहे हैं, बोलते नहीं। उनका मन पीपल के पत्ते की तरह डोल रहा है। श्री राघुनाथजी ने पिता को प्रेम के वश जानकर और यह अनुमान करके कि माता फिर कुछ कहेगी (तो पिताजी को दुःख होगा)॥2॥

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी॥

तात कहँ कछु करँ ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई॥3॥

देश, काल और अवसर के अनुकूल विचार कर विनीत वचन कहे- हे तात! मैं कुछ कहता हूँ, यह ढिठाई करता हूँ। इस अनौचित्य को मेरी बाल्यावस्था समझकर क्षमा कीजिएगा॥3॥

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहुँ न मोहि कहि प्रथम जनावा॥

देखि गोसाईँहि पूँछिँ माता। सुनि प्रसंगु भए सीतल गाता॥4॥

इस अत्यन्त तुच्छ बात के लिए आपने इतना दुःख पाया। मुझे किसी ने पहले कहकर यह बात नहीं जनाई। स्वामी (आप) को इस दशा में देखकर मैंने माता से पूछा। उनसे सारा प्रसंग सुनकर मेरे सब अंग शीतल हो गए (मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई)॥4॥

दोहा :

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिअ तात।

आयसु देइअ हरषि हियँ कहि पुलके प्रभु गात॥45॥

हे पिताजी! इस मंगल के समय स्नेहवश होकर सोच करना छोड़ दीजिए और हृदय में प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिए। यह कहते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी सर्वांग पुलकित हो गए॥45॥

चौपाई :

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥

चारि पदारथ करतल ताकै। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकै॥1॥

(उन्होंने फिर कहा-) इस पृथ्वीतल पर उसका जन्म धन्य है, जिसके चरित्र सुनकर पिता को परम आनंद हो, जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय हैं, चारों पदार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) उसके करतलगत (मुट्ठी में) रहते हैं॥1॥

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहँ बेगिहिं होउ रजाई॥

बिदा मातु सन आवँ मागी। चलिहँ बनहि बहुरि पग लागी॥2॥

आपकी आज्ञा पालन करके और जन्म का फल पाकर मैं जल्दी ही लौट आऊँगा, अतः कृपया आज्ञा दीजिए। माता से विदा माँग आता हूँ। फिर आपके पैर लगकर (प्रणाम करके) वन को चलेँगा॥2॥

अस कहि राम गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥

नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी॥3॥

ऐसा कहकर तब श्री रामचन्द्रजी वहाँ से चल दिए। राजा ने शोकवश कोई उत्तर नहीं दिया। वह बहुत ही तीखी (अप्रिय) बात नगर भर में इतनी जल्दी फैल गई, मानो डंक मारते ही बिच्छू का विष सारे शरीर में चढ़ गया हो॥3॥

सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥

जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई॥4॥

इस बात को सुनकर सब स्त्री-पुरुष ऐसे व्याकुल हो गए जैसे दावानल (वन में आग लगी) देखकर बेल और वृक्ष मुरझा जाते हैं। जो जहाँ सुनता है, वह वहीं सिर धुनने (पीटने) लगता है! बड़ा विषाद है, किसी को धीरज नहीं बँधता॥4॥

दोहा :

मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।

मनहुँ करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ॥46॥

सबके मुख सूखे जाते हैं, आँखों से आँसू बहते हैं, शोक हृदय में नहीं समाता। मानो करुणा रस की सेना अवध पर डंका बजाकर उतर आई हो॥46॥

चौपाई :

मिलेहि माझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकइहि गारी॥

एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ॥1॥

सब मेल मिल गए थे (सब संयोग ठीक हो गए थे), इतने में ही विधाता ने बात बिगाड़ दी! जहाँ-तहाँ लोग कैकेयी को गाली दे रहे हैं! इस पापिन को क्या सूझ पड़ा जो इसने छाए घर पर आग रख दी॥1॥

निज कर नयन काढि चह दीखा। डारि सुधा बिषु चाहत चीखा॥

कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुवंस बेनु बन आगी॥2॥

यह अपने हाथ से अपनी आँखों को निकालकर (आँखों के बिना ही) देखना चाहती है और अमृत फेंककर विष चखना चाहती है! यह कुटिल, कठोर, दुर्बुद्धि और अभागिनी कैकेयी रघुवंश रूपी बाँस के वन के लिए अग्नि हो गई॥2॥

पालव बैठि पेडु एहिं काटा। सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥

सदा रामु एहि प्रान समाना। कारन कवन कुटिलपनु ठाना॥3॥

पते पर बैठकर इसने पेड़ को काट डाला। सुख में शोक का ठाट ठटकर रख दिया! श्री रामचन्द्रजी इसे सदा प्राणों के समान प्रिय थे। फिर भी न जाने किस कारण इसने यह कुटिलता ठानी॥3॥

सत्य कहहिं कबि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगहु अगाध दुराऊ॥

निज प्रतिबिंबु बरुकु गहि जाई। जानि न जाइ नारि गति भाई॥4॥

कवि सत्य ही कहते हैं कि स्त्री का स्वभाव सब प्रकार से पकड़ में न आने योग्य, अथाह और

भेदभरा होता है। अपनी परछाहीं भले ही पकड़ जाए, पर भाई! स्त्रियों की गति (चाल) नहीं जानी जाती॥4॥

दोहा :

काह न पावकु जा रि सक का न समुद्र समाइ।

का न करै अबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ॥47॥

आग क्या नहीं जला सकती! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! अबला कहाने वाली प्रबल स्त्री (जाति) क्या नहीं कर सकती! और जगत में काल किसको नहीं खाता!॥47॥

चौपाई :

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥

एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥1॥

विधाता ने क्या सुनाकर क्या सुना दिया और क्या दिखाकर अब वह क्या दिखाना चाहता है! एक कहते हैं कि राजा ने अच्छा नहीं किया, दुर्बुद्धि कैकेयी को विचारकर वर नहीं दिया॥1॥

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गा जनु॥

एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने॥2॥

जो हठ करके (कैकेयी की बात को पूरा करने में अड़े रहकर) स्वयं सब दुःखों के पात्र हो गए। स्त्री के विशेष वश होने के कारण मानो उनका ज्ञान और गुण जाता रहा। एक (दूसरे) जो धर्म की मर्यादा को जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते॥2॥

सिबि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥

एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भायँ सुनि रहहीं॥3॥

वे शिबि, दधीचि और हरिश्चन्द्र की कथा एक-दूसरे से बखानकर कहते हैं। कोई एक इसमें भरतजी की सम्मति बताते हैं। कोई एक सुनकर उदासीन भाव से रह जाते हैं (कुछ बोलते नहीं)॥3॥

कान मूदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥

सुकृत जाहिं अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहँ प्रानपिआरे॥4॥

कोई हाथों से कान मूँदकर और जीभ को दाँतों तले दबाकर कहते हैं कि यह बात झूठ है, ऐसी बात कहने से तुम्हारे पुण्य नष्ट हो जाएँगे। भरतजी को तो श्री रामचन्द्रजी प्राणों के समान प्यारे हैं॥4॥

दोहा :

चंदु चवै बरु अनल कन सुधा होइ विषतूल।

सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु भरतु राम प्रतिकूल॥48॥

चन्द्रमा चाहे (शीतल किरणों की जगह) आग की चिनगारियाँ बरसाने लगे और अमृत चाहे विष के समान हो जाए, परन्तु भरतजी स्वप्न में भी कभी श्री रामचन्द्रजी के विरुद्ध कुछ नहीं करेंगे॥48॥

चौपाई :

एक विधातहि दूषनु देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं॥

खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥1॥

कोई एक विधाता को दोष देते हैं, जिसने अमृत दिखाकर विष दे दिया। नगर भर में खलबली मच गई, सब किसी को सोच हो गया। हृदय में दुःसह जलन हो गई, आनंद-उत्साह मिट गया॥

1॥

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई करी॥

लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहिं तारीं॥2॥

ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थीं, वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगीं। पर उसको उनके वचन बाण के समान लगते हैं॥2॥

भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यहु सबु जगु जाना॥

करहु राम पर सहज सनेहू। केहिं अपराध आजु बनु देहू॥3॥

(वे कहती हैं-) तुम तो सदा कहा करती थीं कि श्री रामचंद्र के समान मुझको भरत भी प्यारे नहीं हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है। श्री रामचंद्रजी पर तो तुम स्वाभाविक ही स्नेह करती रही हो। आज किस अपराध से उन्हें वन देती हो?॥3॥

कबहुँ न कियहु सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू॥

कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा॥4॥

तुमने कभी सौतियाडाह नहीं किया। सारा देश तुम्हारे प्रेम और विश्वास को जानता है। अब कौसल्या ने तुम्हारा कौन सा बिगाड़ कर दिया, जिसके कारण तुमने सारे नगर पर वज्र गिरा दिया॥4॥

दोहा :

सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु करहिहहिं धाम।

राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम॥49॥

क्या सीताजी अपने पति (श्री रामचंद्रजी) का साथ छोड़ देंगी? क्या लक्ष्मणजी श्री रामचंद्रजी के बिना घर रह सकेंगे? क्या भरतजी श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्यापुरी का राज्य भोग सकेंगे?

और क्या राजा श्री रामचंद्रजी के बिना जीवित रह सकेंगे? (अर्थात् न सीताजी यहाँ रहेंगी, न लक्ष्मणजी रहेंगे, न भरतजी राज्य करेंगे और न राजा ही जीवित रहेंगे, सब उजाड़ हो जाएगा।)॥

49॥

चौपाई :

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोठि जनि होहू॥

भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू॥1॥

हृदय में ऐसा विचार कर क्रोध छोड़ दो, शोक और कलंक की कोठी मत बनो। भरत को अवश्य युवराजपद दो, पर श्री रामचंद्रजी का वन में क्या काम है?॥1॥

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे॥

गुरु गृह बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू॥2॥

श्री रामचंद्रजी राज्य के भूखे नहीं हैं। वे धर्म की धुरी को धारण करने वाले और विषय रस से रूखे हैं (अर्थात् उनमें विषयासक्ति है ही नहीं), इसलिए तुम यह शंका न करो कि श्री रामजी वन न गए तो भरत के राज्य में विघ्न करेंगे, इतने पर भी मन न माने तो) तुम राजा से दूसरा ऐसा (यह) वर ले लो कि श्री राम घर छोड़कर गुरु के घर रहें॥2॥

जौं नहिं लगिहहु कहें हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे॥

जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई॥3॥

जो तुम हमारे कहने पर न चलोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ भी न लगेगा। यदि तुमने कुछ हँसी की हो तो उसे प्रकट में कहकर जना दो (कि मैंने दिल्लगी की है)॥3॥

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहूँ लोगू॥

उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई॥4॥

राम सरीखा पुत्र क्या वन के योग्य है? यह सुनकर लोग तुम्हें क्या कहेंगे! जल्दी उठो और वही उपाय करो जिस उपाय से इस शोक और कलंक का नाश हो॥4॥

छंद :

जेहि भाँति सोकु कलंकु जाइ उपाय करि कुल पालही।

हठि फेरु रामहि जात बन जनि बात दूसरि चालही॥

जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चंद बिनु जिमि जामिनी।

तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन समुझि धौं जियँ भामनी॥

जिस तरह (नगरभर का) शोक और (तुम्हारा) कलंक मिटे, वही उपाय करके कुल की रक्षा कर। वन जाते हुए श्री रामजी को हठ करके लौटा ले, दूसरी कोई बात न चला। तुलसीदासजी कहते

हैं- जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चंद्रमा के बिना रात (निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है), वैसे ही श्री रामचंद्रजी के बिना अयोध्या हो जाएगी, हे भामिनी! तू अपने हृदय में इस बात को समझ (विचारकर देख) तो सही।

सोरठा :

सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेइँ कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी॥50॥

इस प्रकार सखियों ने ऐसी सीख दी जो सुनने में मीठी और परिणाम में हितकारी थी। पर कुटिला कुबरी की सिखाई-पढाई हुई कैकेयी ने इस पर जरा भी कान नहीं दिया॥50॥

चौपाई :

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी॥1॥

कैकेयी कोई उत्तर नहीं देती, वह दुःसह क्रोध के मारे रूखी (बेमुरव्वत) हो रही है। ऐसे देखती है मानो भूखी बाघिन हरिनियों को देख रही हो। तब सखियों ने रोग को असाध्य समझकर उसे छोड़ दिया। सब उसको मंदबुद्धि, अभागिनी कहती हुई चल दीं॥1॥

राजु करत यह दैअँ बिगोई। कीन्हेसि अस जस करइ न कोई॥
एहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं। देहिं कुचालिहि कोटिक गारीं॥2॥

राज्य करते हुए इस कैकेयी को दैव ने नष्ट कर दिया। इसने जैसा कुछ किया, वैसा कोई भी न करेगा! नगर के सब स्त्री-पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोड़ों गालियाँ दे रहे हैं॥2॥

जरहिं विषम जर लेहिं उसासा। कवनि राम बिनु जीवन आसा॥

बिपुल बियोग प्रजा अकुलानी। जनु जलचर गन सूखत पानी॥3॥

लोग विषम ज्वर (भयानक दुःख की आग) से जल रहे हैं। लंबी साँसें लेते हुए वे कहते हैं कि श्री रामचंद्रजी के बिना जीने की कौन आशा है। महान् वियोग (की आशंका) से प्रजा ऐसी व्याकुल हो गई है मानो पानी सूखने के समय जलचर जीवों का समुदाय व्याकुल हो॥3॥

अति विषाद बस लोग लोगाई। गए मातु पहिं रामु गोसाईं॥

मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ॥4॥

सभी पुरुष और स्त्रियाँ अत्यंत विषाद के वश हो रहे हैं। स्वामी श्री रामचंद्रजी माता कौसल्या के पास गए। उनका मुख प्रसन्न है और चित में चौगुना चाव (उत्साह) है। यह सोच मिट गया है कि राजा कहीं रख न लें। (श्री रामजी को राजतिलक की बात सुनकर विषाद हुआ था कि सब

भाइयों को छोड़कर बड़े भाई मुझको ही राजतिलक क्यों होता है। अब माता कैकेयी की आज्ञा और पिता की मौन सम्मति पाकर वह सोच मिट गया।॥4॥

दोहा :

नव गयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान॥51॥

श्री रामचंद्रजी का मन नए पकड़े हुए हाथी के समान और राजतिलक उस हाथी के बाँधने की काँटेदार लोहे की बेड़ी के समान है। 'वन जाना है' यह सुनकर, अपने को बंधन से छूटा जानकर, उनके हृदय में आनंद बढ़ गया है॥51॥

चौपाई :

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूषन बसन निछावरि कीन्हे॥1॥

रघुकुल तिलक श्री रामचंद्रजी ने दोनों हाथ जोड़कर आनंद के साथ माता के चरणों में सिर नवाया। माता ने आशीर्वाद दिया, अपने हृदय से लगा लिया और उन पर गहने तथा कपड़े निछावर किए॥1॥

बार-बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥2॥

माता बार-बार श्री रामचंद्रजी का मुख चूम रही हैं। नेत्रों में प्रेम का जल भर आया है और सब अंग पुलकित हो गए हैं। श्री राम को अपनी गोद में बैठाकर फिर हृदय से लगा लिया। सुंदर स्तन प्रेमरस (दूध) बहाने लगे॥2॥

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंक धनद पदबी जनु पाई॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर बचन महतारी॥3॥

उनका प्रेम और महान् आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो कंगाल ने कुबेर का पद पा लिया हो। बड़े आदर के साथ सुंदर मुख देखकर माता मधुर वचन बोलीं-॥3॥

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहिं लगन मुद मंगलकारी॥
सुकृत सील सुख सीवँ सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥4॥

हे तात! माता बलिहारी जाती है, कहो, वह आनंद-मंगलकारी लगन कब है, जो मेरे पुण्य, शील और सुख की सुंदर सीमा है और जन्म लेने के लाभ की पूर्णतम अवधि है,॥4॥

दोहा :

जेहि चाहत नर नारि सब अति आरत एहि भाँति।

जिमि चातक चातकि तृषित बृष्टि सरद रितु स्वाति॥52॥

तथा जिस (लग्न) को सभी स्त्री-पुरुष अत्यंत व्याकुलता से इस प्रकार चाहते हैं जिस प्रकार प्यास से चातक और चातकी शरद् ऋतु के स्वाति नक्षत्र की वर्षा को चाहते हैं॥52॥

चौपाई :

तात जाऊँ बलि बेगि नाहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥

पितु समीप तब जाएहु भैया। भइ बड़ि बार जाइ बलि मैआ॥1॥

हे तात! मैं बलैया लेती हूँ, तुम जल्दी नहा लो और जो मन भावे, कुछ मिठाई खा लो। भैया! तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गई है, माता बलिहारी जाती है॥1॥

मातु बचन सुनि अति अनुकूला। जनु सनेह सुरतरु के फूला॥

सुख मकरंद भरे श्रियमूला। निरखि राम मनु भवँरु न भूला॥2॥

माता के अत्यंत अनुकूल वचन सुनकर- जो मानो स्नेह रूपी कल्पवृक्ष के फूल थे, जो सुख रूपी मकरन्द (पुष्परस) से भरे थे और श्री (राजलक्ष्मी) के मूल थे- ऐसे वचन रूपी फूलों को देकर श्री रामचंद्रजी का मन रूपी भौरा उन पर नहीं भूला॥2॥

धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी॥

पिताँ दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू॥3॥

धर्मधुरीण श्री रामचंद्रजी ने धर्म की गति को जानकर माता से अत्यंत कोमल वाणी से कहा- हे माता! पिताजी ने मुझको वन का राज्य दिया है, जहाँ सब प्रकार से मेरा बड़ा काम बनने वाला है॥3॥

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता॥

जनि सनेह बस डरपसि भोरें। आनँदु अंब अनुग्रह तोरें॥4॥

हे माता! तू प्रसन्न मन से मुझे आज्ञा दे, जिससे मेरी वन यात्रा में आनंद-मंगल हो। मेरे स्नेहवश भूलकर भी डरना नहीं। हे माता! तेरी कृपा से आनंद ही होगा॥4॥

दोहा :

बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।

आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान॥53॥

चौदह वर्ष वन में रहकर, पिताजी के वचन को प्रमाणित (सत्य) कर, फिर लौटकर तेरे चरणों का दर्शन करूँगा, तू मन को म्लान (दुःखी) न कर॥53॥

चौपाई :

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥

सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी॥1॥

रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी के ये बहुत ही नम्र और मीठे वचन माता के हृदय में बाण के समान लगे और कसकने लगे। उस शीतल वाणी को सुनकर कौसल्या वैसे ही सहमकर सूख गई जैसे बरसात का पानी पड़ने से जवासा सूख जाता है॥1॥

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥

नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी॥2॥

हृदय का विषाद कुछ कहा नहीं जाता। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हिरनी विकल हो गई हो। नेत्रों में जल भर आया, शरीर थर-थर काँपने लगा। मानो मछली माँजा (पहली वर्षा का फेन) खाकर बदहवास हो गई हो॥2॥

धरि धीरजु सुत बदनू निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥

तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥3॥

धीरज धरकर, पुत्र का मुख देखकर माता गदगद वचन कहने लगीं- हे तात! तुम तो पिता को प्राणों के समान प्रिय हो। तुम्हारे चरित्रों को देखकर वे नित्य प्रसन्न होते थे॥3॥

राजु देन कहूँ सुभ दिन साधा। कहेठ जान बन केहिं अपराधा॥

तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू॥4॥

राज्य देने के लिए उन्होंने ही शुभ दिन शोधवाया था। फिर अब किस अपराध से वन जाने को कहा? हे तात! मुझे इसका कारण सुनाओ! सूर्यवंश (रूपी वन) को जलाने के लिए अग्नि कौन हो गया?॥4॥

दोहा :

निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेठ बुझाइ।

सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ॥54॥

तब श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर मन्त्री के पुत्र ने सब कारण समझाकर कहा। उस प्रसंग को सुनकर वे गूँगी जैसी (चुप) रह गई, उनकी दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥54॥

चौपाई :

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥

लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥1॥

न रख ही सकती हैं, न यह कह सकती हैं कि वन चले जाओ। दोनों ही प्रकार से हृदय में बड़ा भारी संताप हो रहा है। (मन में सोचती हैं कि देखो-) विधाता की चाल सदा सबके लिए टेढ़ी होती है। लिखने लगे चन्द्रमा और लिखा गया राहु॥1॥

धरम सनेह उभयँ मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥2॥

धर्म और स्नेह दोनों ने कौसल्याजी की बुद्धि को घेर लिया। उनकी दशा साँप-छुछुंदर की सी हो गई। वे सोचने लगीं कि यदि मैं अनुरोध (हठ) करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाइयों में विरोध होता है,॥2॥

कहउँ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥

बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोठ सुत सम जानी॥3॥

और यदि वन जाने को कहती हूँ तो बड़ी हानि होती है। इस प्रकार के धर्मसंकट में पड़कर रानी विशेष रूप से सोच के वश हो गईं। फिर बुद्धिमती कौसल्याजी स्त्री धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर-॥3॥

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥

तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरमक टीका॥4॥

सरल स्वभाव वाली श्री रामचन्द्रजी की माता बड़ा धीरज धरकर वचन बोलीं- हे तात! मैं बलिहारी जाती हूँ, तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है॥4॥

दोहा :

राजु देन कहिदीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।

तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥55॥

राज्य देने को कहकर वन दे दिया, उसका मुझे लेशमात्र भी दुःख नहीं है। (दुःख तो इस बात का है कि) तुम्हारे बिना भरत को, महाराज को और प्रजा को बड़ा भारी क्लेश होगा॥55॥

चौपाई :

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥

जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥1॥

हे तात! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा, हो तो माता को (पिता से) बड़ी जानकर वन को मत जाओ, किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो, तो वन तुम्हारे लिए सैकड़ों अयोध्या के समान है॥1॥

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥

अंतहुँ उचित नृपहि बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥2॥

वन के देवता तुम्हारे पिता होंगे और वनदेवियाँ माता होंगी। वहाँ के पशु-पक्षी तुम्हारे

चरणकमलों के सेवक होंगे। राजा के लिए अंत में तो वनवास करना उचित ही है। केवल तुम्हारी (सुकुमार) अवस्था देखकर हृदय में दुःख होता है॥2॥

बड़भागी बनू अवध अभागी। जो रघुवंसतिलक तुम्हें त्यागी॥

जों सुत कहों संग मोहि लेहू। तुम्हारे हृदयँ होइ संदेह॥3॥

हे रघुवंश के तिलक! वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध अभागा है, जिसे तुमने त्याग दिया। हे पुत्र! यदि मैं कहूँ कि मुझे भी साथ ले चलो तो तुम्हारे हृदय में संदेह होगा (कि माता इसी बहाने मुझे रोकना चाहती हैं)॥3॥

पूत परम प्रिय तुम्हें सबही के। प्राण प्राण के जीवन जी के॥

ते तुम्हें कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि बचन बैठी पछिताऊँ॥4॥

हे पुत्र! तुम सभी के परम प्रिय हो। प्राणों के प्राण और हृदय के जीवन हो। वही (प्राणाधार) तुम कहते हो कि माता! मैं वन को जाऊँ और मैं तुम्हारे वचनों को सुनकर बैठी पछताती हूँ॥4॥

दोहा :

यह बिचारि नहिं करउँ हठ झूठ सनेहु बढाइ।

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥56॥

यह सोचकर झूठा स्नेह बढ़ाकर मैं हठ नहीं करती! बेटा! मैं बलैया लेती हूँ, माता का नाता मानकर मेरी सुध भूल न जाना॥56॥

चौपाई :

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं॥

अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्हें करुनाकर धरम धुरीना॥1॥

हे गोसाईं! सब देव और पितर तुम्हारी वैसी ही रक्षा करें, जैसे पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। तुम्हारे वनवास की अवधि (चौदह वर्ष) जल है, प्रियजन और कुटुम्बी मछली हैं। तुम दया की खान और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो॥1॥

अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आई॥

जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जन परिजन गाऊँ॥2॥

ऐसा विचारकर वही उपाय करना, जिसमें सबके जीते जी तुम आ मिलो। मैं बलिहारी जाती हूँ, तुम सेवकों, परिवार वालों और नगर भर को अनाथ करके सुखपूर्वक वन को जाओ॥2॥

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ कराल कालु बिपरीता॥

बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी॥3॥

आज सबके पुण्यों का फल पूरा हो गया। कठिन काल हमारे विपरीत हो गया। (इस प्रकार) बहुत

विलाप करके और अपने को परम अभागिनी जानकर माता श्री रामचन्द्रजी के चरणों में लिपट गईं॥3॥

दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा॥

राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समुझाई॥4॥

हृदय में भयानक दुःसह संताप छा गया। उस समय के बहुविध विलाप का वर्णन नहीं किया जा सकता। श्री रामचन्द्रजी ने माता को उठाकर हृदय से लगा लिया और फिर कोमल वचन कहकर उन्हें समझाया॥4॥

दोहा :

समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।

जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ॥57॥

उसी समय यह समाचार सुनकर सीताजी अकुला उठीं और सास के पास जाकर उनके दोनों चरणकमलों की वंदना कर सिर नीचा करके बैठ गईं॥57॥

चौपाई :

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥

बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता॥1॥

सास ने कोमल वाणी से आशीर्वाद दिया। वे सीताजी को अत्यन्त सुकुमारी देखकर व्याकुल हो उठीं। रूप की राशि और पति के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नीचा मुख किए बैठी सोच रही हैं॥1॥

चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥

की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना॥2॥

जीवननाथ (प्राणनाथ) वन को चलना चाहते हैं। देखें किस पुण्यवान से उनका साथ होगा- शरीर और प्राण दोनों साथ जाएँगे या केवल प्राण ही से इनका साथ होगा? विधाता की करनी कुछ जानी नहीं जाती॥2॥

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥

मनहुँ प्रेम बस बिनती करहीं। हमहि सीय पद जनि परिहरहीं॥3॥

सीताजी अपने सुंदर चरणों के नखों से धरती कुरेद रही हैं। ऐसा करते समय नूपुरों का जो मधुर शब्द हो रहा है, कवि उसका इस प्रकार वर्णन करते हैं कि मानो प्रेम के वश होकर नूपुर यह विनती कर रहे हैं कि सीताजी के चरण कभी हमारा त्याग न करें॥3॥

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पिआरी॥4॥

सीताजी सुंदर नेत्रों से जल बहा रही हैं। उनकी यह दशा देखकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी बोलीं- हे तात! सुनो, सीता अत्यन्त ही सुकुमारी हैं तथा सास, ससुर और कुटुम्बी सभी को प्यारी हैं॥4॥

दोहा :

पिता जनक भूपाल मनि ससुर भानुकुल भानु।

पति रबिकुल कैरव बिपिन बिधु गुन रूप निधानु॥58॥

इनके पिता जनकजी राजाओं के शिरोमणि हैं, ससुर सूर्यकुल के सूर्य हैं और पति सूर्यकुल रूपी कुमुदवन को खिलाने वाले चन्द्रमा तथा गुण और रूप के भंडार हैं॥58॥

में पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥

नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेँ प्राण जानकिहिं लाई॥1॥

फिर मैंने रूप की राशि, सुंदर गुण और शीलवाली प्यारी पुत्रवधू पाई है। मैंने इन (जानकी) को आँखों की पुतली बनाकर इनसे प्रेम बढ़ाया है और अपने प्राण इनमें लगा रखे हैं॥1॥

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली॥

फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥2॥

इन्हें कल्पलता के समान मैंने बहुत तरह से बड़े लाड़-चाव के साथ स्नेह रूपी जल से सींचकर पाला है। अब इस लता के फूलने-फलने के समय विधाता वाम हो गए। कुछ जाना नहीं जाता कि इसका क्या परिणाम होगा॥2॥

पलंग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा॥

जिअनमूरि जिमि जोगवत रहँ। दीप बाति नहिं टारन कहँ॥3॥

सीता ने पर्यकपृष्ठ (पलंग के ऊपर), गोद और हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा। मैं सदा संजीवनी जड़ी के समान (सावधानी से) इनकी रखवाली करती रही हूँ। कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती॥3॥

सोइ सिय चलन चहति बन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥

चंद किरन रस रसिक चकोरी। रबि रुखनयन सकइ किमि जोरी॥4॥

वही सीता अब तुम्हारे साथ वन चलना चाहती है। हे रघुनाथ! उसे क्या आज्ञा होती है? चन्द्रमा की किरणों का रस (अमृत) चाहने वाली चकोरी सूर्य की ओर आँख किस तरह मिला सकती है॥

4॥

दोहा :

करि केहरि निसिचर चरहिं दुष्ट जंतु बन भूरि।

बिष बाटिकाँ कि सोह सुत सुभग सजीवनि मूरि॥59॥

हाथी, सिंह, राक्षस आदि अनेक दुष्ट जीव-जन्तु वन में विचरते रहते हैं। हे पुत्र! क्या विष की वाटिका में सुंदर संजीवनी बूटी शोभा पा सकती है?॥59॥

चौपाई :

बन हित कोल किरात किसोरी। रचीं बिरंचि बिषय सुख भोरी॥

पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ॥1॥

वन के लिए तो ब्रह्माजी ने विषय सुख को न जानने वाली कोल और भीलों की लड़कियों को रचा है, जिनका पत्थर के कीड़े जैसा कठोर स्वभाव है। उन्हें वन में कभी क्लेश नहीं होता॥1॥

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥

सिय बन बसिहि तात केहि भाँती। चित्रलिखित कपि देखि डेराती॥2॥

अथवा तपस्वियों की स्त्रियाँ वन में रहने योग्य हैं, जिन्होंने तपस्या के लिए सब भोग तज दिए हैं। हे पुत्र! जो तसवीर के बंदर को देखकर डर जाती हैं, वे सीता वन में किस तरह रह सकेंगी?॥

2॥

सुरसर सुभग बनज बन चारी। डाबर जोगु कि हंसकुमारी॥

अस बिचारि जस आयसु होई। मैं सिख देऊँ जानकिहि सोई॥3॥

देवसरोवर के कमल वन में विचरण करने वाली हंसिनी क्या गडैयों (तलैयों) में रहने के योग्य है? ऐसा विचार कर जैसी तुम्हारी आज्ञा हो, मैं जानकी को वैसी ही शिक्षा दूँ॥3॥

जों सिय भवन रहै कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥

सुनि रघुबीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधौँ जनु सानी॥4॥

माता कहती हैं- यदि सीता घर में रहें तो मुझको बहुत सहारा हो जाए। श्री रामचन्द्रजी ने माता की प्रिय वाणी सुनकर, जो मानो शील और स्नेह रूपी अमृत से सनी हुई थी,॥4॥

दोहा :

कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्हि मातु परितोष।

लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष॥60॥

विवेकमय प्रिय वचन कहकर माता को संतुष्ट किया। फिर वन के गुण-दोष प्रकट करके वे जानकीजी को समझाने लगे॥60॥

मासपारायण, चौदहवाँ विश्राम

चौपाई :

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समठ समुझि मन माहीं॥

राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आन भाँति जियँ जनि कछु गुनहू॥1॥

माता के सामने सीताजी से कुछ कहने में सकुचाते हैं। पर मन में यह समझकर कि यह समय ऐसा ही है, वे बोले- हे राजकुमारी! मेरी सिखावन सुनो। मन में कुछ दूसरी तरह न समझ लेना॥

1॥

आपन मोर नीक जौँ चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू॥

आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई॥2॥

जो अपना और मेरा भला चाहती हो, तो मेरा वचन मानकर घर रहो। हे भामिनी! मेरी आज्ञा का पालन होगा, सास की सेवा बन पड़ेगी। घर रहने में सभी प्रकार से भलाई है॥2॥

एहि ते अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥

जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी॥3॥

आदरपूर्वक सास-ससुर के चरणों की पूजा (सेवा) करने से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। जब-जब माता मुझे याद करेंगी और प्रेम से व्याकुल होने के कारण उनकी बुद्धि भोली हो जाएगी (वे अपने-आपको भूल जाएँगी)॥3॥

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥

कहउँ सुभायँ सपथ सत मोही। सुमुखि मातु हित राखउँ तोही॥4॥

हे सुंदरी! तब-तब तुम कोमल वाणी से पुरानी कथाएँ कह-कहकर इन्हें समझाना। हे सुमुखि! मुझे सैकड़ों सौगंध हैं, मैं यह स्वभाव से ही कहता हूँ कि मैं तुम्हें केवल माता के लिए ही घर पर रखता हूँ॥4॥

दोहा :

गुरु श्रुति संमत धरम फलु पाइअ बिनहिं कलेस।

हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस॥61॥

(मेरी आज्ञा मानकर घर पर रहने से) गुरु और वेद के द्वारा सम्मत धर्म (के आचरण) का फल तुम्हें बिना ही क्लेश के मिल जाता है, किन्तु हठ के वश होकर गालव मुनि और राजा नहुष आदि सब ने संकट ही सहे॥61॥

चौपाई :

मैं पुनि करि प्रवान पितु बानी। बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी॥

दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥1॥

हे सुमुखि! हे सयानी! सुनो, मैं भी पिता के वचन को सत्य करके शीघ्र ही लौटूँगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। हे सुंदरी! हमारी यह सीख सुनो!॥1॥

जों हठ करहु प्रेम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी। घोर घामु हिम बारि बयारी॥2॥

हे वामा! यदि प्रेमवश हठ करोगी, तो तुम परिणाम में दुःख पाओगी। वन बड़ा कठिन (क्लेशदायक) और भयानक है। वहाँ की धूप, जाड़ा, वर्षा और हवा सभी बड़े भयानक हैं॥2॥

कुस कंटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे॥3॥

रास्ते में कुश, काँटे और बहुत से कंकड़ हैं। उन पर बिना जूते के पैदल ही चलना होगा। तुम्हारे चरणकमल कोमल और सुंदर हैं और रास्ते में बड़े-बड़े दुर्गम पर्वत हैं॥3॥

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥4॥

पर्वतों की गुफाएँ, खोह (दर्रे), नदियाँ, नद और नाले ऐसे अगम्य और गहरे हैं कि उनकी ओर देखा तक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे (भयानक) शब्द करते हैं कि उन्हें सुनकर धीरज भाग जाता है॥4॥

दोहा :

भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।

ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥62॥

जमीन पर सोना, पेटों की छाल के वस्त्र पहनना और कंद, मूल, फल का भोजन करना होगा। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समय के अनुकूल ही मिल सकेगा॥62॥

चौपाई :

नर अहार रजनीचर चरहीं। कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥

लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी॥1॥

मनुष्यों को खाने वाले निशाचर (राक्षस) फिरते रहते हैं। वे करोड़ों प्रकार के कपट रूप धारण कर लेते हैं। पहाड़ का पानी बहुत ही लगता है। वन की विपत्ति बखानी नहीं जा सकती॥1॥

ब्याल कराल बिहग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा॥

डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥2॥

वन में भीषण सर्प, भयानक पक्षी और स्त्री-पुरुषों को चुराने वाले राक्षसों के झुंड के झुंड रहते हैं।

वन की (भयंकरता) याद आने मात्र से धीर पुरुष भी डर जाते हैं। फिर हे मृगलोचनि! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो!॥2॥

हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू॥

मानस सलिल सुधाँ प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली॥3॥

हे हंसगमनी! तुम वन के योग्य नहीं हो। तुम्हारे वन जाने की बात सुनकर लोग मुझे अपयश देंगे (बुरा कहेंगे)। मानसरोवर के अमृत के समान जल से पाली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्र में जी सकती है॥3॥

नव रसाल बन बिहरनसीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥

रहहु भवन अस हृदयँ बिचारी। चंदबदनि दुखु कानन भारी॥4॥

नवीन आम के वन में विहार करने वाली कोयल क्या करील के जंगल में शोभा पाती है? हे चन्द्रमुखी! हृदय में ऐसा विचारकर तुम घर ही पर रहो। वन में बड़ा कष्ट है॥4॥

दोहा :

सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।

सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥63॥

स्वाभाविक ही हित चाहने वाले गुरु और स्वामी की सीख को जो सिर चढ़ाकर नहीं मानता, वह हृदय में भरपेट पछताता है और उसके हित की हानि अवश्य होती है॥63॥

चौपाई :

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥

शीतल सिख दाहक भइ कैसैं। चकइहि सरद चंद निसि जैसैं॥1॥

प्रियतम के कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताजी के सुंदर नेत्र जल से भर गए। श्री रामजी की यह शीतल सीख उनको कैसी जलाने वाली हुई, जैसे चकवी को शरद ऋतु की चाँदनी रात होती है॥1॥

उतरु न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥

बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनिकुमारी॥2॥

जानकीजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता, वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे पवित्र और प्रेमी स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। नेत्रों के जल (आँसुओं) को जबर्दस्ती रोककर वे पृथ्वी की कन्या सीताजी हृदय में धीरज धरकर,॥2॥

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देबि बड़ि अबिनय मोरी।

दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥3॥

सास के पैर लगकर, हाथ जोड़कर कहने लगीं- हे देवि! मेरी इस बड़ी भारी ढिठाई को क्षमा कीजिए। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी है, जिससे मेरा परम हित हो॥3॥

मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं। पिय बियोग सम दुखु जग नाहीं॥4॥

परन्तु मैंने मन में समझकर देख लिया कि पति के वियोग के समान जगत में कोई दुःख नहीं है॥4॥

दोहा :

प्राणनाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान।

तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥64॥

हे प्राणनाथ! हे दया के धाम! हे सुंदर! हे सुखों के देने वाले! हे सुजान! हे रघुकुल रूपी कुमुद के खिलाने वाले चन्द्रमा! आपके बिना स्वर्ग भी मेरे लिए नरक के समान है॥64॥

चौपाई :

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृदय समुदाई॥

सासु ससुर गुरु सजन सहाई। सुत सुंदर सुशील सुखदाई॥1॥

माता, पिता, बहिन, प्यारा भाई, प्यारा परिवार, मित्रों का समुदाय, सास, ससुर, गुरु, स्वजन (बन्धु-बांधव), सहायक और सुंदर, सुशील और सुख देने वाला पुत्र-॥1॥

जहँ लगिनाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥

तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥2॥

हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। शरीर, धन, घर, पृथ्वी, नगर और राज्य, पति के बिना स्त्री के लिए यह सब शोक का समाज है॥

2॥

भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥

प्राणनाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥3॥

भोग रोग के समान हैं, गहने भार रूप हैं और संसार यम यातना (नरक की पीड़ा) के समान है। हे प्राणनाथ! आपके बिना जगत में मुझे कहीं कुछ भी सुखदायी नहीं है॥3॥

जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥4॥

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ!

आपके साथ रहकर आपका शरद्-(पूर्णमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे॥4॥

दोहा :

खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥65॥

हे नाथ! आपके साथ पक्षी और पशु ही मेरे कुटुम्बी होंगे, वन ही नगर और वृक्षों की छाल ही निर्मल वस्त्र होंगे और पर्णकुटी (पत्तों की बनी झोपड़ी) ही स्वर्ग के समान सुखों की मूल होगी॥

65॥

चौपाई :

बनदेबीं बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥

कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु संग मंजु मनोज तुराई॥1॥

उदार हृदय के वनदेवी और वनदेवता ही सास-ससुर के समान मेरी सार-संभार करेंगे और कुशा और पत्तों की सुंदर साथरी (बिछौना) ही प्रभु के साथ कामदेव की मनोहर तोशक के समान होगी॥1॥

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥

छिनु-छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥2॥

कन्द, मूल और फल ही अमृत के समान आहार होंगे और (वन के) पहाड़ ही अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान होंगे। क्षण-क्षण में प्रभु के चरण कमलों को देख-देखकर मैं ऐसी आनंदित रहूँगी जैसे दिन में चकवी रहती है॥2॥

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥

प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥3॥

हे नाथ! आपने वन के बहुत से दुःख और बहुत से भय, विषाद और सन्ताप कहे, परन्तु हे कृपानिधान! वे सब मिलकर भी प्रभु (आप) के वियोग (से होने वाले दुःख) के लवलेश के समान भी नहीं हो सकते॥3॥

अस जियँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाडिअ जनि॥

बिनती बहुत करौं का स्वामी। करुनामय उर अंतरजामी॥4॥

ऐसा जी मैं जानकर, हे सुजान शिरोमणि! आप मुझे साथ ले लीजिए, यहाँ न छोड़िए। हे स्वामी! मैं अधिक क्या विनती करूँ? आप करुणामय हैं और सबके हृदय के अंदर की जानने वाले हैं॥

4॥

दोहा :

राखिअ अवध जो अवधि लागि रहत न जनिअहिं प्रान।

दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥66॥

हे दीनबन्धु! हे सुंदर! हे सुख देने वाले! हे शील और प्रेम के भंडार! यदि अवधि (चौदह वर्ष) तक मुझे अयोध्या में रखते हैं, तो जान लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे॥66॥

चौपाई :

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥1॥

क्षण-क्षण में आपके चरण कमलों को देखते रहने से मुझे मार्ग चलने में थकावट न होगी। हे प्रियतम! मैं सभी प्रकार से आपकी सेवा करूँगी और मार्ग चलने से होने वाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी॥1॥

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥

श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्राणपति पेखें॥2॥

आपके पैर धोकर, पेड़ों की छाया में बैठकर, मन में प्रसन्न होकर हवा करूँगी (पंखा झलूँगी)। पसीने की बूँदों सहित श्याम शरीर को देखकर प्राणपति के दर्शन करते हुए दुःख के लिए मुझे अवकाश ही कहाँ रहेगा॥2॥

सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥

बार बार मृदु मूर्ति जोही। लागिहि तात बयारि न मोही॥3॥

समतल भूमि पर घास और पेड़ों के पत्ते बिछाकर यह दासी रातभर आपके चरण दबावेगी। बार-बार आपकी कोमल मूर्ति को देखकर मुझको गरम हवा भी न लगेगी॥3॥

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघबधुहि जिमि ससक सिआरा॥

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहँ भोगू॥4॥

प्रभु के साथ (रहते) मेरी ओर (आँख उठाकर) देखने वाला कौन है (अर्थात् कोई नहीं देख सकता)! जैसे सिंह की स्त्री (सिंहनी) को खरगोश और सियार नहीं देख सकते। मैं सुकुमारी हूँ और नाथ वन के योग्य हैं? आपको तो तपस्या उचित है और मुझको विषय भोग?॥4॥

दोहा :

ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।

तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्राण॥67॥

ऐसे कठोर वचन सुनकर भी जब मेरा हृदय न फटा तो, हे प्रभु! (मालूम होता है) ये पामर प्राण आपके वियोग का भीषण दुःख सहेंगे॥67॥

चौपाई :

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जियँ जाना। हठि राखें नहिं राखिहि प्राणा॥1॥

ऐसा कहकर सीताजी बहुत ही व्याकुल हो गईं। वे वचन के वियोग को भी न सम्हाल सकीं।
(अर्थात् शरीर से वियोग की बात तो अलग रही, वचन से भी वियोग की बात सुनकर वे अत्यन्त विकल हो गईं।) उनकी यह दशा देखकर श्री रघुनाथजी ने अपने जी में जान लिया कि हठपूर्वक इन्हें यहाँ रखने से ये प्राणों को न रखेंगी॥1॥

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहिं बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥2॥

तब कृपालु, सूर्यकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने कहा कि सोच छोड़कर मेरे साथ वन को चलो। आज विषाद करने का अवसर नहीं है। तुरंत वनगमन की तैयारी करो॥2॥

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥3॥

श्री रामचन्द्रजी ने प्रिय वचन कहकर प्रियतमा सीताजी को समझाया। फिर माता के पैरों लगकर आशीर्वाद प्राप्त किया। (माता ने कहा-) बेटा! जल्दी लौटकर प्रजा के दुःख को मिटाना और यह निठुर माता तुम्हें भूल न जाए॥3॥

फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहउँ नयन मनोहर जोरी।
सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि॥4॥

हे विधाता! क्या मेरी दशा भी फिर पलटेगी? क्या अपने नेत्रों से मैं इस मनोहर जोड़ी को फिर देख पाऊँगी? हे पुत्र! वह सुंदर दिन और शुभ घड़ी कब होगी जब तुम्हारी जननी जीते जी तुम्हारा चाँद सा मुखड़ा फिर देखेगी॥4॥

दोहा :

बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुवर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहउँ गात॥68॥

हे तात! 'वत्स' कहकर, 'लाल' कहकर, 'रघुपति' कहकर, 'रघुवर' कहकर, मैं फिर कब तुम्हें बुलाकर हृदय से लगाऊँगी और हर्षित होकर तुम्हारे अंगों को देखूँगी॥68॥

चौपाई :

लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना॥1॥

यह देखकर कि माता स्नेह के मारे अधीर हो गई हैं और इतनी अधिक व्याकुल हैं कि मुँह से

वचन नहीं निकलता। श्री रामचन्द्रजी ने अनेक प्रकार से उन्हें समझाया। वह समय और स्नेह वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

तब जानकी सासु पग लगी। सुनिअ माय में परम अभागी॥

सेवा समय दैअँ बनू दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥2॥

तब जानकीजी सास के पाँव लगीं और बोलीं- हे माता! सुनिए, मैं बड़ी ही अभागिनी हूँ। आपकी सेवा करने के समय दैव ने मुझे वनवास दे दिया। मेरा मनोरथ सफल न किया॥2॥

तजब छोभु जनि छाड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥

सुनिसिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहीं बखानी॥3॥

आप क्षोभ का त्याग कर दें, परन्तु कृपा न छोड़िएगा। कर्म की गति कठिन है, मुझे भी कुछ दोष नहीं है। सीताजी के वचन सुनकर सास व्याकुल हो गईं। उनकी दशा को मैं किस प्रकार बखान कर कहूँ॥3॥

बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही॥

अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लागि गंग जमुन जल धारा॥4॥

उन्होंने सीताजी को बार-बार हृदय से लगाया और धीरज धरकर शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गंगाजी और यमुनाजी में जल की धारा बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अचल रहे॥4॥

दोहा :

सीतहि सासु आसीस सिख दीन्हि अनेक प्रकार।

चली नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार॥69॥

सीताजी को सास ने अनेकों प्रकार से आशीर्वाद और शिक्षाएँ दीं और वे (सीताजी) बड़े ही प्रेम से बार-बार चरणकमलों में सिर नवाकर चलीं॥69॥

चौपाई :

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥

कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥1॥

जब लक्ष्मणजी ने समाचार पाए, तब वे व्याकुल होकर उदास मुँह उठ दौड़े। शरीर काँप रहा है, रोमांच हो रहा है, नेत्र आँसुओं से भरे हैं। प्रेम से अत्यन्त अधीर होकर उन्होंने श्री रामजी के चरण पकड़ लिए॥1॥

कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीन जनु जल तें काढ़े॥

सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा॥2॥

वे कुछ कह नहीं सकते, खड़े-खड़े देख रहे हैं। (ऐसे दीन हो रहे हैं) मानो जल से निकाले जाने

पर मछली दीन हो रही हो। हृदय में यह सोच है कि हे विधाता! क्या होने वाला है? क्या हमारा सब सुख और पुण्य पूरा हो गया?॥2॥

मो कहूँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा॥

राम बिलोकि बंधु कर जोरें। देह गेहसब सन तृनु तोरें॥3॥

मुझको श्री रघुनाथजी क्या कहेंगे? घर पर रखेंगे या साथ ले चलेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने भाई लक्ष्मण को हाथ जोड़े और शरीर तथा घर सभी से नाता तोड़े हुए खड़े देखा॥3॥

बोले बचनु राम नय नागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥

तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू॥4॥

तब नीति में निपुण और शील, स्नेह, सरलता और सुख के समुद्र श्री रामचन्द्रजी वचन बोले- हे तात! परिणाम में होने वाले आनंद को हृदय में समझकर तुम प्रेमवश अधीर मत होओ॥4॥

दोहा :

मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ।

लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर नतरु जनमु जग जायँ॥70॥

जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामी की शिक्षा को स्वाभाविक ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेने का लाभ पाया है, नहीं तो जगत में जन्म व्यर्थ ही है॥70॥

चौपाई :

अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई॥

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं॥1॥

हे भाई! हृदय में ऐसा जानकर मेरी सीख सुनो और माता-पिता के चरणों की सेवा करो। भरत और शत्रुघ्न घर पर नहीं हैं, महाराज वृद्ध हैं और उनके मन में मेरा दुःख है॥1॥

में बन जाऊँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा॥

गुरु पितु मातु प्रजा परिवारु। सब कहूँ परइ दुसह दुख भारु॥2॥

इस अवस्था में मैं तुमको साथ लेकर वन जाऊँ तो अयोध्या सभी प्रकार से अनाथ हो जाएगी। गुरु, पिता, माता, प्रजा और परिवार सभी पर दुःख का दुःसह भार आ पड़ेगा॥2॥

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड़ दोषू॥

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी॥3॥

अतः तुम यहीं रहो और सबका संतोष करते रहो। नहीं तो हे तात! बड़ा दोष होगा। जिसके राज्य में प्यारी प्रजा दुःखी रहती है, वह राजा अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है॥3॥

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी॥

सिअरें बचन सूखि गए कैसें। परसत तुहिन तामरसु जैसें॥4॥

हे तात! ऐसी नीति विचारकर तुम घर रह जाओ। यह सुनते ही लक्ष्मणजी बहुत ही व्याकुल हो गए! इन शीतल वचनों से वे कैसे सूख गए, जैसे पाले के स्पर्श से कमल सूख जाता है!॥4॥

दोहा :

उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ।

नाथ दासु में स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥71॥

प्रेमवश लक्ष्मणजी से कुछ उत्तर देते नहीं बनता। उन्होंने व्याकुल होकर श्री रामजी के चरण पकड़ लिए और कहा- हे नाथ! मैं दास हूँ और आप स्वामी हैं, अतः आप मुझे छोड़ ही दें तो मेरा क्या वश है?॥71॥

चौपाई :

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥

नरबर धीर धरम धुर धारी। निगम नीति कहूँ ते अधिकारी॥1॥

हे स्वामी! आपने मुझे सीख तो बड़ी अच्छी दी है, पर मुझे अपनी कायरता से वह मेरे लिए अगम (पहुँच के बाहर) लगी। शास्त्र और नीति के तो वे ही श्रेष्ठ पुरुष अधिकारी हैं, जो धीर हैं और धर्म की धुरी को धारण करने वाले हैं॥1॥

में सिसु प्रभु सनेहँ प्रतिपाला। मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥2॥

मैं तो प्रभु (आप) के स्नेह में पला हुआ छोटा बच्चा हूँ! कहीं हंस भी मंदराचल या सुमेरु पर्वत को उठा सकते हैं! हे नाथ! स्वभाव से ही कहता हूँ, आप विश्वास करें, मैं आपको छोड़कर गुरु, पिता, माता किसी को भी नहीं जानता॥2॥

जहँ लागि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥

मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥3॥

जगत में जहाँ तक स्नेह का संबंध, प्रेम और विश्वास है, जिनको स्वयं वेद ने गाया है- हे स्वामी! हे दीनबन्धु! हे सबके हृदय के अंदर की जानने वाले! मेरे तो वे सब कुछ केवल आप ही हैं॥3॥

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥

मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥4॥

धर्म और नीति का उपदेश तो उसको करना चाहिए, जिसे कीर्ति, विभूति (ऐश्वर्य) या सद्गति प्यारी हो, किन्तु जो मन, वचन और कर्म से चरणों में ही प्रेम रखता हो, हे कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने के योग्य है?॥4॥

दोहा :

करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत॥72॥

दया के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने भले भाई के कोमल और नम्रतायुक्त वचन सुनकर और उन्हें स्नेह के कारण डरे हुए जानकर, हृदय से लगाकर समझाया॥72॥

चौपाई :

मागहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी। भयउ लाभ बड़ गड़ बड़ि हानी॥1॥

(और कहा-) हे भाई! जाकर माता से विदा माँग आओ और जल्दी वन को चलो! रघुकुल में श्रेष्ठ श्री रामजी की वाणी सुनकर लक्ष्मणजी आनंदित हो गए। बड़ी हानि दूर हो गई और बड़ा लाभ हुआ॥1॥

हरषित हृदयँ मातु पहिँ आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथ॥2॥

वे हर्षित हृदय से माता सुमित्राजी के पास आए, मानो अंधा फिर से नेत्र पा गया हो। उन्होंने जाकर माता के चरणों में मस्तक नवाया, किन्तु उनका मन रघुकुल को आनंद देने वाले श्री रामजी और जानकीजी के साथ था॥2॥

पूँछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी।
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥3॥

माता ने उदास मन देखकर उनसे (कारण) पूछा। लक्ष्मणजी ने सब कथा विस्तार से कह सुनाई। सुमित्राजी कठोर वचनों को सुनकर ऐसी सहम गई जैसे हिरनी चारों ओर वन में आग लगी देखकर सहम जाती है॥3॥

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिँ सनेह सब करब अकाजू॥
मागत बिदा सभय सकुचाही। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाही॥4॥

लक्ष्मण ने देखा कि आज (अब) अनर्थ हुआ। ये स्नेह वश काम बिगाड़ देंगी! इसलिए वे विदा माँगते हुए डर के मारे सकुचाते हैं (और मन ही मन सोचते हैं) कि हे विधाता! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं॥4॥

दोहा :

समुझि सुमित्राँ राम सिय रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥73॥

सुमित्राजी ने श्री रामजी और श्री सीताजी के रूप, सुंदर शील और स्वभाव को समझकर और उन पर राजा का प्रेम देखकर अपना सिर धुना (पीटा) और कहा कि पापिनी कैकेयी ने बुरी तरह घात लगाया॥73॥

चौपाई :

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥1॥

परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं- हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं!॥1॥

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँई दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जों पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥2॥

जहाँ श्री रामजी का निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है॥2॥

गुरु पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥3॥

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्री रामचन्द्रजी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं॥3॥

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तैं। सब मानिअहिं राम के नातैं॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥4॥

जगत में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजी के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ!॥4॥

दोहा :

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जों तुम्हरें मन छाडि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥74॥

मैं बलिहारी जाती हूँ, (हे पुत्र!) मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥74॥

चौपाई :

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तैं हित जानी॥1॥

संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्री रघुनाथजी का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका व्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है॥1॥

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥2॥

तुम्हारे ही भाग्य से श्री रामजी वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री सीतारामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो॥2॥

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥

सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥3॥

राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह- इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीतारामजी की सेवा करना॥3॥

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥

जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥4॥

तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्री रामजी और सीताजी रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे श्री रामचन्द्रजी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है॥4॥

छन्द :

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।

पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥

तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।

रति होठ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई॥

हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात् तुम वही करना), जिससे वन में तुम्हारे कारण श्री रामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाएँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजी ने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्री लक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर (वन जाने की) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्री सीताजी और श्री रघुवीरजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो!

सोरठा :

मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ।

बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥75॥

माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय में डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाए)
लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिए जैसे सौभाग्यवश कोई हिरन कठिन फंदे को तुड़ाकर भाग
निकला हो॥75॥

चौपाई :

गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥1॥

लक्ष्मणजी वहाँ गए जहाँ श्री जानकीनाथजी थे और प्रिय का साथ पाकर मन में बड़े ही प्रसन्न
हुए। श्री रामजी और सीताजी के सुंदर चरणों की वंदना करके वे उनके साथ चले और राजभवन
में आए॥1॥

कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥

तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥2॥

नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी! उनके शरीर
दुबले, मन दुःखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे शहद छीन लिए जाने पर
शहद की मक्खियाँ व्याकुल हों॥2॥

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताही। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाही॥

भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥3॥

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल
हो रहे हों। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता॥3॥

सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥

सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥4॥

'श्री रामजी पधारें हैं', ये प्रिय वचन कहकर मंत्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनों
पुत्रों को (वन के लिए तैयार) देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए॥4॥

दोहा :

सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ।

बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥76॥

सीता सहित दोनों सुंदर पुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेह वश बारंबार उन्हें
हृदय से लगा लेते हैं॥76॥

चौपाई :

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥

नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥1॥

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्ताप है। तब रघुकुल के वीर श्री रामचन्द्रजी ने अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर उठकर विदा माँगी-॥

1॥

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥

तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥2॥

हे पिताजी! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निंदा होगी॥2॥

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥

सुनहु तात तुम्ह कहूँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥3॥

यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर श्री रघुनाथजी की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा- हे तात! सुनो, तुम्हारे लिए मुनि लोग कहते हैं कि श्री राम चराचर के स्वामी हैं॥3॥

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥

करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥4॥

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है, जो कर्म करता है, वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं॥4॥

दोहा :

औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु।

अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥77॥

(किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है,) अपराध तो कोई और ही करे और उसके फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है?॥77॥

चौपाई :

रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥

लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥1॥

राजा ने इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत से उपाय किए, पर जब उन्होंने धर्मधुरंधर, धीर और बुद्धिमान श्री रामजी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े,॥1॥

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥

कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥2॥

तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाए। फिर सास, ससुर तथा पिता के (पास रहने के) सुखों को समझाया॥2॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरुन सुगमु बनु बिषमु न लागा॥

औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥3॥

परन्तु सीताजी का मन श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त था, इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपतियों की अधिकता बता-बताकर सीताजी को समझाया॥3॥

सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥

तुम्ह कहूँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥4॥

मंत्री सुमंत्रजी की पत्नी और गुरु वशिष्ठजी की स्त्री अरुंधतीजी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो (राजा ने) वनवास दिया नहीं है, इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो॥4॥

दोहा :

सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।

सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥78॥

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुनने पर सीताजी को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं) मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी हो॥78॥

चौपाई :

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥

मुनि पट भूषण भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥1॥

सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रख दिए और कोमल वाणी से कहा-॥1॥

नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥

सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥2॥

हे रघुवीर! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे! पुण्य, सुंदर यश और परलोक चाहे नष्ट हे जाए, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे॥2॥

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥

भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥3॥

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने (बड़ा) सुख पाया, परन्तु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे) अब भी अभागे प्राण (क्यों) नहीं निकलते!॥3॥

लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥4॥

राजा मूर्छित हो गए, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्री रामचन्द्रजी तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिए॥4॥

दोहा :

सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।

बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥79॥

वन का सब साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्री रामचन्द्रजी स्त्री (श्री सीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वंदना करके सबको अचेत करके चले॥79॥

चौपाई :

निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े॥

कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बोलाए॥1॥

राजमहल से निकलकर श्री रामचन्द्रजी वशिष्ठजी के दरवाजे पर जा खड़े हुए और देखा कि सब लोग विरह की अग्नि में जल रहे हैं। उन्होंने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया, फिर श्री रामचन्द्रजी ने ब्राह्मणों की मंडली को बुलाया॥1॥

गुर सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान बिनय बस कीन्हे॥

जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥2॥

गुरुजी से कहकर उन सबको वर्षाशन (वर्षभर का भोजन) दिए और आदर, दान तथा विनय से उन्हें वश में कर लिया। फिर याचकों को दान और मान देकर संतुष्ट किया तथा मित्रों को पवित्र

प्रेम से प्रसन्न किया॥2॥

दासीं दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी॥

सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं॥3॥

फिर दास-दासियों को बुलाकर उन्हें गुरुजी को सौंपकर, हाथ जोड़कर बोले- हे गुसाईं! इन सबकी माता-पिता के समान सार-संभार (देख-रेख) करते रहिएगा॥3॥

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी॥

सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तैं रहैं भुआल सुखारी॥4॥

श्री रामचन्द्रजी बार-बार दोनों हाथ जोड़कर सबसे कोमल वाणी कहते हैं कि मेरा सब प्रकार से हितकारी मित्र वही होगा, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥4॥

दोहा :

मातु सकल मोरे बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।

सोइ उपाठ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन॥80॥

हे परम चतुर पुरवासी सज्जनों! आप लोग सब वही उपाए कीजिएगा, जिससे मेरी सब माताएँ मेरे विरह के दुःख से दुःखी न हों॥80॥

चौपाई :

एहि बिधि राम सबहि समझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा॥

गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई॥1॥

इस प्रकार श्री रामजी ने सबको समझाया और हर्षित होकर गुरुजी के चरणकमलों में सिर नवाया। फिर गणेशजी, पार्वतीजी और कैलासपति महादेवजी को मनाकर तथा आशीर्वाद पाकर श्री रघुनाथजी चले॥1॥

राम चलत अति भयउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू॥

कुसगुन लंक अवध अति सोकू। हरष बिषाद बिबस सुरलोकू॥2॥

श्री रामजी के चलते ही बड़ा भारी विषाद हो गया। नगर का आर्तनाद (हाहाकर) सुना नहीं जाता। लंका में बुरे शकुन होने लगे, अयोध्या में अत्यन्त शोक छा गया और देवलोक में सब हर्ष और विषाद दोनों के वश में गए। (हर्ष इस बात का था कि अब राक्षसों का नाश होगा और विषाद अयोध्यावासियों के शोक के कारण था)॥2॥

गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे॥

रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं॥3॥

मूर्छा दूर हुई, तब राजा जागे और सुमंत्र को बुलाकर ऐसा कहने लगे- श्री राम वन को चले गए,

पर मेरे प्राण नहीं जा रहे हैं। न जाने ये किस सुख के लिए शरीर में टिक रहे हैं॥3॥

एहि तैं कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राणा॥

पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥4॥

इससे अधिक बलवती और कौन सी व्यथा होगी, जिस दुःख को पाकर प्राण शरीर को छोड़ेंगे।

फिर धीरज धरकर राजा ने कहा- हे सखा! तुम रथ लेकर श्री राम के साथ जाओ॥4॥

दोहा :

सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।

रथ चढाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥81॥

अत्यन्त सुकुमार दोनों कुमारों को और सुकुमारी जानकी को रथ में चढ़ाकर, वन दिखलाकर

चार दिन के बाद लौट आना॥81॥

चौपाई :

जों नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढव्रत रघुराई॥

तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥1॥॥

यदि धैर्यवान दोनों भाई न लौटें- क्योंकि श्री रघुनाथजी प्रण के सच्चे और दृढ़ता से नियम का पालन करने वाले हैं- तो तुम हाथ जोड़कर विनती करना कि हे प्रभो! जनककुमारी सीताजी को तो लौटा दीजिए॥1॥

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥

सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥2॥

जब सीता वन को देखकर डरें, तब मौका पाकर मेरी यह सीख उनसे कहना कि तुम्हारे सास और ससुर ने ऐसा संदेश कहा है कि हे पुत्री! तुम लौट चलो, वन में बहुत क्लेश हैं॥2॥

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥

एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥3॥

कभी पिता के घर, कभी ससुराल, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहीं रहना। इस प्रकार तुम बहुत से उपाय करना। यदि सीताजी लौट आईं तो मेरे प्राणों को सहारा हो जाएगा॥3॥

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भएँ बिधि बामा॥

अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। रामु लखनु सिय आनि देखाऊ॥4॥

(नहीं तो अंत में मेरा मरण ही होगा। विधाता के विपरीत होने पर कुछ वश नहीं चलता। हा! राम, लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखाओ। ऐसा कहकर राजा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर

पड़े॥4॥

दोहा :

पाइ रजायसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गयठ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥82॥

सुमंत्रजी राजा की आज्ञा पाकर, सिर नवाकर और बहुत जल्दी रथ जुड़वाकर वहाँ गए, जहाँ नगर के बाहर सीताजी सहित दोनों भाई थे॥82॥

चौपाई :

तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥1॥

तब (वहाँ पहुँचकर) सुमंत्र ने राजा के वचन श्री रामचन्द्रजी को सुनाए और विनती करके उनको रथ पर चढ़ाया। सीताजी सहित दोनों भाई रथ पर चढ़कर हृदय में अयोध्या को सिर नवाकर चले॥1॥

चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथे॥

कृपासिंधु बहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहिं॥2॥

श्री रामचन्द्रजी को जाते हुए और अयोध्या को अनाथ (होते हुए) देखकर सब लोग व्याकुल होकर उनके साथ हो लिए। कृपा के समुद्र श्री रामजी उन्हें बहुत तरह से समझाते हैं, तो वे (अयोध्या की ओर) लौट जाते हैं, परन्तु प्रेमवश फिर लौट आते हैं॥2॥

लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ कालराति अँधिआरी॥

घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥3॥

अयोध्यापुरी बड़ी डरावनी लग रही है, मानो अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर-नारी भयानक जन्तुओं के समान एक-दूसरे को देखकर डर रहे हैं॥3॥

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥4॥

घर श्मशान, कुटुम्बी भूत-प्रेत और पुत्र, हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बगीचों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता॥4॥

दोहा :

हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।

पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥83॥

करोड़ों घोड़े, हाथी, खेलने के लिए पाले हुए हिरन, नगर के (गाय, बैल, बकरी आदि) पशु, पपीहे,

मोर, कोयल, चकवे, तोते, मैना, सारस, हंस और चकोर-॥83॥

चौपाई :

राम बियोग बिकल सब ठाढ़े। जहँ तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े॥

नगरु सफल बनू गहबर भारी। खग मृग बिपुल सकल नर नारी॥1॥

श्री रामजी के वियोग में सभी व्याकुल हुए जहाँ-तहाँ (ऐसे चुपचाप स्थिर होकर) खड़े हैं, मानो तसवीरों में लिखकर बनाए हुए हैं। नगर मानो फलों से परिपूर्ण बड़ा भारी सघन वन था। नगर निवासी सब स्त्री-पुरुष बहुत से पशु-पक्षी थे। (अर्थात् अवधपुरी अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों फलों को देने वाली नगरी थी और सब स्त्री-पुरुष सुख से उन फलों को प्राप्त करते थे)॥1॥

बिधि कैकई किरातिनि कीन्ही। जेहिं दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥

सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥2॥

विधाता ने कैकेयी को भीलनी बनाया, जिसने दसों दिशाओं में दुःसह दावाग्नि (भयानक आग) लगा दी। श्री रामचन्द्रजी के विरह की इस अग्नि को लोग सह न सके। सब लोग व्याकुल होकर भाग चले॥2॥

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥

जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥3॥

सबने मन में विचार कर लिया कि श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के बिना सुख नहीं है। जहाँ श्री रामजी रहेंगे, वहीं सारा समाज रहेगा। श्री रामचन्द्रजी के बिना अयोध्या में हम लोगों का कुछ काम नहीं है॥3॥

चले साथ अस मंत्रु दृढाई। सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई॥

राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥4॥

ऐसा विचार दृढ़ करके देवताओं को भी दुर्लभ सुखों से पूर्ण घरों को छोड़कर सब श्री रामचन्द्रजी के साथ चले पड़े। जिनको श्री रामजी के चरणकमल प्यारे हैं, उन्हें क्या कभी विषय भोग वश में कर सकते हैं॥4॥

दोहा :

बालक बृद्ध बिहाइ गृहँ लगे लोग सब साथ।

तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥84॥

बच्चों और बूढ़ों को घरों में छोड़कर सब लोग साथ हो लिए। पहले दिन श्री रघुनाथजी ने तमसा नदी के तीर पर निवास किया॥84॥

चौपाई :

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भयउ बिसेषी॥

करुणामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहिं पीर पराई॥1॥

प्रजा को प्रेमवश देखकर श्री रघुनाथजी के दयालु हृदय में बड़ा दुःख हुआ। प्रभु श्री रघुनाथजी करुणामय हैं। पराई पीड़ा को वे तुरंत पा जाते हैं (अर्थात् दूसरे का दुःख देखकर वे तुरंत स्वयं दुःखित हो जाते हैं)॥1॥

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए॥

किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरे॥2॥

प्रेमयुक्त कोमल और सुंदर वचन कहकर श्री रामजी ने बहुत प्रकार से लोगों को समझाया और बहुतेरे धर्म संबंधी उपदेश दिए, परन्तु प्रेमवश लोग लौटाए लौटते नहीं॥2॥

सीलु सनेहु छाड़ि नहिं जाई। असमंजस बस भे रघुराई॥

लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमायाँ मति मोई॥3॥

शील और स्नेह छोड़ा नहीं जाता। श्री रघुनाथजी असमंजस के अधीन हो गए (दुविधा में पड़ गए)। शोक और परिश्रम (थकावट) के मारे लोग सो गए और कुछ देवताओं की माया से भी उनकी बुद्धि मोहित हो गई॥3॥

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥

खोज मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपायँ बनिहि नहिं बाता॥4॥

जब दो पहर बीत गई, तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेमपूर्वक मंत्री सुमंत्र से कहा- हे तात! रथ के खोज मारकर (अर्थात् पहियों के चिह्नों से दिशा का पता न चले इस प्रकार) रथ को हाँकिए। और किसी उपाय से बात नहीं बनेगी॥4॥

दोहा :

राम लखन सिय जान चढि संभु चरन सिरु नाइ।

सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥85॥

शंकरजी के चरणों में सिर नवाकर श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी रथ पर सवार हुए। मंत्री ने तुरंत ही रथ को इधर-उधर खोज छिपाकर चला दिया॥85॥

चौपाई :

जागे सकल लोग भएँ भोरु। गे रघुनाथ भयउ अति सोरु॥

रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥1॥

सबेरा होते ही सब लोग जागे, तो बड़ा शोर मचा कि रघुनाथजी चले गए। कहीं रथ का खोज नहीं पाते, सब 'हा राम! हा राम!' पुकारते हुए चारों ओर दौड़ रहे हैं॥1॥

मनहुँ बारिनिधि बूड जहाजू। भयउ बिकल बड बनिक समाजू॥

एकहि एक देहिं उपदेशू। तजे राम हम जानि कलेसू॥2॥

मानो समुद्र में जहाज डूब गया हो, जिससे व्यापारियों का समुदाय बहुत ही व्याकुल हो उठा हो। वे एक-दूसरे को उपदेश देते हैं कि श्री रामचन्द्रजी ने, हम लोगों को क्लेश होगा, यह जानकर छोड़ दिया है॥2॥

निंदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर बिहीना॥

जों पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मार्गे दीन्हा॥3॥

वे लोग अपनी निंदा करते हैं और मछलियों की सराहना करते हैं। (कहते हैं-) श्री रामचन्द्रजी के बिना हमारे जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्यारे का वियोग ही रचा, तो फिर उसने माँगने पर मृत्यु क्यों नहीं दी!॥3॥

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥

बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राणा॥4॥

इस प्रकार बहुत से प्रलाप करते हुए वे संताप से भरे हुए अयोध्याजी में आए। उन लोगों के विषम वियोग की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। (चौदह साल की) अवधि की आशा से ही वे प्राणों को रख रहे हैं॥4॥

दोहा :

राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।

मनहुँ कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥86॥

(सब) स्त्री-पुरुष श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और व्रत करने लगे और ऐसे दुःखी हो गए जैसे चकवा, चकवी और कमल सूर्य के बिना दीन हो जाते हैं॥86॥

चौपाई :

सीता सचिव सहित दोठ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥

उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेषी॥1॥

सीताजी और मंत्री सहित दोनों भाई शृंगवेरपुर जा पहुँचे। वहाँ गंगाजी को देखकर श्री रामजी रथ से उतर पड़े और बड़े हर्ष के साथ उन्होंने दण्डवत की॥1॥

लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहि सहित सुखु पायउ रामा॥

गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥2॥

लक्ष्मणजी, सुमंत्र और सीताजी ने भी प्रणाम किया। सबके साथ श्री रामचन्द्रजी ने सुख पाया। गंगाजी समस्त आनंद-मंगलों की मूल हैं। वे सब सुखों को करने वाली और सब पीड़ाओं को

हरने वाली हैं॥2॥

कहि कहि कोटिक कथा प्रसंगा। रामु बिलोकहिं गंग तरंगा॥

सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥3॥

अनेक कथा प्रसंग कहते हुए श्री रामजी गंगाजी की तरंगों को देख रहे हैं। उन्होंने मंत्री को, छोटे भाई लक्ष्मणजी को और प्रिया सीताजी को देवनदी गंगाजी की बड़ी महिमा सुनाई॥3॥

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥

सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रम यह लौकिक ब्यवहारू॥4॥

इसके बाद सबने स्नान किया, जिससे मार्ग का सारा श्रम (थकावट) दूर हो गया और पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिनके स्मरण मात्र से (बार-बार जन्म ने और मरने का) महान श्रम मिट जाता है, उनको 'श्रम' होना- यह केवल लौकिक व्यवहार (नरलीला) है॥4॥

दोहा :

शुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।

चरितकरत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥87॥

शुद्ध (प्रकृतिजन्य त्रिगुणों से रहित, मायातीत दिव्य मंगलविग्रह) सच्चिदानंद-कन्द स्वरूप सूर्य कुल के ध्वजा रूप भगवान श्री रामचन्द्रजी मनुष्यों के सदृश ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसार रूपी समुद्र के पार उतरने के लिए पुल के समान हैं॥87॥

चौपाई :

यह सुधि गुहँ निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥

लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥1॥

जब निषादराज गुह ने यह खबर पाई, तब आनंदित होकर उसने अपने प्रियजनों और भाई-बंधुओं को बुला लिया और भेंट देने के लिए फल, मूल (कन्द) लेकर और उन्हें भारों (बहंगियों) में भरकर मिलने के लिए चला। उसके हृदय में हर्ष का पार नहीं था॥1॥

करि दंडवत भेंट धरि आगें। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागें॥

सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥2॥

दण्डवत करके भेंट सामने रखकर वह अत्यन्त प्रेम से प्रभु को देखने लगा। श्री रघुनाथजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश होकर उसे अपने पास बैठाकर कुशल पूछी॥2॥

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें॥

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥3॥

निषादराज ने उत्तर दिया- हे नाथ! आपके चरणकमल के दर्शन से ही कुशल है (आपके

चरणारविन्दों के दर्शन कर) आज मैं भाग्यवान पुरुषों की गिनती में आ गया। हे देव! यह पृथ्वी, धन और घर सब आपका है। मैं तो परिवार सहित आपका नीच सेवक हूँ॥3॥

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सबु लोगु सिहाऊ॥

कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥4॥

अब कृपा करके पुर (श्रृंगवेरपुर) में पधारिए और इस दास की प्रतिष्ठा बढ़ाइए, जिससे सब लोग मेरे भाग्य की बड़ाई करें। श्री रामचन्द्रजी ने कहा- हे सुजान सखा! तुमने जो कुछ कहा सब सत्य है, परन्तु पिताजी ने मुझको और ही आज्ञा दी है॥4॥

दोहा :

बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।

ग्राम बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥88॥

(उनकी आज्ञानुसार) मुझे चौदह वर्ष तक मुनियों का व्रत और वेष धारण कर और मुनियों के योग्य आहार करते हुए वन में ही बसना है, गाँव के भीतर निवास करना उचित नहीं है। यह सुनकर गुह को बड़ा दुःख हुआ॥88॥

चौपाई :

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥1॥

श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर गाँव के स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ चर्चा करते हैं। (कोई कहती है-) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है॥1॥

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहि बिधि दीन्हा॥

तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥2॥

कोई एक कहते हैं- राजा ने अच्छा ही किया, इसी बहाने हमें भी ब्रह्मा ने नेत्रों का लाभ दिया। तब निषाद राज ने हृदय में अनुमान किया, तो अशोक के पेड़ को (उनके ठहरने के लिए) मनोहर समझा॥2॥

लै रघुनाथहिं ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥

पुरजन करि जोहारु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥3॥

उसने श्री रघुनाथजी को ले जाकर वह स्थान दिखाया। श्री रामचन्द्रजी ने (देखकर) कहा कि यह सब प्रकार से सुंदर है। पुरवासी लोग जोहार (वंदना) करके अपने-अपने घर लौटे और श्री रामचन्द्रजी संध्या करने पधारे॥3॥

गुहँ सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥

सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥4॥

गुह ने (इसी बीच) कुश और कोमल पत्तों की कोमल और सुंदर साथरी सजाकर बिछा दी और पवित्र, मीठे और कोमल देख-देखकर दोनों में भर-भरकर फल-मूल और पानी रख दिया (अथवा अपने हाथ से फल-मूल दोनों में भर-भरकर रख दिए)॥4॥

दोहा :

सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।

सयन कीन्ह रघुबंसमनि पाय पलोटत भाइ॥89॥

सीताजी, सुमंत्रजी और भाई लक्ष्मणजी सहित कन्द-मूल-फल खाकर रघुकुल मणि श्री रामचन्द्रजी लेट गए। भाई लक्ष्मणजी उनके पैर दबाने लगे॥89॥

चौपाई :

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी। कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी॥

कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन॥1॥

फिर प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सोते जानकर लक्ष्मणजी उठे और कोमल वाणी से मंत्री सुमंत्रजी को सोने के लिए कहकर वहाँ से कुछ दूर पर धनुष-बाण से सजकर, वीरासन से बैठकर जागने (पहरा देने) लगे॥1॥

गुहँ बोलाइ पाहरू प्रतीती। ठावँ ठावँ राखे अति प्रीती॥

आपु लखन पहिँ बैठेठ जाई। कटि भाथी सर चाप चढाई॥2॥

गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारों को बुलाकर अत्यन्त प्रेम से जगह-जगह नियुक्त कर दिया और आप कमर में तरकस बाँधकर तथा धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा॥2॥

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ प्रेम बस हृदयँ बिषादू॥

तनु पुलकित जलु लोचन बहई। बचन सप्रेम लखन सन कहई॥3॥

प्रभु को जमीन पर सोते देखकर प्रेम वश निषाद राज के हृदय में विषाद हो आया। उसका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहने लगा। वह प्रेम सहित लक्ष्मणजी से वचन कहने लगा-॥3॥

भूपति भवन सुभायँ सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा॥

मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे॥4॥

महाराज दशरथजी का महल तो स्वभाव से ही सुंदर है, इन्द्रभवन भी जिसकी समानता नहीं पा सकता। उसमें सुंदर मणियों के रचे चौबारे (छत के ऊपर बँगले) हैं, जिन्हें मानो रति के पति

कामदेव ने अपने ही हाथों सजाकर बनाया है॥4॥

दोहा :

सुचि सुबिचित्र सुभोगमय सुमन सुगंध सुबास।

पलंग मंजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास॥90॥

जो पवित्र, बड़े ही विलक्षण, सुंदर भोग पदार्थों से पूर्ण और फूलों की सुगंध से सुवासित हैं, जहाँ सुंदर पलंग और मणियों के दीपक हैं तथा सब प्रकार का पूरा आराम है,॥90॥

चौपाई :

बिबिध बसन उपधान तुराई। छीर फेन मृदु बिसद सुहाई॥

तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मदु हरहीं॥1॥

जहाँ (ओढ़ने-बिछाने के) अनेकों वस्त्र, तकिए और गद्दे हैं, जो दूध के फेन के समान कोमल, निर्मल (उज्ज्वल) और सुंदर हैं, वहाँ (उन चौबारों में) श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी रात को सोया करते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे॥1॥

ते सिय रामु साथरीं सोए। श्रमित बसन बिनु जाहिं न जोए॥

मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥2॥

वही श्री सीता और श्री रामजी आज घास-फूस की साथरी पर थके हुए बिना वस्त्र के ही सोए हैं। ऐसी दशा में वे देखे नहीं जाते। माता, पिता, कुटुम्बी, पुरवासी (प्रजा), मित्र, अच्छे शील-स्वभाव के दास और दासियाँ-॥2॥

जोगवहिं जिन्हहिं प्रान की नाई। महि सोवत तेइ राम गोसाई॥

पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥3॥

सब जिनकी अपने प्राणों की तरह सार-संभार करते थे, वही प्रभु श्री रामचन्द्रजी आज पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिनके पिता जनकजी हैं, जिनका प्रभाव जगत में प्रसिद्ध है, जिनके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथजी हैं,॥3॥

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥

सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करम प्रधान सत्य कह लोगू॥4॥

और पति श्री रामचन्द्रजी हैं, वही जानकीजी आज जमीन पर सो रही हैं। विधाता किसको प्रतिकूल नहीं होता! सीताजी और श्री रामचन्द्रजी क्या वन के योग्य हैं? लोग सच कहते हैं कि कर्म (भाग्य) ही प्रधान है॥4॥

दोहा :

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह।

जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥91॥

कैकयराज की लड़की नीच बुद्धि कैकेयी ने बड़ी ही कुटिलता की, जिसने रघुनंदन श्री रामजी और जानकीजी को सुख के समय दुःख दिया॥91॥

चौपाई :

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सब बिस्व दुखारी॥

भयउ बिषादु निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी॥1॥

वह सूर्यकुल रूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी हो गई। उस कुबुद्धि ने सम्पूर्ण विश्व को दुःखी कर दिया। श्री राम-सीता को जमीन पर सोते हुए देखकर निषाद को बड़ा दुःख हुआ॥1॥

बोले लखन मधुर मृदु बानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी॥

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥2॥

तब लक्ष्मणजी ज्ञान, वैराग्य और भक्ति के रस से सनी हुई मीठी और कोमल वाणी बोले- हे भाई! कोई किसी को सुख-दुःख का देने वाला नहीं है। सब अपने ही किए हुए कर्मों का फल भोगते हैं॥2॥

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥

जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करमु अरु कालू॥3॥

संयोग (मिलना), वियोग (बिछुड़ना), भले-बुरे भोग, शत्रु, मित्र और उदासीन- ये सभी भ्रम के फंदे हैं। जन्म-मृत्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, कर्म और काल- जहाँ तक जगत के जंजाल हैं,॥3॥

दरनि धामु धनु पुर परिवारु। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारु॥

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥4॥

धरती, घर, धन, नगर, परिवार, स्वर्ग और नरक आदि जहाँ तक व्यवहार हैं, जो देखने, सुनने और मन के अंदर विचारने में आते हैं, इन सबका मूल मोह (अज्ञान) ही है। परमार्थतः ये नहीं हैं॥4॥

दोहा :

सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।

जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥92॥

जैसे स्वप्न में राजा भिखारी हो जाए या कंगाल स्वर्ग का स्वामी इन्द्र हो जाए, तो जागने पर लाभ या हानि कुछ भी नहीं है, वैसे ही इस दृश्य-प्रपंच को हृदय से देखना चाहिए॥92॥

चौपाई :

अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥1॥

ऐसा विचारकर क्रोध नहीं करना चाहिए और न किसी को व्यर्थ दोष ही देना चाहिए। सब लोग मोह रूपी रात्रि में सोने वाले हैं और सोते हुए उन्हें अनेकों प्रकार के स्वप्न दिखाई देते हैं॥1॥

एहिं जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥

जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥2॥

इस जगत रूपी रात्रि में योगी लोग जागते हैं, जो परमार्थी हैं और प्रपंच (मायिक जगत) से छूटे हुए हैं। जगत में जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए, जब सम्पूर्ण भोग-विलासों से वैराग्य हो जाए॥2॥

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥3॥

विवेक होने पर मोह रूपी भ्रम भाग जाता है, तब (अज्ञान का नाश होने पर) श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होता है। हे सखा! मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों में प्रेम होना, यही सर्वश्रेष्ठ परमार्थ (पुरुषार्थ) है॥3॥

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥

सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥4॥

श्री रामजी परमार्थस्वरूप (परमवस्तु) परब्रह्म हैं। वे अविगत (जानने में न आने वाले) अलख (स्थूल दृष्टि से देखने में न आने वाले), अनादि (आदिरहित), अनुपम (उपमारहित) सब विकारों से रहति और भेद शून्य हैं, वेद जिनका नित्य 'नेति-नेति' कहकर निरूपण करते हैं॥4॥

दोहा :

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।

करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥93॥

वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गो और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीलाएँ करते हैं, जिनके सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं॥93॥

मासपारायण, पंद्रहवाँ विश्राम

चौपाई :

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥

कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा॥1॥

हे सखा! ऐसा समझ, मोह को त्यागकर श्री सीतारामजी के चरणों में प्रेम करो। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी के गुण कहते-कहते सबेरा हो गया! तब जगत का मंगल करने वाले और उसे सुख

देने वाले श्री रामजी जागे॥1॥

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए। देखि सुमंत्र नयन जल छाए॥

शौच के सब कार्य करके (नित्य) पवित्र और सुजान श्री रामचन्द्रजी ने स्नान किया। फिर बड़ का दूध मँगाया और छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित उस दूध से सिर पर जटाएँ बनाईं। यह देखकर सुमंत्रजी के नेत्रों में जल छा गया॥2॥

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोर बचन अति दीना॥

नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम केँ साथा॥3॥

उनका हृदय अत्यंत जलने लगा, मुँह मलिन (उदास) हो गया। वे हाथ जोड़कर अत्यंत दीन वचन बोले- हे नाथ! मुझे कौसलनाथ दशरथजी ने ऐसी आज्ञा दी थी कि तुम रथ लेकर श्री रामजी के साथ जाओ,॥3॥

बनु देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोठ भाई॥

लखनु रामु सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निबेरी॥4॥

वन दिखाकर, गंगा स्नान कराकर दोनों भाइयों को तुरंत लौटा लाना। सब संशय और संकोच को दूर करके लक्ष्मण, राम, सीता को फिरा लाना॥4॥

दोहा :

नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ।

करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ॥94॥

महाराज ने ऐसा कहा था, अब प्रभु जैसा कहें, मैं वही करूँ, मैं आपकी बलिहारी हूँ। इस प्रकार से विनती करके वे श्री रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े और बालक की तरह रो दिए॥94॥

चौपाई :

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जातें अवध अनाथ न होई॥

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम्ह सबु सोधा॥1॥

(और कहा -) हे तात ! कृपा करके वही कीजिए जिससे अयोध्या अनाथ न हो श्री रामजी ने मंत्री को उठाकर धैर्य बँधाते हुए समझाया कि हे तात ! आपने तो धर्म के सभी सिद्धांतों को छान डाला है॥1॥

सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥

रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना॥2॥

शिबि, दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ों (अनेकों) कष्ट सहे थे। बुद्धिमान राजा

रन्तिदेव और बलि बहुत से संकट सहकर भी धर्म को पकड़े रहे (उन्होंने धर्म का परित्याग नहीं किया)॥2॥

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना॥

मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजैं तिहूँ पुर अपजसु छावा॥3॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। मैंने उस धर्म को सहज ही पा लिया है। इस (सत्य रूपी धर्म) का त्याग करने से तीनों लोकों में अपयश छा जाएगा॥3॥

संभावित कहूँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिउँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥4॥

प्रतिष्ठित पुरुष के लिए अपयश की प्राप्ति करोड़ों मृत्यु के समान भीषण संताप देने वाली है। हे तात! मैं आप से अधिक क्या कहूँ! लौटकर उत्तर देने में भी पाप का भागी होता हूँ॥4॥

दोहा :

पितु पद गहि कहि कोटि नति बिनय करब कर जोरि।

चिंता कवनिहु बात कै तात करिअ जनि मोरि॥95॥

आप जाकर पिताजी के चरण पकड़कर करोड़ों नमस्कार के साथ ही हाथ जोड़कर बिनती करिएगा कि हे तात! आप मेरी किसी बात की चिन्ता न करें॥95॥

चौपाई :

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। बिनती करउँ तात कर जोरें॥

सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुख न पाव पितु सोच हमारें॥1॥

आप भी पिता के समान ही मेरे बड़े हितैषी हैं। हे तात! मैं हाथ जोड़कर आप से बिनती करता हूँ कि आपका भी सब प्रकार से वही कर्तव्य है, जिसमें पिताजी हम लोगों के सोच में दुःख न पावें॥1॥

सुनि रघुनाथ सचिव संबादू। भयउ सपरिजन बिकल निषादू॥

पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड़ अनुचित जानी॥2॥

श्री रघुनाथजी और सुमंत्र का यह संवाद सुनकर निषादराज कुटुम्बियों सहित व्याकुल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कड़वी बात कही। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने उसे बहुत ही अनुचित जानकर उनको मना किया॥2॥

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन सँदेसु कहिअ जनि जाई॥

कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥3॥

श्री रामचन्द्रजी ने सकुचाकर, अपनी सौगंध दिलाकर सुमंत्रजी से कहा कि आप जाकर लक्ष्मण का यह संदेश न कहिएगा। सुमंत्र ने फिर राजा का संदेश कहा कि सीता वन के क्लेश न सह सकेंगी॥3॥

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। होइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥

नतरु निपट अवलंब बिहीना। मैं न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥4॥

अतएव जिस तरह सीता अयोध्या को लौट आवें, तुमको और श्री रामचन्द्र को वही उपाय करना चाहिए। नहीं तो मैं बिल्कुल ही बिना सहारे का होकर वैसे ही नहीं जीऊँगा जैसे बिना जल के मछली नहीं जीती॥4॥

दोहा :

मइकें ससुरें सकल सुख जबहिं जहाँ मनु मान।

तहँ तब रहिहि सुखेन सिय जब लागि बिपति बिहान॥96॥

सीता के मायके (पिता के घर) और ससुराल में सब सुख हैं। जब तक यह विपत्ति दूर नहीं होती, तब तक वे जब जहाँ जी चाहें, वहीं सुख से रहेंगी॥96॥

चौपाई :

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥

पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥1॥

राजा ने जिस तरह (जिस दीनता और प्रेम से) विनती की है, वह दीनता और प्रेम कहा नहीं जा सकता। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी ने पिता का संदेश सुनकर सीताजी को करोड़ों (अनेकों) प्रकार से सीख दी॥1॥

सासु ससुर गुर प्रिय परिवारु। फिरहु त सब कर मिटै खभारु॥

सुनि पति बचन कहति बैदेही। सुनहु प्राणपति परम सनेही॥2॥

(उन्होंने कहा-) जो तुम घर लौट जाओ, तो सास, ससुर, गुरु, प्रियजन एवं कुटुम्बी सबकी चिन्ता मिट जाए। पति के वचन सुनकर जानकीजी कहती हैं- हे प्राणपति! हे परम स्नेही! सुनिए॥2॥

प्रभु करुणामय परम बिबेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी॥

प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चंद्रिका चंदु तजि जाई॥3॥

हे प्रभो! आप करुणामय और परम जानी हैं। (कृपा करके विचार तो कीजिए) शरीर को छोड़कर छाया अलग कैसे रोकी रह सकती है? सूर्य की प्रभा सूर्य को छोड़कर कहाँ जा सकती है? और चाँदनी चन्द्रमा को त्यागकर कहाँ जा सकती है?॥3॥

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥

तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देऊँ फिरि अनुचित भारी॥4॥

इस प्रकार पति को प्रेममयी विनती सुनाकर सीताजी मंत्री से सुहावनी वाणी कहने लगीं- आप मेरे पिताजी और ससुरजी के समान मेरा हित करने वाले हैं। आपको मैं बदले में उत्तर देती हूँ, यह बहुत ही अनुचित है॥4॥

दोहा :

आरति बस सनमुख भइऊँ बिलगु न मानब तात।

आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लागि नात॥97॥

किन्तु हे तात! मैं आर्त होकर ही आपके सम्मुख हुई हूँ, आप बुरा न मानिएगा। आर्यपुत्र (स्वामी) के चरणकमलों के बिना जगत में जहाँ तक नाते हैं, सभी मेरे लिए व्यर्थ हैं॥97॥

चौपाई :

पितु बैभव बिलास में डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा॥

सुखनिधान अस पितु गृह मोरें। पिय बिहीन मन भाव न भोरें॥1॥

मैंने पिताजी के ऐश्वर्य की छटा देखी है, जिनके चरण रखने की चौकी से सर्वशिरोमणि राजाओं के मुकुट मिलते हैं (अर्थात् बड़े-बड़े राजा जिनके चरणों में प्रणाम करते हैं) ऐसे पिता का घर भी, जो सब प्रकार के सुखों का भंडार है, पति के बिना मेरे मन को भूलकर भी नहीं भाता॥1॥

ससुर चक्कवड़ कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥

आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसनु देई॥2॥

मेरे ससुर कोसलराज चक्रवर्ती सम्राट हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है, इन्द्र भी आगे होकर जिनका स्वागत करता है और अपने आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देता है,॥2॥

ससुरु एतादस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू॥

बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥3॥

ऐसे (ऐश्वर्य और प्रभावशाली) ससुर, (उनकी राजधानी) अयोध्या का निवास, प्रिय कुटुम्बी और माता के समान सासुएँ- ये कोई भी श्री रघुनाथजी के चरण कमलों की रज के बिना मुझे स्वप्न में भी सुखदायक नहीं लगते॥3॥

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥

कोल किरात कुरंग बिहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संग्गा॥4॥

दुर्गम रास्ते, जंगली धरती, पहाड़, हाथी, सिंह, अथाह तालाब एवं नदियाँ, कोल, भील, हिरन और पक्षी- प्राणपति (श्री रघुनाथजी) के साथ रहते ये सभी मुझे सुख देने वाले होंगे॥4॥

दोहा :

सासु ससुर सन मोरि हूँति बिनय करबि परि पायँ।

मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ॥98॥

अतः सास और ससुर के पाँव पड़कर, मेरी ओर से विनती कीजिएगा कि वे मेरा कुछ भी सोच न करें, मैं वन में स्वभाव से ही सुखी हूँ॥98॥

चौपाई :

प्राननाथ प्रिय देवर साथ। बीर धुरीन धरें धनु भाथा॥

नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरें। मोहि लागि सोचु करिअ जनि भोरें॥1॥

वीरों में अग्रगण्य तथा धनुष और (बाणों से भरे) तरकश धारण किए मेरे प्राणनाथ और प्यारे देवर साथ हैं। इससे मुझे न रास्ते की थकावट है, न भ्रम है और न मेरे मन में कोई दुःख ही है। आप मेरे लिए भूलकर भी सोच न करें॥1॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥

नयन सूझ नहिं सुनइ न काना। कहि न सकइ कछु अति अकुलाना॥2॥

सुमंत्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे व्याकुल हो गए जैसे साँप मणि खो जाने पर। नेत्रों से कुछ सूझता नहीं, कानों से सुनाई नहीं देता। वे बहुत व्याकुल हो गए, कुछ कह नहीं सकते॥

2॥

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥

जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतर रघुनंदन दीन्हे॥3॥

श्री रामचन्द्रजी ने उनका बहुत प्रकार से समाधान किया। तो भी उनकी छाती ठंडी न हुई। साथ चलने के लिए मंत्री ने अनेकों यत्न किए (युक्तियाँ पेश कीं), पर रघुनंदन श्री रामजी (उन सब युक्तियों का) यथोचित उत्तर देते गए॥3॥

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥

राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिक जिमि मूर गवाँई॥4॥

श्री रामजी की आज्ञा मेटि नहीं जा सकती। कर्म की गति कठिन है, उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के चरणों में सिर नवाकर सुमंत्र इस तरह लौटे जैसे कोई व्यापारी अपना मूलधन (पूँजी) गँवाकर लौटे॥4॥

दोहा :

रथु हाँकेउ हय राम तन हेरि हेरि हिहिनाहिं।

देखि निषाद बिषाद बस धुनहिं सीस पछिताहिं॥99॥

सुमंत्र ने रथ को हाँका, घोड़े श्री रामचन्द्रजी की ओर देख-देखकर हिनहिनाते हैं। यह देखकर

निषाद लोग विषाद के वश होकर सिर धुन-धुनकर (पीट-पीटकर) पछताते हैं॥99॥

चौपाई :

जासु बियोग बिकल पसु ऐसैं। प्रजा मातु पितु जिइहहिं कैसैं॥

बरबस राम सुमंत्रु पठाए। सुरसरि तीर आपु तब आए॥1॥

जिनके वियोग में पशु इस प्रकार व्याकुल हैं, उनके वियोग में प्रजा, माता और पिता कैसे जीते रहेंगे? श्री रामचन्द्रजी ने जबर्दस्ती सुमंत्र को लौटाया। तब आप गंगाजी के तीर पर आए॥1॥

मागी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु में जाना॥

चरन कमल रज कहँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥2॥

श्री राम ने केवट से नाव माँगी, पर वह लाता नहीं। वह कहने लगा- मैंने तुम्हारा मर्म (भेद) जान लिया। तुम्हारे चरण कमलों की धूल के लिए सब लोग कहते हैं कि वह मनुष्य बना देने वाली कोई जड़ी है,॥2॥

छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥

तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥3॥

जिसके छूते ही पत्थर की शिला सुंदरी स्त्री हो गई (मेरी नाव तो काठ की है)। काठ पत्थर से कठोर तो होता नहीं। मेरी नाव भी मुनि की स्त्री हो जाएगी और इस प्रकार मेरी नाव उड़ जाएगी, मैं लुट जाऊँगा (अथवा रास्ता रुक जाएगा, जिससे आप पार न हो सकेंगे और मेरी रोजी मारी जाएगी) (मेरी कमाने-खाने की राह ही मारी जाएगी)॥3॥

एहिं प्रतिपालउँ सबु परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥

जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥4॥

मैं तो इसी नाव से सारे परिवार का पालन-पोषण करता हूँ। दूसरा कोई धंधा नहीं जानता। हे प्रभु! यदि तुम अवश्य ही पार जाना चाहते हो तो मुझे पहले अपने चरणकमल पखारने (धो लेने) के लिए कह दो॥4॥

छन्द :

पद कमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहीं।

मोहि राम राउरि आन दसरथसपथ सब साची कहैं॥

बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लागि न पाय पखारिहैं।

तब लागि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहैं॥

हे नाथ! मैं चरण कमल धोकर आप लोगों को नाव पर चढ़ा लूँगा, मैं आपसे कुछ उतराई नहीं चाहता। हे राम! मुझे आपकी दुहाई और दशरथजी की सौगंध है, मैं सब सच-सच कहता हूँ।

लक्ष्मण भले ही मुझे तीर मारें, पर जब तक मैं पैरों को पखार न लूँगा, तब तक हे तुलसीदास के नाथ! हे कृपालु! मैं पार नहीं उतारूँगा।

सोरठा :

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।

बिहसे करुनाएन चितइ जानकी लखन तन॥100॥

केवट के प्रेम में लपेटे हुए अटपटे वचन सुनकर करुणाधाम श्री रामचन्द्रजी जानकीजी और लक्ष्मणजी की ओर देखकर हँसे॥100॥

चौपाई :

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥

बेगि आनु जलपाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥1॥

कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी केवट से मुस्कुराकर बोले भाई! तू वही कर जिससे तेरी नाव न जाए। जल्दी पानी ला और पैर धो ले। देर हो रही है, पार उतार दे॥1॥

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥2॥

एक बार जिनका नाम स्मरण करते ही मनुष्य अपार भवसागर के पार उतर जाते हैं और जिन्होंने (वामनावतार में) जगत को तीन पग से भी छोटा कर दिया था (दो ही पग में त्रिलोकी को नाप लिया था), वही कृपालु श्री रामचन्द्रजी (गंगाजी से पार उतारने के लिए) केवट का निहोरा कर रहे हैं॥2॥

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोहँ मति करषी॥

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥3॥

प्रभु के इन वचनों को सुनकर गंगाजी की बुद्धि मोह से खिंच गई थी (कि ये साक्षात् भगवान होकर भी पार उतारने के लिए केवट का निहोरा कैसे कर रहे हैं), परन्तु (समीप आने पर अपनी उत्पत्ति के स्थान) पदनाखों को देखते ही (उन्हें पहचानकर) देवनादी गंगाजी हर्षित हो गई। (वे समझ गई कि भगवान नरलीला कर रहे हैं, इससे उनका मोह नष्ट हो गया और इन चरणों का स्पर्श प्राप्त करके मैं धन्य होऊँगी, यह विचारकर वे हर्षित हो गई।) केवट श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर कठौते में भरकर जल ले आया॥3॥

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥

बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोठ नाही॥4॥

अत्यन्त आनंद और प्रेम में उमंगकर वह भगवान के चरणकमल धोने लगा। सब देवता फूल

बरसाकर सिहाने लगे कि इसके समान पुण्य की राशि कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।

पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥101॥

चरणों को धोकर और सारे परिवार सहित स्वयं उस जल (चरणोदक) को पीकर पहले (उस महान पुण्य के द्वारा) अपने पितरों को भवसागर से पार कर फिर आनंदपूर्वक प्रभु श्री रामचन्द्रजी को गंगाजी के पार ले गया॥101॥

चौपाई :

उतरि ठाढ भए सुरसरि रेता। सीय रामगुह लखन समेता॥

केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥1॥

निषादराज और लक्ष्मणजी सहित श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी (नाव से) उतरकर गंगाजी की रेत (बालू) में खड़े हो गए। तब केवट ने उतरकर दण्डवत की। (उसको दण्डवत करते देखकर) प्रभु को संकोच हुआ कि इसको कुछ दिया नहीं॥1॥

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥

कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥2॥

पति के हृदय की जानने वाली सीताजी ने आनंद भरे मन से अपनी रत्न जड़ित अँगूठी (अँगुली से) उतारी। कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने केवट से कहा, नाव की उतराई लो। केवट ने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिए॥2॥

नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥3॥

(उसने कहा-) हे नाथ! आज मैंने क्या नहीं पाया! मेरे दोष, दुःख और दरिद्रता की आग आज बुझ गई है। मैंने बहुत समय तक मजदूरी की। विधाता ने आज बहुत अच्छी भरपूर मजदूरी दे दी॥

3॥

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥

फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु में सिर धरि लेबा॥4॥

हे नाथ! हे दीनदयाल! आपकी कृपा से अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। लौटती बार आप मुझे जो कुछ देंगे, वह प्रसाद में सिर चढ़ाकर लूँगा॥4॥

दोहा :

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।

बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥102॥

प्रभु श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी ने बहुत आग्रह (या यत्न) किया, पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुणा के धाम भगवान श्री रामचन्द्रजी ने निर्मल भक्ति का वरदान देकर उसे विदा किया॥102॥

चौपाई :

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नायठ माथा॥

सियँ सुरसरिहि कहेठ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी॥1॥

फिर रघुकुल के स्वामी श्री रामचन्द्रजी ने स्नान करके पार्थिव पूजा की और शिवजी को सिर नवाया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गंगाजी से कहा- हे माता! मेरा मनोरथ पूरा कीजिएगा॥1॥

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहिं पूजा तोरी॥

सुनि सिय बिनय प्रेम रस सानी। भइ तब बिमल बारि बर बानी॥2॥

जिससे मैं पति और देवर के साथ कुशलतापूर्वक लौट आकर तुम्हारी पूजा करूँ। सीताजी की प्रेम रस में सनी हुई विनती सुनकर तब गंगाजी के निर्मल जल में से श्रेष्ठ वाणी हुई-॥2॥

सुनु रघुबीर प्रिया बैदेही। तब प्रभाउ जग बिदित न केही॥

लोकप होहिं बिलोकत तोरें। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरें॥3॥

हे रघुवीर की प्रियतमा जानकी! सुनो, तुम्हारा प्रभाव जगत में किसे नहीं मालूम है? तुम्हारे (कृपा दृष्टि से) देखते ही लोग लोकपाल हो जाते हैं। सब सिद्धियाँ हाथ जोड़े तुम्हारी सेवा करती हैं॥3॥

तुम्ह जो हमहि बडि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बड़ाई॥

तदपि देबि मैं देबि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा॥4॥

तुमने जो मुझको बड़ी विनती सुनाई, यह तो मुझ पर कृपा की और मुझे बड़ाई दी है। तो भी हे देवी! मैं अपनी वाणी सफल होने के लिए तुम्हें आशीर्वाद दूँगी॥4॥

दोहा :

प्राणनाथ देवर सहित कुसल कोसला आइ।

पूजिहि सब मनकामना सुजसु रहिहि जग छाइ॥103॥

तुम अपने प्राणनाथ और देवर सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सारी मनःकामनाएँ पूरी होंगी और तुम्हारा सुंदर यश जगतभर में छा जाएगा॥103॥

चौपाई :

गंग बचन सुनि मंगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला॥

तब प्रभु गुहहि कहेठ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥1॥

मंगल के मूल गंगाजी के वचन सुनकर और देवनादी को अनुकूल देखकर सीताजी आनंदित हुईं। तब प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने निषादराज गुह से कहा कि भैया! अब तुम घर जाओ! यह सुनते ही उसका मुँह सूख गया और हृदय में दाह उत्पन्न हो गया॥1॥

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई॥2॥

गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला- हे रघुकुल शिरोमणि! मेरी विनती सुनिए। मैं नाथ (आप) के साथ रहकर, रास्ता दिखाकर, चार (कुछ) दिन चरणों की सेवा करके-॥2॥

जेहिं बन जाइ रहब रघुराई। परनकुटी मैं करबि सुहाई॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहउँ रघुबीर दोहाई॥3॥

हे रघुराज! जिस वन में आप जाकर रहेंगे, वहाँ मैं सुंदर पर्णकुटी (पत्तों की कुटिया) बना दूँगा। तब मुझे आप जैसी आज्ञा देंगे, मुझे रघुवीर (आप) की दुहाई है, मैं वैसा ही करूँगा॥3॥

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥
पुनि गुहँ ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥4॥

उसके स्वाभाविक प्रेम को देखकर श्री रामचन्द्रजी ने उसको साथ ले लिया, इससे गुह के हृदय में बड़ा आनंद हुआ। फिर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति के लोगों को बुला लिया और उनका संतोष कराके तब उनको विदा किया॥4॥

दोहा :

तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन गवनु कीन्ह रघुनाथ॥104॥

तब प्रभु श्री रघुनाथजी गणेशजी और शिवजी का स्मरण करके तथा गंगाजी को मस्तक नवाकर सखा निषादराज, छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित वन को चले॥104॥

चौपाई :

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखाँ सब कीन्ह सुपासू॥

प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥1॥

उस दिन पेड़ के नीचे निवास हुआ। लक्ष्मणजी और सखा गुह ने (विश्राम की) सब सुव्यवस्था कर दी। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने सबेरे प्रातःकाल की सब क्रियाएँ करके जाकर तीर्थों के राजा प्रयाग के दर्शन किए॥1॥

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥

चारि पदारथ भरा भँडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥2॥

उस राजा का सत्य मंत्री है, श्रद्धा प्यारी स्त्री है और श्री वेणीमाधवजी सरीखे हितकारी मित्र हैं। चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) से भंडार भरा है और वह पुण्यमय प्रांत ही उस राजा का सुंदर देश है॥2॥

छेत्रु अगम गढु गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥

सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रणधीरा॥3॥

प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम, मजबूत और सुंदर गढ़ (किला) है, जिसको स्वप्न में भी (पाप रूपी) शत्रु नहीं पा सके हैं। संपूर्ण तीर्थ ही उसके श्रेष्ठ वीर सैनिक हैं, जो पाप की सेना को कुचल डालने वाले और बड़े रणधीर हैं॥3॥

संगमु सिंहासनु सुठि सोहा। छत्रु अखयबटु मुनि मनु मोहा॥

चवँर जमुन अरु गंग तरंगा। देखि होहिं दुख दारिद भंगा॥4॥

((गंगा, यमुना और सरस्वती का) संगम ही उसका अत्यन्त सुशोभित सिंहासन है। अक्षयवट छत्र है, जो मुनियों के भी मन को मोहित कर लेता है। यमुनाजी और गंगाजी की तरंगें उसके (श्याम और श्वेत) चँवर हैं, जिनको देखकर ही दुःख और दरिद्रता नष्ट हो जाती है॥4॥

दोहा :

सेवहिं सुकृती साधु सुचि पावहिं सब मनकाम।

बंदी बेद पुरान गन कहहिं बिमल गुन ग्राम॥105॥

पुण्यात्मा, पवित्र साधु उसकी सेवा करते हैं और सब मनोरथ पाते हैं। वेद और पुराणों के समूह भाट हैं, जो उसके निर्मल गुणगणों का बखान करते हैं॥105॥

चौपाई :

को कहि सकइ प्रयाग प्रभाऊ। कलुष पुंज कुंजर मृगराऊ॥

अस तीरथपति देखि सुहावा। सुख सागर रघुबर सुखु पावा॥1॥

पापों के समूह रूपी हाथी के मारने के लिए सिंह रूप प्रयागराज का प्रभाव (महत्व-माहात्म्य) कौन कह सकता है। ऐसे सुहावने तीर्थराज का दर्शन कर सुख के समुद्र रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी ने भी सुख पाया॥1॥

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्री मुख तीरथराज बड़ाई॥

करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥2॥

उन्होंने अपने श्रीमुख से सीताजी, लक्ष्मणजी और सखा गुह को तीर्थराज की महिमा कहकर सुनाई। तदनन्तर प्रणाम करके, वन और बगीचों को देखते हुए और बड़े प्रेम से माहात्म्य कहते

हुए-॥2॥

एहि बिधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमंगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥3॥

इस प्रकार श्री राम ने आकर त्रिवेणी का दर्शन किया, जो स्मरण करने से ही सब सुंदर मंगलों को देने वाली है। फिर आनंदपूर्वक (त्रिवेणी में) स्नान करके शिवजी की सेवा (पूजा) की और विधिपूर्वक तीर्थ देवताओं का पूजन किया॥3॥

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए। करत दंडवत मुनि उर लाए॥

मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥4॥

(स्नान, पूजन आदि सब करके) तब प्रभु श्री रामजी भरद्वाजजी के पास आए। उन्हें दण्डवत करते हुए ही मुनि ने हृदय से लगा लिया। मुनि के मन का आनंद कुछ कहा नहीं जाता। मानो उन्हें ब्रह्मानन्द की राशि मिल गई हो॥4॥

दोहा :

दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।

लोचन गोचर सुकृत फल मनहुँ किए बिधि आनि॥106॥

मुनीश्वर भरद्वाजजी ने आशीर्वाद दिया। उनके हृदय में ऐसा जानकर अत्यन्त आनंद हुआ कि आज विधाता ने (श्री सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कराकर) मानो हमारे सम्पूर्ण पुण्यों के फल को लाकर आँखों के सामने कर दिया॥106॥

चौपाई :

कुशल प्रस्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥

कंद मूल फल अंकुर नीके। दिए आनि मुनि मनहुँ अमी के॥1॥

कुशल पूछकर मुनिराज ने उनको आसन दिए और प्रेम सहित पूजन करके उन्हें संतुष्ट कर दिया। फिर मानो अमृत के ही बने हों, ऐसे अच्छे-अच्छे कन्द, मूल, फल और अंकुर लाकर दिए॥

1॥

सीय लखन जन सहित सुहाए। अति रुचि राम मूल फल खाए॥

भए बिगतश्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे॥2॥

सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह सहित श्री रामचन्द्रजी ने उन सुंदर मूल-फलों को बड़ी रुचि के साथ खाया। थकावट दूर होने से श्री रामचन्द्रजी सुखी हो गए। तब भरद्वाजजी ने उनसे कोमल वचन कहे-॥2॥

आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥

सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥3॥

हे राम! आपका दर्शन करते ही आज मेरा तप, तीर्थ सेवन और त्याग सफल हो गया। आज मेरा जप, योग और वैराग्य सफल हो गया और आज मेरे सम्पूर्ण शुभ साधनों का समुदाय भी सफल हो गया॥3॥

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरेँ दरस आस सब पूजी॥

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥4॥

लाभ की सीमा और सुख की सीमा (प्रभु के दर्शन को छोड़कर) दूसरी कुछ भी नहीं है। आपके दर्शन से मेरी सब आशाएँ पूर्ण हो गईं। अब कृपा करके यह वरदान दीजिए कि आपके चरण कमलों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो॥4॥

दोहा :

करम बचन मन छाड़ि छलु जब लागि जनु न तुम्हार।

तब लागि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥107॥

जब तक कर्म, वचन और मन से छल छोड़कर मनुष्य आपका दास नहीं हो जाता, तब तक करोड़ों उपाय करने से भी, स्वप्न में भी वह सुख नहीं पाता॥107॥

चौपाई :

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनंद अघाने॥

तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥1॥

मुनि के वचन सुनकर, उनकी भाव-भक्ति के कारण आनंद से तृप्त हुए भगवान श्री रामचन्द्रजी (लीला की दृष्टि से) सकुचा गए। तब (अपने ऐश्वर्य को छिपाते हुए) श्री रामचन्द्रजी ने भरद्वाज मुनि का सुंदर सुयश करोड़ों (अनेकों) प्रकार से कहकर सबको सुनाया॥1॥

सो बड़ सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू॥

मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥2॥

(उन्होंने कहा-) हे मुनीश्वर! जिसको आप आदर दें, वही बड़ा है और वही सब गुण समूहों का घर है। इस प्रकार श्री रामजी और मुनि भरद्वाजजी दोनों परस्पर विनम्र हो रहे हैं और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव कर रहे हैं॥2॥

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥

भरद्वाज आश्रम सब आए। देखन दसरथ सुअन सुहाए॥3॥

यह (श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी के आने की) खबर पाकर प्रयाग निवासी ब्रह्मचारी, तपस्वी, मुनि, सिद्ध और उदासी सब श्री दशरथजी के सुंदर पुत्रों को देखने के लिए भरद्वाजजी के आश्रम पर आए॥3॥

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भए लहि लोयन लाहू॥

देहिं असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुंदरताई॥4॥

श्री रामचन्द्रजी ने सब किसी को प्रणाम किया। नेत्रों का लाभ पाकर सब आनंदित हो गए और परम सुख पाकर आशीर्वाद देने लगे। श्री रामजी के सौंदर्य की सराहना करते हुए वे लौटे॥4॥

दोहा :

राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।

चले सहितसिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥108॥

श्री रामजी ने रात को वहीं विश्राम किया और प्रातःकाल प्रयागराज का स्नान करके और प्रसन्नता के साथ मुनि को सिर नवाकर श्री सीताजी, लक्ष्मणजी और सेवक गुह के साथ वे चले॥108॥

चौपाई :

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं॥

मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहूँ अहहीं॥1॥

(चलते समय) बड़े प्रेम से श्री रामजी ने मुनि से कहा- हे नाथ! बताइए हम किस मार्ग से जाएँ।

मुनि मन में हँसकर श्री रामजी से कहते हैं कि आपके लिए सभी मार्ग सुगम हैं॥1॥

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाए। सुनि मन मुदित पचासक आए॥

सबन्हि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा॥2॥

फिर उनके साथ के लिए मुनि ने शिष्यों को बुलाया। (साथ जाने की बात) सुनते ही चित्त में हर्षित हो कोई पचास शिष्य आ गए। सभी का श्री रामजी पर अपार प्रेम है। सभी कहते हैं कि मार्ग हमारा देखा हुआ है॥2॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्है। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्है॥

करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदयँ चले रघुराई॥3॥

तब मुनि ने (चुनकर) चार ब्रह्मचारियों को साथ कर दिया, जिन्होंने बहुत जन्मों तक सब सुकृत (पुण्य) किए थे। श्री रघुनाथजी प्रणाम कर और ऋषि की आज्ञा पाकर हृदय में बड़े ही आनंदित होकर चले॥3॥

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई॥

होहिं सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई॥4॥

जब वे किसी गाँव के पास होकर निकलते हैं, तब स्त्री-पुरुष दौड़कर उनके रूप को देखने लगते हैं। जन्म का फल पाकर वे (सदा के अनाथ) सनाथ हो जाते हैं और मन को नाथ के साथ

भेजकर (शरीर से साथ न रहने के कारण) दुःखी होकर लौट आते हैं॥4॥

दोहा :

बिदा किए बटु बिनय करि फिरे पाइ मन काम।

उतरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम॥109॥

तदनन्तर श्री रामजी ने विनती करके चारों ब्रह्मचारियों को विदा किया, वे मनचाही वस्तु (अनन्य भक्ति) पाकर लौटे। यमुनाजी के पार उतरकर सबने यमुनाजी के जल में स्नान किया, जो श्री रामचन्द्रजी के शरीर के समान ही श्याम रंग का था॥109॥

चौपाई :

सुनत तीरबासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥

लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई॥1॥

यमुनाजी के किनारे पर रहने वाले स्त्री-पुरुष (यह सुनकर कि निषाद के साथ दो परम सुंदर सुकुमार नवयुवक और एक परम सुंदरी स्त्री आ रही है) सब अपना-अपना काम भूलकर दौड़े और लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी का सौंदर्य देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करने लगे॥

1॥

अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥

जे तिन्ह महुँ बयबिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने॥2॥

उनके मन में (परिचय जानने की) बहुत सी लालसाएँ भरी हैं। पर वे नाम-गाँव पूछते सकुचाते हैं। उन लोगों में जो वयोवृद्ध और चतुर थे, उन्होंने युक्ति से श्री रामचन्द्रजी को पहचान लिया॥

2॥

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥

सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी रायँ कीन्ह भल नाहीं॥3॥

उन्होंने सब कथा सब लोगों को सुनाई कि पिता की आज्ञा पाकर ये वन को चले हैं। यह सुनकर सब लोग दुःखित हो पछता रहे हैं कि रानी और राजा ने अच्छा नहीं किया॥3॥

तेहि अवसर एक तापसु आवा। तेजपुंज लघुबयस सुहावा॥

कवि अलखित गति बेषु बिरागी। मन क्रम बचन राम अनुरागी॥4॥

उसी अवसर पर वहाँ एक तपस्वी आया, जो तेज का पुंज, छोटी अवस्था का और सुंदर था। उसकी गति कवि नहीं जानते (अथवा वह कवि था जो अपना परिचय नहीं देना चाहता)। वह वैरागी के वेष में था और मन, वचन तथा कर्म से श्री रामचन्द्रजी का प्रेमी था॥4॥

दोहा :

सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेउ पहिचानि।

परेउ दंड जिमि धरनितल दसा न जाइ बखानि॥110॥

अपने इष्टदेव को पहचानकर उसके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गया। वह दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा, उसकी (प्रेम विह्वल) दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता॥

110॥

चौपाई :

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रंक जनु पारसु पावा॥

मनहुँ प्रेमु परमारथु दोऊ। मिलत धरें तन कह सबु कोऊ॥1॥

श्री रामजी ने प्रेमपूर्वक पुलकित होकर उसको हृदय से लगा लिया। (उसे इतना आनंद हुआ) मानो कोई महादरिद्री मनुष्य पारस पा गया हो। सब कोई (देखने वाले) कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ (परम तत्व) दोनों शरीर धारण करके मिल रहे हैं॥1॥

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमगि अनुरागा॥

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥2॥

फिर वह लक्ष्मणजी के चरणों लगा। उन्होंने प्रेम से उमंगकर उसको उठा लिया। फिर उसने सीताजी की चरण धूलि को अपने सिर पर धारण किया। माता सीताजी ने भी उसको अपना बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया॥2॥

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मिलेउ मुदित लखि राम सनेही॥

पिअत नयन पुट रूपु पियुषा। मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा॥3॥

फिर निषादराज ने उसको दण्डवत की। श्री रामचन्द्रजी का प्रेमी जानकर वह उस (निषाद) से आनंदित होकर मिला। वह तपस्वी अपने नेत्र रूपी दोनों से श्री रामजी की सौंदर्य सुधा का पान करने लगा और ऐसा आनंदित हुआ जैसे कोई भूखा आदमी सुंदर भोजन पाकर आनंदित होता है॥3॥

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठए बन बालक ऐसे॥

राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी॥4॥

(इधर गाँव की स्त्रियाँ कह रही हैं) हे सखी! कहो तो, वे माता-पिता कैसे हैं, जिन्होंने ऐसे (सुंदर सुकुमार) बालकों को वन में भेज दिया है। श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी के रूप को देखकर सब स्त्री-पुरुष स्नेह से व्याकुल हो जाते हैं॥4॥

दोहा :

तब रघुबीर अनेक बिधि सखहि सिखावनु दीन्ह॥

राम रजायसु सीस धरि भवन गवनु तेई कीन्ह॥111॥

तब श्री रामचन्द्रजी ने सखा गुह को अनेकों तरह से (घर लौट जाने के लिए) समझाया। श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसने अपने घर को गमन किया॥111॥

चौपाई :

पुनि सियँ राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥

चले ससीय मुदित दोठ भाई। रबितनुजा कइ करत बड़ाई॥1॥

फिर सीताजी, श्री रामजी और लक्ष्मणजी ने हाथ जोड़कर यमुनाजी को पुनः प्रणाम किया और सूर्यकन्या यमुनाजी की बड़ाई करते हुए सीताजी सहित दोनों भाई प्रसन्नतापूर्वक आगे चले॥1॥

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहिं सप्रेम देखि दोठ भाता॥

राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें॥2॥

रास्ते में जाते हुए उन्हें अनेकों यात्री मिलते हैं। वे दोनों भाइयों को देखकर उनसे प्रेमपूर्वक कहते हैं कि तुम्हारे सब अंगों में राज चिह्न देखकर हमारे हृदय में बड़ा सोच होता है॥2॥

मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारें भाएँ॥

अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महुँ साथ नारि सुकुमारी॥3॥

(ऐसे राजचिह्नों के होते हुए भी) तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इससे हमारी समझ में आता है कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है। भारी जंगल और बड़े-बड़े पहाड़ों का दुर्गम रास्ता है।

तिस पर तुम्हारे साथ सुकुमारी स्त्री है॥3॥

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम सँग चलहिं जो आयसु होई॥

जाब जहाँ लगी तहँ पहुँचाई। फिरब बहोरि तुम्हहि सिरु नाई॥4॥

हाथी और सिंहों से भरा यह भयानक वन देखा तक नहीं जाता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप जहाँ तक जाएँगे, वहाँ तक पहुँचाकर, फिर आपको प्रणाम करके हम लौट आवेंगे॥4॥

दोहा :

एहि बिधि पूँछहिं प्रेम बस पुलक गात जलु नैन।

कृपासिंधु फेरहिं तिन्हहि कहि बिनीत मृदु बैन॥112॥

इस प्रकार वे यात्री प्रेमवश पुलकित शरीर हो और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भरकर पूछते हैं, किन्तु कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी कोमल विनययुक्त वचन कहकर उन्हें लौटा देते हैं॥112॥

चौपाई :

जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥

केहि सुकृती केहि घरीं बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥1॥

जो गाँव और पुरवे रास्ते में बसे हैं, नागों और देवताओं के नगर उनको देखकर प्रशंसा पूर्वक ईर्ष्या करते और ललचाते हुए कहते हैं कि किस पुण्यवान् ने किस शुभ घड़ी में इनको बसाया था, जो आज ये इतने धन्य और पुण्यमय तथा परम सुंदर हो रहे हैं॥1॥

जहाँ जहाँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥

पुन्यपुंज मग निकट निवासी। तिन्हहि सराहहिं सुरपुरबासी॥2॥

जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी के चरण चले जाते हैं, उनके समान इन्द्र की पुरी अमरावती भी नहीं है। रास्ते के समीप बसने वाले भी बड़े पुण्यात्मा हैं- स्वर्ग में रहने वाले देवता भी उनकी सराहना करते हैं-॥2॥

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनश्यामहि॥

जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं॥3॥

जो नेत्र भरकर सीताजी और लक्ष्मणजी सहित घनश्याम श्री रामजी के दर्शन करते हैं, जिन तालाबों और नदियों में श्री रामजी स्नान कर लेते हैं, देवसरोवर और देवनदियाँ भी उनकी बड़ाई करती हैं॥3॥

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई॥

परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा॥4॥

जिस वृक्ष के नीचे प्रभु जा बैठते हैं, कल्पवृक्ष भी उसकी बड़ाई करते हैं। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की रज का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बड़ा सौभाग्य मानती है॥4॥

दोहा :

छाँह करहिं घन बिबुधगन बरषहिं सुमन सिहाहिं।

देखत गिरि बन बिहग मृग रामु चले मग जाहिं॥113॥

रास्ते में बादल छाया करते हैं और देवता फूल बरसाते और सिहाते हैं। पर्वत, वन और पशु-पक्षियों को देखते हुए श्री रामजी रास्ते में चले जा रहे हैं॥113॥

चौपाई :

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥

सुनि सब बाल बृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृह काजु बिसारी॥1॥

सीताजी और लक्ष्मणजी सहित श्री रघुनाथजी जब किसी गाँव के पास जा निकलते हैं, तब उनका आना सुनते ही बालक-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपने घर और काम-काज को भूलकर तुरंत उन्हें देखने के लिए चल देते हैं॥1॥

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥

सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भए मगन देखि दोउ बीरा॥2॥

श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर, नेत्रों का (परम) फल पाकर वे सुखी होते हैं। दोनों भाइयों को देखकर सब प्रेमानन्द में मग्न हो गए। उनके नेत्रों में जल भर आया और शरीर पुलकित हो गए॥2॥

बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी। लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥

एकन्ह एक बोलि सिख देहीं। लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥3॥

उनकी दशा वर्णन नहीं की जाती। मानो दरिद्रों ने चिन्तामणि की ढेरी पा ली हो। वे एक-एक को पुकारकर सीख देते हैं कि इसी क्षण नेत्रों का लाभ ले लो॥3॥

रामहि देखि एक अनुरागे। चितवत चले जाहिं सँग लागे॥

एक नयन मग छबि उर आनी। होहिं सिथिल तन मन बर बानी॥4॥

कोई श्री रामचन्द्रजी को देखकर ऐसे अनुराग में भर गए हैं कि वे उन्हें देखते हुए उनके साथ लगे चले जा रहे हैं। कोई नेत्र मार्ग से उनकी छबि को हृदय में लाकर शरीर, मन और श्रेष्ठ वाणी से शिथिल हो जाते हैं (अर्थात् उनके शरीर, मन और वाणी का व्यवहार बंद हो जाता है)॥

4॥

दोहा :

एक देखि बट छाँह भलि डसि मृदुल तृन पात।

कहहिं गवाँइअ छिनुकु श्रमु गवनब अबहिंकि प्रात॥114॥

कोई बड़ की सुंदर छाया देखकर, वहाँ नरम घास और पत्ते बिछाकर कहते हैं कि क्षण भर यहाँ बैठकर थकावट मिटा लीजिए। फिर चाहे अभी चले जाइएगा, चाहे सबेरे॥114॥

चौपाई :

एक कलस भरि आनहिं पानी। अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी॥

सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी। राम कृपाल सुशील बिसेषी॥1॥

कोई घड़ा भरकर पानी ले आते हैं और कोमल वाणी से कहते हैं- नाथ! आचमन तो कर लीजिए। उनके प्यारे वचन सुनकर और उनका अत्यन्त प्रेम देखकर दयालु और परम सुशील श्री रामचन्द्रजी ने-॥1॥

जानी श्रमित सीय मन माहीं। घरिक बिलंबु कीन्ह बट छाहीं॥

मुदित नारि नर देखहिं सोभा। रूप अनूप नयन मनु लोभा॥2॥

मन में सीताजी को थकी हुई जानकर घड़ी भर बड़ की छाया में विश्राम किया। स्त्री-पुरुष आनंदित होकर शोभा देखते हैं। अनुपम रूप ने उनके नेत्र और मनो को लुभा लिया है॥2॥

एकटक सब सोहहिं चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चंद चकोरा॥

तरुन तमाल बरन तनु सोहा। देखत कोटि मदन मनु मोहा॥3॥

सब लोग टकटकी लगाए श्री रामचन्द्रजी के मुख चन्द्र को चकोर की तरह (तन्मय होकर) देखते हुए चारों ओर सुशोभित हो रहे हैं। श्री रामजी का नवीन तमाल वृक्ष के रंग का (श्याम) शरीर अत्यन्त शोभा दे रहा है, जिसे देखते ही करोड़ों कामदेवों के मन मोहित हो जाते हैं॥3॥

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जी के॥

मुनि पट कटिन्ह कसैं तूनीरा। सोहहिं कर कमलनि धनु तीरा॥4॥

बिजली के से रंग के लक्ष्मणजी बहुत ही भले मालूम होते हैं। वे नख से शिखा तक सुंदर हैं और मन को बहुत भाते हैं। दोनों मुनियों के (वल्कल आदि) वस्त्र पहने हैं और कमर में तरकस कसे हुए हैं। कमल के समान हाथों में धनुष-बाण शोभित हो रहे हैं॥4॥

दोहा :

जटा मुकुट सीसनि सुभग उर भुज नयन बिसाल।

सरद परब बिधु बदन बर लसत स्वेद कन जाल॥115॥

उनके सिरों पर सुंदर जटाओं के मुकुट हैं, वक्षः स्थल, भुजा और नेत्र विशाल हैं और शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुंदर मुखों पर पसीने की बूंदों का समूह शोभित हो रहा है॥115॥

चौपाई :

बरनि न जाइ मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥

राम लखन सिय सुंदरताई। सब चितवहिं चित मन मति लाई॥1॥

उस मनोहर जोड़ी का वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि शोभा बहुत अधिक है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी की सुंदरता को सब लोग मन, चित और बुद्धि तीनों को लगाकर देख रहे हैं॥1॥

थके नारि नर प्रेम पिआसे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से॥

सीय समीप ग्रामतिय जाहीं। पूँछत अति सनेहँ सकुचाहीं॥2॥

प्रेम के प्यासे (वे गाँवों के) स्त्री-पुरुष (इनके सौंदर्य-माधुर्य की छटा देखकर) ऐसे थकित रह गए जैसे दीपक को देखकर हिरनी और हिरन (निस्तब्ध रह जाते हैं)! गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी के पास जाती हैं, परन्तु अत्यन्त स्नेह के कारण पूँछते सकुचाती हैं॥2॥

बार बार सब लागहिं पाएँ। कहहिं बचन मृदु सरल सुभाएँ॥

राजकुमारि बिनय हम करहीं। तिय सुभायँ कछु पूँछत डरहीं॥3॥

बार-बार सब उनके पाँव लगतीं और सहज ही सीधे-सादे कोमल वचन कहती हैं- हे राजकुमारी!

हम विनती करती (कुछ निवेदन करना चाहती) हैं, परन्तु स्त्री स्वभाव के कारण कुछ पूछते हुए डरती हैं॥3॥

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानब जानि गवारी॥

राजकुअँर दोठ सहज सलोनै। इन्ह तँ लही दुति मरकत सोने॥4॥

हे स्वामिनी! हमारी ढिठाई क्षमा कीजिएगा और हमको गवारी जानकर बुरा न मानिएगा। ये दोनों राजकुमार स्वभाव से ही लावण्यमय (परम सुंदर) हैं। मरकतमणि (पन्ने) और सुवर्ण ने कांति इन्हीं से पाई है (अर्थात् मरकतमणि में और स्वर्ण में जो हरित और स्वर्ण वर्ण की आभा है, वह इनकी हरिताभ नील और स्वर्ण कान्ति के एक कण के बराबर भी नहीं है)॥4॥

दोहा :

स्यामल गौर किसोर बर सुंदर सुषमा ऐन।

सरद सर्बरीनाथ मुखु सरद सरोरुह नैन॥116॥

श्याम और गौर वर्ण हैं, सुंदर किशोर अवस्था है, दोनों ही परम सुंदर और शोभा के धाम हैं। शरद पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान इनके मुख और शरद ऋतु के कमल के समान इनके नेत्र हैं॥116॥

मासपारायण, सोलहवाँ विश्राम

नवाह्नपारायण, चौथा विश्राम

चौपाई :

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी॥1॥

हे सुमुखि! कहो तो अपनी सुंदरता से करोड़ों कामदेवों को लजाने वाले ये तुम्हारे कौन हैं? उनकी ऐसी प्रेममयी सुंदर वाणी सुनकर सीताजी सकुचा गई और मन ही मन मुस्कुराई॥1॥

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ संकोच सकुचति बरबरनी॥

सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर बचन पिकबयनी॥2॥

उत्तम (गौर) वर्णवाली सीताजी उनको देखकर (संकोचवश) पृथ्वी की ओर देखती हैं। वे दोनों ओर के संकोच से सकुचा रही हैं (अर्थात् न बताने में ग्राम की स्त्रियों को दुःख होने का संकोच है और बताने में लज्जा रूप संकोच)। हिरन के बच्चे के सदृश नेत्र वाली और कोकिल की सी वाणी वाली सीताजी सकुचाकर प्रेम सहित मधुर वचन बोलीं-॥2॥

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥3॥

ये जो सहज स्वभाव, सुंदर और गोरे शरीर के हैं, उनका नाम लक्ष्मण है, ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर सीताजी ने (लज्जावश) अपने चन्द्रमुख को आँचल से ढँककर और प्रियतम (श्री रामजी) की ओर निहारकर भौंहें टेढ़ी करके,॥3॥

खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥

भईं मुदित सब ग्रामबधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥4॥

खंजन पक्षी के से सुंदर नेत्रों को तिरछा करके सीताजी ने इशारे से उन्हें कहा कि ये (श्री रामचन्द्रजी) मेरे पति हैं। यह जानकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनंदित हुईं, मानो कंगालों ने धन की राशियाँ लूट ली हों॥4॥

दोहा :

अति सप्रेम सिय पाँय परि बहुबिधि देहिं असीस।

सदा सोहागिनि होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस॥117॥

वे अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पैरों पड़कर बहुत प्रकार से आशीष देती हैं (शुभ कामना करती हैं), कि जब तक शेषजी के सिर पर पृथ्वी रहे, तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो,॥117॥

चौपाई :

पारबती सम पतिप्रिय होहू। देबि न हम पर छाडब छोहू॥

पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी॥1॥

और पार्वतीजी के समान अपने पति की प्यारी होओ। हे देवी! हम पर कृपा न छोड़ना (बनाए रखना)। हम बार-बार हाथ जोड़कर विनती करती हैं, जिसमें आप फिर इसी रास्ते लौटें,॥1॥

दरसनु देब जानि निज दासी। लखीं सीयँ सब प्रेम पिआसी॥

मधुर बचन कहि कहि परितोषीं। जनु कुमुदिनीं कौमुदीं पोषीं॥2॥

और हमें अपनी दासी जानकर दर्शन दें। सीताजी ने उन सबको प्रेम की प्यासी देखा और मधुर वचन कह-कहकर उनका भलीभाँति संतोष किया। मानो चाँदनी ने कुमुदिनियों को खिलाकर पुष्ट कर दिया हो॥2॥

तबहिं लखन रघुबर रुख जानी। पूँछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥

सुनत नारि नर भए दुखारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥3॥

उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख जानकर लक्ष्मणजी ने कोमल वाणी से लोगों से रास्ता पूछा। यह सुनते ही स्त्री-पुरुष दुःखी हो गए। उनके शरीर पुलकित हो गए और नेत्रों में (वियोग

की सम्भावना से प्रेम का) जल भर आया॥3॥

मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥

समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥4॥

उनका आनंद मिट गया और मन ऐसे उदास हो गए मानो विधाता दी हुई सम्पत्ति छीने लेता हो। कर्म की गति समझकर उन्होंने धैर्य धारण किया और अच्छी तरह निर्णय करके सुगम मार्ग बतला दिया॥4॥

दोहा :

लखन जानकी सहित तब गवनु कीन्ह रघुनाथ।

फरे सब प्रिय बचन कहि लिए लाइ मन साथ॥118॥

तब लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित श्री रघुनाथजी ने गमन किया और सब लोगों को प्रिय वचन कहकर लौटाया, किन्तु उनके मनों को अपने साथ ही लगा लिया॥118॥

चौपाई :

फिरत नारि नर अति पछिताहीं। दैअहि दोषु देहिं मन माहीं॥

सहित बिषाद परसपर कहहीं। बिधि करतब उलटे सब अहहीं॥1॥

लौटते हुए वे स्त्री-पुरुष बहुत ही पछताते हैं और मन ही मन दैव को दोष देते हैं। परस्पर (बड़े ही) विषाद के साथ कहते हैं कि विधाता के सभी काम उलटे हैं॥1॥

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहिं ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥

रूख कल्पतरु सागरु खारा। तेहिं पठए बन राजकुमारा॥2॥

वह विधाता बिल्कुल निरंकुश (स्वतंत्र), निर्दय और निडर है, जिसने चन्द्रमा को रोगी (घटने-बढ़ने वाला) और कलंकी बनाया, कल्पवृक्ष को पेड़ और समुद्र को खारा बनाया। उसी ने इन राजकुमारों को वन में भेजा है॥2॥

जों पै इन्हहिं दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू॥

ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना॥3॥

जब विधाता ने इनको वनवास दिया है, तब उसने भोग-विलास व्यर्थ ही बनाए। जब ये बिना जूते के (नंगे ही पैरों) रास्ते में चल रहे हैं, तब विधाता ने अनेकों वाहन (सवारियाँ) व्यर्थ ही रचे॥

3॥

ए महि परहिं डसि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता॥

तरुबर बास इन्हहि बिधि दीन्हा। धवल धाम रचि रचि श्रमु कीन्हा॥4॥

जब ये कुश और पते बिछाकर जमीन पर ही पड़े रहते हैं, तब विधाता सुंदर सेज (पलंग और

बिछौने) किसलिए बनाता है? विधाता ने जब इनको बड़े-बड़े पेड़ों (के नीचे) का निवास दिया, तब उज्ज्वल महलों को बना-बनाकर उसने व्यर्थ ही परिश्रम किया॥4॥

दोहा :

जों ए मुनि पट धर जटिल सुंदर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन बादि किए करतार॥119॥

जो ये सुंदर और अत्यन्त सुकुमार होकर मुनियों के (वल्कल) वस्त्र पहनते और जटा धारण करते हैं, तो फिर करतार (विधाता) ने भाँति-भाँति के गहने और कपड़े वृथा ही बनाए॥119॥

चौपाई :

जों ए कंदमूल फल खाहीं। बादि सुधादि असन जग माहीं॥

एक कहहिं ए सहज सुहाए। आपु प्रगट भए बिधि न बनाए॥1॥

जो ये कन्द, मूल, फल खाते हैं, तो जगत में अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही हैं। कोई एक कहते हैं- ये स्वभाव से ही सुंदर हैं (इनका सौंदर्य-माधुर्य नित्य और स्वाभाविक है)। ये अपने-आप प्रकट हुए हैं, ब्रह्मा के बनाए नहीं हैं॥1॥

जहँ लगिबेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥

देखहु खोजि भुअन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥2॥

हमारे कानों, नेत्रों और मन के द्वारा अनुभव में आने वाली विधाता की करनी को जहाँ तक वेदों ने वर्णन करके कहा है, वहाँ तक चौदहों लोकों में ढूँढ देखो, ऐसे पुरुष और ऐसी स्त्रियाँ कहाँ हैं? (कहीं भी नहीं हैं, इसी से सिद्ध है कि ये विधाता के चौदहों लोकों से अलग हैं और अपनी महिमा से ही आप निर्मित हुए हैं)॥2॥

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोग बनावै लागा॥

कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहिं इरिषा बन आनि दुराए॥3॥

इन्हें देखकर विधाता का मन अनुरक्त (मुग्ध) हो गया, तब वह भी इन्हीं की उपमा के योग्य दूसरे स्त्री-पुरुष बनाने लगा। उसने बहुत परिश्रम किया, परन्तु कोई उसकी अटकल में ही नहीं आए (पूरे नहीं उतरे)। इसी ईर्ष्या के मारे उसने इनको जंगल में लाकर छिपा दिया है॥3॥

एक कहहिं हम बहुत न जानहिं। आपुहि परम धन्य करि मानहिं॥

ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥4॥

कोई एक कहते हैं- हम बहुत नहीं जानते। हाँ, अपने को परम धन्य अवश्य मानते हैं (जो इनके दर्शन कर रहे हैं) और हमारी समझ में वे भी बड़े पुण्यवान हैं, जिन्होंने इनको देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे॥4॥

दोहा :

एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय लेहिं नयन भरि नीर।
किमि चलिहहिं मारग अगम सुठि सुकुमार सरीर॥120॥

इस प्रकार प्रिय वचन कह-कहकर सब नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर लेते हैं और कहते हैं कि ये अत्यन्त सुकुमार शरीर वाले दुर्गम (कठिन) मार्ग में कैसे चलेंगे॥120॥

चौपाई :

नारि सनेह बिकल बस होहीं। चकई साँझ समय जनु सोहीं॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदयँ कहहिं बर बानी॥1॥

स्त्रियाँ स्नेहवश विकल हो जाती हैं। मानो संध्या के समय चकवी (भावी वियोग की पीड़ा से) सोह रही हो। (दुःखी हो रही हो)। इनके चरणकमलों को कोमल तथा मार्ग को कठोर जानकर वे व्यथित हृदय से उत्तम वाणी कहती हैं-॥1॥

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे॥

जौं जगदीस इन्हहि बनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा॥2॥

इनके कोमल और लाल-लाल चरणों (तलवों) को छूते ही पृथ्वी वैसे ही सकुचा जाती है, जैसे हमारे हृदय सकुचा रहे हैं। जगदीश्वर ने यदि इन्हें वनवास ही दिया, तो सारे रास्ते को पुष्पमय क्यों नहीं बना दिया?॥2॥

जौं मागा पाइअ बिधि पाहीं। ए रखिअहिं सखि आँखिन्ह माहीं॥

जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए॥3॥

यदि ब्रह्मा से माँगे मिले तो हे सखी! (हम तो उनसे माँगकर) इन्हें अपनी आँखों में ही रखें! जो स्त्री-पुरुष इस अवसर पर नहीं आए, वे श्री सीतारामजी को नहीं देख सके॥3॥

सुनि सुरुपु बूझहिं अकुलाई। अब लगि गए कहाँ लगि भाई॥

समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहिं जनमफलु पाई॥4॥

उनके सौंदर्य को सुनकर वे व्याकुल होकर पूछते हैं कि भाई! अब तक वे कहाँ तक गए होंगे? और जो समर्थ हैं, वे दौड़ते हुए जाकर उनके दर्शन कर लेते हैं और जन्म का परम फल पाकर, विशेष आनंदित होकर लौटते हैं॥4॥

दोहा :

अबला बालक बृद्ध जन कर मीजहिं पछिताहिं।

होहिं प्रेमबस लोग इमि रामु जहाँ जहँ जाहिं॥121॥

(गर्भवती, प्रसूता आदि) अबला स्त्रियाँ, बच्चे और बूढ़े (दर्शन न पाने से) हाथ मलते और पछताते

हैं। इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्री रामचन्द्रजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ लोग प्रेम के वश में हो जाते हैं॥121॥

चौपाई :

गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानुकुल कैरव चंदू॥

जे कछु समाचार सुनि पावहिं। ते नृप रानिहि दोसु लगावहिं॥1॥

सूर्यकुल रूपी कुमुदिनी को प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा स्वरूप श्री रामचन्द्रजी के दर्शन कर गाँव-गाँव में ऐसा ही आनंद हो रहा है, जो लोग (वनवास दिए जाने का) कुछ भी समाचार सुन पाते हैं, वे राजा-रानी (दशरथ-कैकेयी) को दोष लगाते हैं॥1॥

कहहिं एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जोइ लोचन लाहू॥

कहहिं परसपर लोग लोगार्इ। बातें सरल सनेह सुहाई॥2॥

कोई एक कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छे हैं, जिन्होंने हमें अपने नेत्रों का लाभ दिया। स्त्री-पुरुष सभी आपस में सीधी, स्नेहभरी सुंदर बातें कह रहे हैं॥2॥

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाए। धन्य सो नगरु जहाँ तें आए॥

धन्य सो देसु सैलु बन गाऊँ। जहँ-जहँ जाहिं धन्य सोइ ठाऊँ॥3॥

(कहते हैं-) वे माता-पिता धन्य हैं, जिन्होंने इन्हें जन्म दिया। वह नगर धन्य है, जहाँ से ये आए हैं। वह देश, पर्वत, वन और गाँव धन्य है और वही स्थान धन्य है, जहाँ-जहाँ ये जाते हैं॥3॥

सुखु पायउ बिरंचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥

राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥4॥

ब्रह्मा ने उसी को रचकर सुख पाया है, जिसके ये (श्री रामचन्द्रजी) सब प्रकार से स्नेही हैं। पथिक रूप श्री राम-लक्ष्मण की सुंदर कथा सारे रास्ते और जंगल में छा गई है॥4॥

दोहा :

एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।

जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥122॥

रघुकुल रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य श्री रामचन्द्रजी इस प्रकार मार्ग के लोगों को सुख देते हुए सीताजी और लक्ष्मणजी सहित वन को देखते हुए चले जा रहे हैं॥122॥

चौपाई :

आगें रामु लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें॥

उभय बीच सिय सोहति कैसैं। ब्रह्म जीव बिच माया जैसैं॥1॥

आगे श्री रामजी हैं, पीछे लक्ष्मणजी सुशोभित हैं। तपस्वियों के वेष बनाए दोनों बड़ी ही शोभा पा रहे हैं। दोनों के बीच में सीताजी कैसी सुशोभित हो रही हैं, जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में

माया!॥1॥

बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥

उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥2॥

फिर जैसी छबि मेरे मन में बस रही है, उसको कहता हूँ- मानो वसंत ऋतु और कामदेव के बीच में रति (कामेदेव की स्त्री) शोभित हो। फिर अपने हृदय में खोजकर उपमा कहता हूँ कि मानो बुध (चंद्रमा के पुत्र) और चन्द्रमा के बीच में रोहिणी (चन्द्रमा की स्त्री) सोह रही हो॥2॥

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥

सीय राम पद अंक बराएँ। लखन चलहिं मगु दाहिन लाएँ॥3॥

प्रभु श्री रामचन्द्रजी के (जमीन पर अंकित होने वाले दोनों) चरण चिह्नों के बीच-बीच में पैर रखती हुई सीताजी (कहीं भगवान के चरण चिह्नों पर पैर न टिक जाए इस बात से) डरती हुई मार्ग में चल रही हैं और लक्ष्मणजी (मर्यादा की रक्षा के लिए) सीताजी और श्री रामचन्द्रजी दोनों के चरण चिह्नों को बचाते हुए दाहिने रखकर रास्ता चल रहे हैं॥3॥

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई॥

खग मृग मगन देखि छबि होहीं। लिए चोरि चित राम बटोहीं॥4॥

श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी की सुंदर प्रीति वाणी का विषय नहीं है (अर्थात् अनिर्वचनीय है), अतः वह कैसे कही जा सकती है? पक्षी और पशु भी उस छबि को देखकर (प्रेमानंद में) मग्न हो जाते हैं। पथिक रूप श्री रामचन्द्रजी ने उनके भी चित्त चुरा लिए हैं॥4॥

दोहा :

जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ।

भव मगु अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ॥123॥

प्यारे पथिक सीताजी सहित दोनों भाइयों को जिन-जिन लोगों ने देखा, उन्होंने भव का अगम मार्ग (जन्म-मृत्यु रूपी संसार में भटकने का भयानक मार्ग) बिना ही परिश्रम आनंद के साथ तय कर लिया (अर्थात् वे आवागमन के चक्र से सहज ही छूटकर मुक्त हो गए)॥123॥

चौपाई :

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥

राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहु मुनि कोई॥1॥

आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्री रामजी के परमधाम के उस मार्ग को पा जाएगा, जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं॥1॥

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥

तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥2॥

तब श्री रामचन्द्रजी सीताजी को थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़ का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गए। कन्द, मूल, फल खाकर (रात भर वहाँ रहकर) प्रातःकाल स्नान करके श्री रघुनाथजी आगे चले॥2॥

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥

राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥3॥

सुंदर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के आश्रम में आए। श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि मुनि का निवास स्थान बहुत सुंदर है, जहाँ सुंदर पर्वत, वन और पवित्र जल है॥3॥

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥

खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥4॥

सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द रस में मस्त हुए भौरें सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचर रहे हैं॥4॥

दोहा :

सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।

सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयठ लेन॥124॥

पवित्र और सुंदर आश्रम को देखकर कमल नयन श्री रामचन्द्रजी हर्षित हुए। रघु श्रेष्ठ श्री रामजी का आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी उन्हें लेने के लिए आगे आए॥124॥

चौपाई :

मुनि कहँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥

देखि राम छबि नयन जुडाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥1॥

श्री रामचन्द्रजी ने मुनि को दण्डवत किया। विप्र श्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में ले आए॥1॥

मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाए॥

सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥2॥

श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजी ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिए मधुर कंद, मूल और फल

मँगवाए। श्री सीताजी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजी ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको
(विश्राम करने के लिए) सुंदर स्थान बतला दिए॥2॥

बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूर्ति नयन निहारी॥

तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई॥3॥

(मुनि श्री रामजी के पास बैठे हैं और उनकी) मंगल मूर्ति को नेत्रों से देखकर वाल्मीकिजी के मन में बड़ा भारी आनंद हो रहा है। तब श्री रघुनाथजी कमलसदृश हाथों को जोड़कर, कानों को सुख देने वाले मधुर वचन बोले-॥3॥

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरेँ हाथा ॥

अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनू रानी॥4॥

हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। सम्पूर्ण विश्व आपके लिए हथेली पर रखे हुए बेर के समान है। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकार से रानी कैकेयी ने वनवास दिया, वह सब कथा विस्तार से सुनाई॥4॥

दोहा :

तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राठ।

मो कहँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाठ॥125॥

(और कहा-) हे प्रभो! पिता की आज्ञा (का पालन), माता का हित और भरत जैसे (स्नेही एवं धर्मात्मा) भाई का राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव है॥125॥

चौपाई :

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥॥

अब जहँ राठर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥1॥

हे मुनिराज! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो-॥1॥

मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥

मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥2॥

क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है॥2॥

अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥

तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥3॥

ऐसा हृदय में समझकर- वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुंदर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु! कुछ समय निवास करूँ॥3॥

सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥

कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥4॥

श्री रामजी की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले- धन्य! धन्य! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं॥

4॥

छन्द :

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।

जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।

सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

हे राम! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी (आपकी स्वरूप भूता) माया हैं, जो कृपा के भंडार आपका रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तक वाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करने वाले हैं, वही चराचर के स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं।

सोरठा :

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।

अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥126॥

हे राम! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरंतर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं॥126॥

चौपाई :

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥1॥

हे राम! जगत दृश्य है, आप उसके देखने वाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचाने वाले हैं। जब वे भी आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जानने वाला है?॥1॥

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥2॥

वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनंदन! हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं॥2॥

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥3॥

आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पंच महाभूतों की बनी हुई कर्म बंधनयुक्त, त्रिदेह विशिष्ट मायिक नहीं है) और (उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि) सब विकारों से रहित है, इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतों के कार्य के लिए (दिव्य) नर शरीर धारण किया है और प्राकृत (प्रकृति के तत्त्वों से निर्मित देह वाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं॥3॥

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जइ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥

तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥4॥

हे राम! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है, क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है)॥4॥

दोहा :

पूँछेहु मोहि कि रहों कहँ में पूँछत सकुचाउँ।

जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावों ठाउँ॥127॥

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ॥127॥

चौपाई :

सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥

बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥1॥

मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी रहस्य खुल जाने के डर से सकुचाकर मन में मुस्कुराए। वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले-॥1॥

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥2॥

हे रामजी! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ, जहाँ आप, सीताजी और लक्ष्मणजी समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथा रूपी अनेक सुंदर नदियों से-॥2॥

भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहूँ गुह रूरे॥

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥3॥

निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं,॥3॥

निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥

तिन्ह केँ हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥4॥

तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौंदर्य (रूपी मेघ) की एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात् आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के अर्थात् पृथ्वी, स्वर्ग और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी! उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित निवास कीजिए॥4॥

दोहा :

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।

मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥128॥

आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे रामजी! आप उसके हृदय में बसिए॥128॥

चौपाई :

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥

तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषण धरहीं॥1॥

जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुंदर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं,॥1॥

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥2॥

जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते

हैं, जिनके हाथ नित्य श्री रामचन्द्रजी (आप) के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं,॥2॥

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥3॥

तथा जिनके चरण श्री रामचन्द्रजी (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (राम नाम रूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं॥3॥

तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥

तुम्ह तें अधिक गुरहिं जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥4॥

जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा करते हैं,॥4॥

दोहा :

सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।

तिन्ह केँ मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥129॥

और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मन रूपी मंदिरों में सीताजी और रघुकुल को आनंदित करने वाले आप दोनों बसिए॥129॥

चौपाई :

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥

जिन्ह केँ कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह केँ हृदय बसहु रघुराया॥1॥

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है- हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए॥1॥

सब केँ प्रिय सब केँ हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥

कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥2॥

जो सबके प्रिय और सबका हित करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निंदा) समान है, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं,॥2॥

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह केँ मन माहीं॥

जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥3॥

और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है,॥3॥

जे हरषहिं पर संपत्ति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥

जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥4॥

जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं॥4॥

दोहा :

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।

मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भात॥130॥

हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मंदिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए॥130॥

चौपाई :

अवगुन तजि सब के गुन गहरीं। बिप्र धेनु हित संकट सहरीं॥

नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥1॥

जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है॥1॥

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥

राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥2॥

जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए॥2॥

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥

सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥3॥

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर, सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथजी! आप उसके हृदय में रहिए॥3॥

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥

करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि केँ उर डेरा॥4॥

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किए आपको ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए॥4॥

दोहा :

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥131॥

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है॥131॥

चौपाई :

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥

कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥1॥

इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने श्री रामचन्द्रजी को घर दिखाए। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्री रामजी के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा- हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिए, अब मैं इस समय के लिए सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवास स्थान बतलाता हूँ)॥1॥

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥

सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥2॥

आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है और सुंदर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है॥2॥

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥3॥

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनसुयाजी अपने तपोबल से लाई थीं। वह गंगाजी की धारा है, उसका मंदाकिनी नाम है। वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिए डाकिनी (डायन) रूप है॥3॥

अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥

चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥4॥

अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं, जो योग, जप और तप करते हुए शरीर को कसते हैं। हे रामजी! चलिए, सबके परिश्रम को सफल कीजिए और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव दीजिए॥4॥

दोहा :

चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।

आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोठ भाइ॥132॥

महामुनि वाल्मीकिजी ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। तब सीताजी सहित दोनों भाइयों ने आकर श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया॥132॥

चौपाई :

रघुबर कहेठ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥

लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेठ धनुष जिमि नारा॥1॥

श्री रामचन्द्रजी ने कहा- लक्ष्मण! बड़ा अच्छा घाट है। अब यहीं कहीं ठहरने की व्यवस्था करो। तब लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर के ऊँचे किनारे को देखा (और कहा कि-) इसके चारों ओर धनुष के जैसा एक नाला फिरा हुआ है॥1॥

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥

चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥2॥

नदी (मंदाकिनी) उस धनुष की प्रत्यंचा (डोरी) है और शम, दम, दान बाण हैं। कलियुग के समस्त पाप उसके अनेक हिंसक पशु (रूप निशाने) हैं। चित्रकूट ही मानो अचल शिकारी है, जिसका निशाना कभी चूकता नहीं और जो सामने से मारता है॥2॥

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥

रमेठ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥3॥

ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थान को देखकर श्री रामचन्द्रजी ने सुख पाया। जब देवताओं ने जाना कि श्री रामचन्द्रजी का मन यहाँ रम गया, तब वे देवताओं के प्रधान थवई (मकान बनाने वाले) विश्वकर्मा को साथ लेकर चले॥3॥

कोल किरात बेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥

बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥4॥

सब देवता कोल-भीलों के वेष में आए और उन्होंने (दिव्य) पत्तों और घासों के सुंदर घर बना दिए। दो ऐसी सुंदर कुटिया बनाईं जिनका वर्णन नहीं हो सकता। उनमें एक बड़ी सुंदर छोटी सी थी और दूसरी बड़ी थी॥4॥

दोहा :

लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।

सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥133॥

लक्ष्मणजी और जानकीजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी सुंदर घास-पत्तों के घर में शोभायमान हैं।

मानो कामदेव मुनि का वेष धारण करके पत्नी रति और वसंत ऋतु के साथ सुशोभित हो॥133॥

मासपारायण, सत्रहवाँ विश्राम

चौपाई :

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला॥

राम प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू॥1॥

उस समय देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल चित्रकूट में आए और श्री रामचन्द्रजी ने सब किसी को प्रणाम किया। देवता नेत्रों का लाभ पाकर आनंदित हुए॥1॥

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भए हम आजू॥

करि बिनती दुख दुसह सुनाए। हरषित निज निज सदन सिधाए॥2॥

फूलों की वर्षा करके देव समाज ने कहा- हे नाथ! आज (आपका दर्शन पाकर) हम सनाथ हो गए। फिर विनती करके उन्होंने अपने दुःसह दुःख सुनाए और (दुःखों के नाश का आश्वासन पाकर) हर्षित होकर अपने-अपने स्थानों को चले गए॥2॥

चित्रकूट रघुनंदनु छाए। समाचार सुनि सुनि मुनि आए॥

आवत देखि मुदित मुनिबुंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥3॥

श्री रघुनाथजी चित्रकूट में आ बसे हैं, यह समाचार सुन-सुनकर बहुत से मुनि आए। रघुकुल के चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी ने मुदित हुई मुनि मंडली को आते देखकर दंडवत प्रणाम किया॥3॥

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेहीं। सुफल होन हित आसिष देहीं॥

सिय सौमित्रि राम छबि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं॥4॥

मुनिगण श्री रामजी को हृदय से लगा लेते हैं और सफल होने के लिए आशीर्वाद देते हैं। वे सीताजी, लक्ष्मणजी और श्री रामचन्द्रजी की छबि देखते हैं और अपने सारे साधनों को सफल हुआ समझते हैं॥4॥

दोहा :

जथाजोग सनमानि प्रभु बिदा किए मुनिबुंदा।

करहिं जोग जप जाग तप निज आश्रमन्हि सुछंद॥134॥

प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने यथायोग्य सम्मान करके मुनि मंडली को विदा किया। (श्री रामचन्द्रजी के आ जाने से) वे सब अपने-अपने आश्रमों में अब स्वतंत्रता के साथ योग, जप, यज्ञ और तप करने लगे॥134॥

चौपाई :

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥

कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥1॥

यह (श्री रामजी के आगमन का) समाचार जब कोल-भीलों ने पाया, तो वे ऐसे हर्षित हुए मानो नवों निधियाँ उनके घर ही पर आ गई हों। वे दोनों में कंद, मूल, फल भर-भरकर चले, मानो दरिद्र सोना लूटने चले हों॥1॥

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोठ भ्राता। अपर तिन्हहि पूँछहिं मगु जाता॥

कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥2॥

उनमें से जो दोनों भाइयों को (पहले) देख चुके थे, उनसे दूसरे लोग रास्ते में जाते हुए पूछते हैं। इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी की सुंदरता कहते-सुनते सबने आकर श्री रघुनाथजी के दर्शन किए॥

2॥

करहिं जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥

चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढे। पुलक सरीर नयन जल बाढे॥3॥

भेंट आगे रखकर वे लोग जोहार करते हैं और अत्यन्त अनुराग के साथ प्रभु को देखते हैं। वे मुग्ध हुए जहाँ के तहाँ मानो चित्र लिखे से खड़े हैं। उनके शरीर पुलकित हैं और नेत्रों में प्रेमाश्रुओं के जल की बाढ़ आ रही है॥3॥

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥

प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन विनीत कहहिंकर जोरी॥4॥

श्री रामजी ने उन सबको प्रेम में मग्न जाना और प्रिय वचन कहकर सबका सम्मान किया। वे बार-बार प्रभु श्री रामचन्द्रजी को जोहार करते हुए हाथ जोड़कर विनीत वचन कहते हैं-॥4॥

दोहा :

अब हम नाथ सनाथ सब भए देखि प्रभु पाय।

भाग हमारें आगमनु राउर कोसलराय॥135॥

हे नाथ! प्रभु (आप) के चरणों का दर्शन पाकर अब हम सब सनाथ हो गए। हे कोसलराज! हमारे ही भाग्य से आपका यहाँ शुभागमन हुआ है॥135॥

चौपाई :

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाठ तुम्ह धारा॥

धन्य बिहग मृग काननचारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी॥1॥

हे नाथ! जहाँ-जहाँ आपने अपने चरण रखे हैं, वे पृथ्वी, वन, मार्ग और पहाड़ धन्य हैं, वे वन में विचरने वाले पक्षी और पशु धन्य हैं, जो आपको देखकर सफल जन्म हो गए॥1॥

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥

कीन्ह बासु भल ठाउँ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥2॥

हम सब भी अपने परिवार सहित धन्य हैं, जिन्होंने नेत्र भरकर आपका दर्शन किया। आपने बड़ी अच्छी जगह विचारकर निवास किया है। यहाँ सभी ऋतुओं में आप सुखी रहिएगा॥2॥

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥

बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा॥3॥

हम लोग सब प्रकार से हाथी, सिंह, सर्प और बाघों से बचाकर आपकी सेवा करेंगे। हे प्रभो! यहाँ के बीहड़ वन, पहाड़, गुफाएँ और खोह (दर्रे) सब पग-पग हमारे देखे हुए हैं॥3॥

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाठब। सर निरझर जलठाउँ देखाठब॥

हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥4॥

हम वहाँ-वहाँ (उन-उन स्थानों में) आपको शिकार खिलाएँगे और तालाब, झरने आदि जलाशयों को दिखाएँगे। हम कुटुम्ब समेत आपके सेवक हैं। हे नाथ! इसलिए हमें आज्ञा देने में संकोच न कीजिए॥4॥

दोहा :

बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना ऐन।

बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बैन॥136॥

जो वेदों के वचन और मुनियों के मन को भी अगम हैं, वे करुणा के धाम प्रभु श्री रामचन्द्रजी भीलों के वचन इस तरह सुन रहे हैं, जैसे पिता बालकों के वचन सुनता है॥136॥

चौपाई :

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जान निहारा॥

राम सकल बनचर तब तोषे। कहि मृदु बचन प्रेम परिपोषे॥1॥

श्री रामचन्द्रजी को केवल प्रेम प्यारा है, जो जानने वाला हो (जानना चाहता हो), वह जान ले। तब श्री रामचन्द्रजी ने प्रेम से परिपुष्ट हुए (प्रेमपूर्ण) कोमल वचन कहकर उन सब वन में विचरण करने वाले लोगों को संतुष्ट किया॥1॥

बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥

एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥2॥

फिर उनको विदा किया। वे सिर नवाकर चले और प्रभु के गुण कहते-सुनते घर आए। इस प्रकार देवता और मुनियों को सुख देने वाले दोनों भाई सीताजी समेत वन में निवास करने लगे॥2॥

जब तैं आइ रहे रघुनायकु। तब तैं भयउ बनू मंगलदायकु॥
फूलहिं फलहिं बिटप बिधि नाना। मंजु बलित बर बेलि बिताना॥3॥

जब से श्री रघुनाथजी वन में आकर रहे तब से वन मंगलदायक हो गया। अनेक प्रकार के वृक्ष फूलते और फलते हैं और उन पर लिपटी हुई सुंदर बेलों के मंडप तने हैं॥3॥

सुरतरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आए॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेणी। त्रिबिध बयारि बहइ सुख देनी॥4॥

वे कल्पवृक्ष के समान स्वाभाविक ही सुंदर हैं। मानो वे देवताओं के वन (नंदन वन) को छोड़कर आए हों। भौरों की पंक्तियाँ बहुत ही सुंदर गुंजार करती हैं और सुख देने वाली शीतल, मंद, सुगंधित हवा चलती रहती है॥4॥

दोहा :

नीलकंठ कलकंठ सुक चातक चक्क चकोर।

भाँति भाँति बोलहिं बिहग श्रवन सुखद चित चोर॥137॥

नीलकंठ, कोयल, तोते, पपीहे, चकवे और चकोर आदि पक्षी कानों को सुख देने वाली और चित को चुराने वाली तरह-तरह की बोलियाँ बोलते हैं॥137॥

चौपाई :

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगतबैर बिचरहिं सब संग्गा॥

फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृग बृंद बिसेषी॥1॥

हाथी, सिंह, बंदर, सूअर और हिरन, ये सब वैर छोड़कर साथ-साथ विचरते हैं। शिकार के लिए फिरते हुए श्री रामचन्द्रजी की छबि को देखकर पशुओं के समूह विशेष आनंदित होते हैं॥1॥

बिबुध बिपिन जहँ लगी जग माहीं। देखि रामबनु सकल सिहाहीं॥

सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या॥2॥

जगत में जहाँ तक (जितने) देवताओं के वन हैं, सब श्री रामजी के वन को देखकर सिहाते हैं, गंगा, सरस्वती, सूर्यकुमारी यमुना, नर्मदा, गोदावरी आदि धन्य (पुण्यमयी) नदियाँ,॥2॥

सब सर सिंधु नदीं नद नाना। मंदाकिनि कर करहिं बखाना॥

उदय अस्त गिरि अरु कैलासू। मंदर मेरु सकल सुरबासू॥3॥

सारे तालाब, समुद्र, नदी और अनेकों नद सब मंदाकिनी की बड़ाई करते हैं। उदयाचल, अस्ताचल, कैलास, मंदराचल और सुमेरु आदि सब, जो देवताओं के रहने के स्थान हैं,॥3॥

सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहिं तेते॥

बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बड़ाई पाई॥4॥

और हिमालय आदि जितने पर्वत हैं, सभी चित्रकूट का यश गाते हैं। विन्ध्याचल बड़ा आनंदित है, उसके मन में सुख समाता नहीं, क्योंकि उसने बिना परिश्रम ही बहुत बड़ी बड़ाई पा ली है॥

4॥

दोहा :

चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।

पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति॥138॥

चित्रकूट के पक्षी, पशु, बेल, वृक्ष, तृण-अंकुरादि की सभी जातियाँ पुण्य की राशि हैं और धन्य हैं-
देवता दिन-रात ऐसा कहते हैं॥138॥

चौपाई :

नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥

परसि चरन रज अचर सुखारी। भए परम पद के अधिकारी॥1॥

आँखों वाले जीव श्री रामचन्द्रजी को देखकर जन्म का फल पाकर शोकरहित हो जाते हैं और अचर (पर्वत, वृक्ष, भूमि, नदी आदि) भगवान की चरण रज का स्पर्श पाकर सुखी होते हैं। यों सभी परम पद (मोक्ष) के अधिकारी हो गए॥1॥

सो बनू सैलु सुभायँ सुहावन। मंगलमय अति पावन पावन॥

महिमा कहिअ कवनि बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू॥2॥

वह वन और पर्वत स्वाभाविक ही सुंदर, मंगलमय और अत्यन्त पवित्रों को भी पवित्र करने वाला है। उसकी महिमा किस प्रकार कही जाए, जहाँ सुख के समुद्र श्री रामजी ने निवास किया है॥2॥

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई॥

कहि न सकहिं सुषमा जसि कानन। जौं सत सहस होहिं सहसानन॥3॥

क्षीर सागर को त्यागकर और अयोध्या को छोड़कर जहाँ सीताजी, लक्ष्मणजी और श्री रामचन्द्रजी आकर रहे, उस वन की जैसी परम शोभा है, उसको हजार मुख वाले जो लाख शेषजी हों तो वे भी नहीं कह सकते॥3॥

सो में बरनि कहों बिधि केहीं। डाबर कमठ कि मंदर लेहीं॥

सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥4॥

उसे भला, मैं किस प्रकार से वर्णन करके कह सकता हूँ। कहीं पोखरे का (क्षुद्र) कछुआ भी मंदराचल उठा सकता है? लक्ष्मणजी मन, वचन और कर्म से श्री रामचन्द्रजी की सेवा करते हैं।

उनके शील और स्नेह का वर्णन नहीं किया जा सकता॥4॥

दोहा :

छिनु छिनु लखि सिय राम पद जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखनु चितु बंधु मातु पितु गेहु॥139॥

क्षण-क्षण पर श्री सीता-रामजी के चरणों को देखकर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर लक्ष्मणजी स्वप्न में भी भाइयों, माता-पिता और घर की याद नहीं करते॥139॥

चौपाई :

राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥

छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥1॥

श्री रामचन्द्रजी के साथ सीताजी अयोध्यापुरी, कुटुम्ब के लोग और घर की याद भूलकर बहुत ही सुखी रहती हैं। क्षण-क्षण पर पति श्री रामचन्द्रजी के चन्द्रमा के समान मुख को देखकर वे वैसे ही परम प्रसन्न रहती हैं, जैसे चकोर कुमारी (चकोरी) चन्द्रमा को देखकर !॥1॥

नाह नेहु नित बढत बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥2॥

स्वामी का प्रेम अपने प्रति नित्य बढ़ता हुआ देखकर सीताजी ऐसी हर्षित रहती हैं, जैसे दिन में चकवी! सीताजी का मन श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त है, इससे उनको वन हजारों अवध के समान प्रिय लगता है॥2॥

परनकुटी प्रिय प्रियतम संग। प्रिय परिवारु कुरंग बिहंगा॥

सासु ससुर सम मुनितिय मुनिबर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर॥3॥

प्रियतम (श्री रामचन्द्रजी) के साथ पर्णकुटी प्यारी लगती है। मृग और पक्षी प्यारे कुटुम्बियों के समान लगते हैं। मुनियों की स्त्रियाँ सास के समान, श्रेष्ठ मुनि ससुर के समान और कंद-मूल-फलों का आहार उनको अमृत के समान लगता है॥3॥

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई॥

लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥4॥

स्वामी के साथ सुंदर साथरी (कुश और पत्तों की सेज) सैकड़ों कामदेव की सेजों के समान सुख देने वाली है। जिनके (कृपापूर्वक) देखने मात्र से जीव लोकपाल हो जाते हैं, उनको कहीं भोग-विलास मोहित कर सकते हैं!॥4॥

दोहा :

सुमिरत रामहि तजहिं जन तृन सम बिषय बिलासु।

रामप्रिया जग जननि सिय कछु न आचरजु तासु॥140॥

जिन श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करने से ही भक्तजन तमाम भोग-विलास को तिनके के समान त्याग देते हैं, उन श्री रामचन्द्रजी की प्रिय पत्नी और जगत की माता सीताजी के लिए यह (भोग-विलास का त्याग) कुछ भी आश्चर्य नहीं है॥140॥

चौपाई :

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥1॥

सीताजी और लक्ष्मणजी को जिस प्रकार सुख मिले, श्री रघुनाथजी वही करते और वही कहते हैं। भगवान प्राचीन कथाएँ और कहानियाँ कहते हैं और लक्ष्मणजी तथा सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते हैं॥1॥

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥2॥

जब-जब श्री रामचन्द्रजी अयोध्या की याद करते हैं, तब-तब उनके नेत्रों में जल भर आता है। माता-पिता, कुटुम्बियों और भाइयों तथा भरत के प्रेम, शील और सेवाभाव को याद करके-॥2॥

कृपासिंधु प्रभु होहिं दुखारी। धीरजु धरहिं कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखनु बिकल होइ जाहीं। जिमि पुरुषहि अनुसार परिछाहीं॥3॥
कृपा के समुद्र प्रभु श्री रामचन्द्रजी दुःखी हो जाते हैं, किन्तु फिर कुसमय समझकर धीरज धारण कर लेते हैं। श्री रामचन्द्रजी को दुःखी देखकर सीताजी और लक्ष्मणजी भी व्याकुल हो जाते हैं, जैसे किसी मनुष्य की परछाहीं उस मनुष्य के समान ही चेष्टा करती है॥3॥

प्रिया बंधु गति लखि रघुनंदनु। धीर कृपाल भगत उर चंदनु॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहिं लखनु अरु सीता॥4॥
तब धीर, कृपालु और भक्तों के हृदयों को शीतल करने के लिए चंदन रूप रघुकुल को आनंदित करने वाले श्री रामचन्द्रजी प्यारी पत्नी और भाई लक्ष्मण की दशा देखकर कुछ पवित्र कथाएँ कहने लगते हैं, जिन्हें सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी सुख प्राप्त करते हैं॥4॥

दोहा :

रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।

जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥141॥

लक्ष्मणजी और सीताजी सहित श्री रामचन्द्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हैं, जैसे अमरावती में इन्द्र अपनी पत्नी शची और पुत्र जयंत सहित बसता है॥141॥

चौपाई :

जोगवहिं प्रभुसिय लखनहि कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥

सेवहिं लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि॥1॥

प्रभु श्री रामचन्द्रजी सीताजी और लक्ष्मणजी की कैसी सँभाल रखते हैं, जैसे पलकें नेत्रों के गोलकों की। इधर लक्ष्मणजी श्री सीताजी और श्री रामचन्द्रजी की (अथवा लक्ष्मणजी और सीताजी श्री रामचन्द्रजी की) ऐसी सेवा करते हैं, जैसे अज्ञानी मनुष्य शरीर की करते हैं॥1॥

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥

कहेँ राम बन गवनु सुहावा। सुनहु सुमंत्र अवध जिमि आवा॥2॥

पक्षी, पशु, देवता और तपस्वियों के हितकारी प्रभु इस प्रकार सुखपूर्वक वन में निवास कर रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं- मैंने श्री रामचन्द्रजी का सुंदर वनगमन कहा। अब जिस तरह सुमन्त्र अयोध्या में आए वह (कथा) सुनो॥2॥

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥

मंत्री बिकल बिलोकि निषादु। कहि न जाइ जस भयउ बिषादु॥3॥

प्रभु श्री रामचन्द्रजी को पहुँचाकर जब निषादराज लौटा, तब आकर उसने रथ को मंत्री (सुमंत्र) सहित देखा। मंत्री को व्याकुल देखकर निषाद को जैसा दुःख हुआ, वह कहा नहीं जाता॥3॥

राम राम सिय लखन पुकारी। परेउ धरनितल ब्याकुल भारी॥

देखि दखिन दिसि ह्य हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥4॥

(निषाद को अकेले आया देखकर) सुमंत्र हा राम! हा राम! हा सीते! हा लक्ष्मण! पुकारते हुए, बहुत व्याकुल होकर धरती पर गिर पड़े। (रथ के) घोड़े दक्षिण दिशा की ओर (जिधर श्री रामचन्द्रजी गए थे) देख-देखकर हिनहिनाते हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों॥4॥

दोहा :

नहिं तृन चरहिं न पिअहिं जलु मोचहिं लोचन बारि।

ब्याकुल भए निषाद सब रघुबर बाजि निहारि॥142॥

वे न तो घास चरते हैं, न पानी पीते हैं। केवल आँखों से जल बहा रहे हैं। श्री रामचन्द्रजी के घोड़ों को इस दशा में देखकर सब निषाद व्याकुल हो गए॥142॥

चौपाई :

धरि धीरजु तब कहइ निषादु। अब सुमंत्र परिहरहु बिषादु॥

तुम्ह पंडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥1॥

तब धीरज धरकर निषादराज कहने लगा- हे सुमंत्रजी! अब विषाद को छोड़िए। आप पंडित और परमार्थ के जानने वाले हैं। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण कीजिए॥1॥

बिबिधि कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी॥

सोक सिथिल रथु सकइ न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी॥2॥

कोमल वाणी से भाँति-भाँति की कथाएँ कहकर निषाद ने जबर्दस्ती लाकर सुमंत्र को रथ पर बैठाया, परन्तु शोक के मारे वे इतने शिथिल हो गए कि रथ को हाँक नहीं सकते। उनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी के विरह की बड़ी तीव्र वेदना है॥2॥

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥

अडुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥3॥

घोड़े तड़फड़ाते हैं और (ठीक) रास्ते पर नहीं चलते। मानो जंगली पशु लाकर रथ में जोत दिए गए हों। वे श्री रामचन्द्रजी के वियोगी घोड़े कभी ठोकर खाकर गिर पड़ते हैं, कभी घूमकर पीछे की ओर देखने लगते हैं। वे तीक्ष्ण दुःख से व्याकुल हैं॥3॥

जो कह रामु लखनु बैदेही। हिकरि हिकरि हित हेरहिं तेही॥

बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहिं भाँती॥4॥

जो कोई राम, लक्ष्मण या जानकी का नाम ले लेता है, घोड़े हिकर-हिकरकर उसकी ओर प्यार से देखने लगते हैं। घोड़ों की विरह दशा कैसे कही जा सकती है? वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे मणि के बिना साँप व्याकुल होता है॥4॥

दोहा :

भयउ निषादु बिषादबस देखत सचिव तुरंग।

बोलि सुसेवक चारि तब दिए सारथी संग॥143॥

मंत्री और घोड़ों की यह दशा देखकर निषादराज विषाद के वश हो गया। तब उसने अपने चार उत्तम सेवक बुलाकर सारथी के साथ कर दिए॥143॥

चौपाई :

गुह सारथिहि फिरेउ पहुँचाई। बिरहु बिषादु बरनि नहिं जाई॥

चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहिं छन मगन बिषादा॥1॥

निषादराज गुह सारथी (सुमंत्रजी) को पहुँचाकर (विदा करके) लौटा। उसके विरह और दुःख का वर्णन नहीं किया जा सकता। वे चारों निषाद रथ लेकर अवध को चले। (सुमंत्र और घोड़ों को देख-देखकर) वे भी क्षण-क्षणभर विषाद में डूबे जाते थे॥1॥

सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना॥

रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरु। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरु॥2॥

व्याकुल और दुःख से दीन हुए सुमंत्रजी सोचते हैं कि श्री रघुवीर के बिना जीना धिक्कार है। आखिर यह अधम शरीर रहेगा तो है ही नहीं। अभी श्री रामचन्द्रजी के बिछुड़ते ही छूटकर इसने यश (क्यों) नहीं ले लिया॥2॥

भए अजस अघ भाजन प्राणा। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥

अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥3॥

ये प्राण अपयश और पाप के भाँडे हो गए। अब ये किस कारण कूच नहीं करते (निकलते नहीं)? हाय! नीच मन (बड़ा अच्छा) मौका चूक गया। अब भी तो हृदय के दो टुकड़े नहीं हो जाते!॥3॥

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई॥

बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेठ समर जनु सुभट पराई॥4॥

सुमंत्र हाथ मल-मलकर और सिर पीट-पीटकर पछताते हैं। मानो कोई कंजूस धन का खजाना खो बैठा हो। वे इस प्रकार चले मानो कोई बड़ा योद्धा वीर का बाना पहनकर और उत्तम शूरवीर कहलाकर युद्ध से भाग चला हो!॥4॥

दोहा :

बिप्र बिबेकी बेदबिद संमत साधु सुजाति।

जिमि धोखें मदपान कर सचिव सोच तेहि भाँति॥144॥

जैसे कोई विवेकशील, वेद का ज्ञाता, साधुसम्मत आचरणों वाला और उत्तम जाति का (कुलीन) ब्राह्मण धोखे से मदिरा पी ले और पीछे पछतावे, उसी प्रकार मंत्री सुमंत्र सोच कर रहे (पछता रहे) हैं॥144॥

चौपाई :

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम मन बानी॥

रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदयँ तिमि दारुन दाहू॥1॥

जैसे किसी उत्तम कुलवाली, साधु स्वाभाव की, समझदार और मन, वचन, कर्म से पति को ही देवता मानने वाली पतिव्रता स्त्री को भाग्यवश पति को छोड़कर (पति से अलग) रहना पड़े, उस समय उसके हृदय में जैसे भयानक संताप होता है, वैसे ही मंत्री के हृदय में हो रहा है॥1॥

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी॥

सूखहिं अधर लागि मुहँ लाटी। जिठ न जाइ उर अवधि कपाटी॥2॥

नेत्रों में जल भरा है, दृष्टि मंद हो गई है। कानों से सुनाई नहीं पड़ता, व्याकुल हुई बुद्धि बेठिकाने हो रही है। होठ सूख रहे हैं, मुँह में लाटी लग गई है, किन्तु (ये सब मृत्यु के लक्षण हो जाने पर भी) प्राण नहीं निकलते, क्योंकि हृदय में अवधि रूपी किवाड़ लगे हैं (अर्थात् चौदह वर्ष बीत

जाने पर भगवान फिर मिलेंगे, यही आशा रुकावट डाल रही है)॥2॥

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी॥

हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पंथ सोच जिमि पापी॥3॥

सुमंत्रजी के मुख का रंग बदल गया है, जो देखा नहीं जाता। ऐसा मालूम होता है मानो इन्होंने माता-पिता को मार डाला हो। उनके मन में रामवियोग रूपी हानि की महान गलानि (पीड़ा) छा रही है, जैसे कोई पापी मनुष्य नरक को जाता हुआ रास्ते में सोच कर रहा हो॥3॥

बचनु न आव हृदयँ पछिताई। अवध काह में देखब जाई॥

राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥4॥

मुँह से वचन नहीं निकलते। हृदय में पछताते हैं कि मैं अयोध्या में जाकर क्या देखूँगा? श्री रामचन्द्रजी से शून्य रथ को जो भी देखेगा, वही मुझे देखने में संकोच करेगा (अर्थात् मेरा मुँह नहीं देखना चाहेगा)॥4॥

दोहा :

धाइ पूँछिहहिं मोहि जब बिकल नगर नर नारि।

उतरु देब में सबहि तब हृदयँ बज्रु बैठारि॥145॥

नगर के सब व्याकुल स्त्री-पुरुष जब दौड़कर मुझसे पूछेंगे, तब मैं हृदय पर वज्र रखकर सबको उत्तर दूँगा॥145॥

चौपाई :

पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह में तिन्हहि बिधाता।

पूछिहि जबहिं लखन महतारी। कहिहउँ कवन सँदेस सुखारी॥1॥

जब दीन-दुःखी सब माताएँ पूछेंगी, तब हे विधाता! मैं उन्हें क्या कहूँगा? जब लक्ष्मणजी की माता मुझसे पूछेंगी, तब मैं उन्हें कौन सा सुखदायी सँदेसा कहूँगा?॥1॥

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई॥

पूँछत उतरु देब में तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही॥2॥

श्री रामजी की माता जब इस प्रकार दौड़ी आवेंगी जैसे नई ब्यायी हुई गौ बछड़े को याद करके दौड़ी आती है, तब उनके पूछने पर मैं उन्हें यह उत्तर दूँगा कि श्री राम, लक्ष्मण, सीता वन को चले गए!॥2॥

जोई पूँछिहि तेहि ऊतरु देबा। जाइ अवध अब यह सुखु लेबा॥

पूँछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥3॥

जो भी पूछेगा उसे यही उत्तर देना पड़ेगा! हाय! अयोध्या जाकर अब मुझे यही सुख लेना है! जब

दुःख से दीन महाराज, जिनका जीवन श्री रघुनाथजी के (दर्शन के) ही अधीन है, मुझसे पूछेंगे,॥

3॥

देहँ उतरु कौनु मुहु लाई। आयँ कुसल कुअँ पहुँचाई॥

सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥4॥

तब मैं कौन सा मुँह लेकर उन्हें उत्तर दूँगा कि मैं राजकुमारों को कुशल पूर्वक पहुँचा आया हूँ!
लक्ष्मण, सीता और श्रीराम का समाचार सुनते ही महाराज तिनके की तरह शरीर को त्याग
देंगे॥4॥

दोहा :

हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतमु नीरु।

जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि यहु जातना सरीरु॥146॥

प्रियतम (श्री रामजी) रूपी जल के बिछुड़ते ही मेरा हृदय कीचड़ की तरह फट नहीं गया, इससे
मैं जानता हूँ कि विधाता ने मुझे यह 'यातना शरीर' ही दिया है (जो पापी जीवों को नरक
भोगने के लिए मिलता है)॥146॥

चौपाई :

एहि बिधि करत पंथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा॥

बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पायँ परि बिकल बिषादा॥1॥

सुमंत्र इस प्रकार मार्ग में पछतावा कर रहे थे, इतने में ही रथ तुरंत तमसा नदी के तट पर आ
पहुँचा। मंत्री ने विनय करके चारों निषादों को विदा किया। वे विषाद से व्याकुल होते हुए सुमंत्र
के पैरों पड़कर लौटे॥1॥

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जनु मारेसि गुर बाँभन गाई॥

बैठि बिटप तर दिवसु गवाँवा। साँझ समय तब अवसरु पावा॥2॥

नगर में प्रवेश करते मंत्री (ग्लानि के कारण) ऐसे सकुचाते हैं, मानो गुरु, ब्राह्मण या गौ को
मारकर आए हों। सारा दिन एक पेड़ के नीचे बैठकर बिताया। जब संध्या हुई तब मौका मिला॥

2॥

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधिआरें। पैठ भवन रथु राखि दुआरें॥

जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए॥3॥

अँधेरा होने पर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया और रथ को दरवाजे पर खड़ा करके वे (चुपके
से) महल में घुसे। जिन-जिन लोगों ने यह समाचार सुना पाया, वे सभी रथ देखने को राजद्वार
पर आए॥3॥

रथ पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥

नगर नारि नर व्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें॥4॥

रथ को पहचानकर और घोड़ों को व्याकुल देखकर उनके शरीर ऐसे गले जा रहे हैं (क्षीण हो रहे हैं) जैसे घाम में ओले! नगर के स्त्री-पुरुष कैसे व्याकुल हैं, जैसे जल के घटने पर मछलियाँ (व्याकुल होती हैं)॥4॥

दोहा :

सचिव आगमनु सुनत सबु बिकल भयउ रनिवासु।

भवनु भयंकरु लाग तेहि मानहुँ प्रेत निवासु॥147॥

मंत्री का (अकेले ही) आना सुनकर सारा रनिवास व्याकुल हो गया। राजमहल उनको ऐसा भयानक लगा मानो प्रेतों का निवास स्थान (श्मशान) हो॥147॥

चौपाई :

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भइ बानी॥

सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृपु तेहि तेहि बूझा॥1॥

अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछती हैं, पर सुमंत्र को कुछ उत्तर नहीं आता, उनकी वाणी विकल हो गई (रुक गई) है। न कानों से सुनाई पड़ता है और न आँखों से कुछ सूझता है। वे जो भी सामने आता है उस-उससे पूछते हैं कहो, राजा कहाँ हैं ?॥1॥

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृहँ गई लवाई॥

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा॥2॥

दासियाँ मंत्री को व्याकुल देखकर उन्हें कौसल्याजी के महल में लिवा गईं। सुमंत्र ने जाकर वहाँ राजा को कैसा (बैठे) देखा मानो बिना अमृत का चन्द्रमा हो॥2॥

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना॥

लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती॥3॥

राजा आसन, शय्या और आभूषणों से रहित बिलकुल मलिन (उदास) पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। वे लंबी साँसें लेकर इस प्रकार सोच करते हैं, मानो राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर सोच कर रहे हों॥3॥

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती॥

राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही॥4॥

राजा क्षण-क्षण में सोच से छाती भर लेते हैं। ऐसी विकल दशा है मानो (गीध राज जटायु का भाई) सम्पाती पंखों के जल जाने पर गिर पड़ा हो। राजा (बार-बार) 'राम, राम' हा स्नेही (प्यारे)

राम!' कहते हैं, फिर 'हा राम, हा लक्ष्मण, हा जानकी' ऐसा कहने लगते हैं॥4॥

दोहा :

देखि सचिवँ जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।

सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमंत्र कहँ रामु॥148॥

मंत्री ने देखकर 'जयजीव' कहकर दण्डवत् प्रणाम किया। सुनते ही राजा व्याकुल होकर उठे और बोले- सुमंत्र! कहो, राम कहाँ हैं ?॥148॥

चौपाई :

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई। बूडत कछु अधार जनु पाई॥

सहित सनेह निकट बैठारी। पूँछत राउ नयन भरि बारी॥1॥

राजा ने सुमंत्र को हृदय से लगा लिया। मानो डूबते हुए आदमी को कुछ सहारा मिल गया हो। मंत्री को स्नेह के साथ पास बैठकर नेत्रों में जल भरकर राजा पूछने लगे-॥1॥

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥

आने फेरि कि बनहि सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए॥2॥

हे मेरे प्रेमी सखा! श्री राम की कुशल कहो। बताओ, श्री राम, लक्ष्मण और जानकी कहाँ हैं? उन्हें लौटा लाए हो कि वे वन को चले गए? यह सुनते ही मंत्री के नेत्रों में जल भर आया॥2॥

सोक बिकल पुनि पूँछ नरेसू। कहु सिय राम लखन संदेसू॥

राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ॥3॥

शोक से व्याकुल होकर राजा फिर पूछने लगे- सीता, राम और लक्ष्मण का संदेश तो कहो। श्री रामचन्द्रजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को याद कर-करके राजा हृदय में सोच करते हैं॥3॥

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू॥

सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड़ मोहि समाना॥4॥

(और कहते हैं-) मैंने राजा होने की बात सुनाकर वनवास दे दिया, यह सुनकर भी जिस (राम) के मन में हर्ष और विषाद नहीं हुआ, ऐसे पुत्र के बिछुड़ने पर भी मेरे प्राण नहीं गए, तब मेरे समान बड़ा पापी कौन होगा ?॥4॥

दोहा :

सखा रामु सिय लखनु जहँ तहाँ मोहि पहुँचाउ।

नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहँ सतिभाउ॥149॥

हे सखा! श्री राम, जानकी और लक्ष्मण जहाँ हैं, मुझे भी वहीं पहुँचा दो। नहीं तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि मेरे प्राण अब चलना ही चाहते हैं॥149॥

चौपाई :

पुनि पुनि पूँछत मंत्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥

करहि सखा सोइ बेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥1॥

राजा बार-बार मंत्री से पूछते हैं- मेरे प्रियतम पुत्रों का संदेसा सुनाओ। हे सखा! तुम तुरंत वही उपाय करो जिससे श्री राम, लक्ष्मण और सीता को मुझे आँखों दिखा दो॥1॥

सचिव धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी॥

बीर सुधीर धुरंधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥2॥

मंत्री धीरज धरकर कोमल वाणी बोले- महाराज! आप पंडित और ज्ञानी हैं। हे देव! आप शूरवीर तथा उत्तम धैर्यवान पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। आपने सदा साधुओं के समाज की सेवा की है॥2॥

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा॥

काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाई॥3॥

जन्म-मरण, सुख-दुःख के भोग, हानि-लाभ, प्यारों का मिलना-बिछुड़ना, ये सब हे स्वामी! काल और कर्म के अधीन रात और दिन की तरह बरबस होते रहते हैं॥3॥

सुख हरषहिं जइ दुख बिलखाहीं। दोठ सम धीर धरहिं मन माहीं॥

धीरज धरहु बिबेकु बिचारी। छाडिअ सोच सकल हितकारी॥4॥

मूर्ख लोग सुख में हर्षित होते और दुःख में रोते हैं, पर धीर पुरुष अपने मन में दोनों को समान समझते हैं। हे सबके हितकारी (रक्षक)! आप विवेक विचारकर धीरज धरिए और शोक का परित्याग कीजिए॥4॥

दोहा :

प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर।

न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोठ बीर॥150॥

श्री रामजी का पहला निवास (मुकाम) तमसा के तट पर हुआ, दूसरा गंगातीर पर। सीताजी सहित दोनों भाई उस दिन स्नान करके जल पीकर ही रहे॥150॥

चौपाई :

केवट कीन्हि बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गवाँई॥

होत प्रात बट छीरु मगावा। जटा मुकुट निज सीस बनावा॥1॥

केवट (निषादराज) ने बहुत सेवा की। वह रात सिंगरौर (श्रृंगवेरपुर) में ही बिताई। दूसरे दिन सबेरा होते ही बड़ का दूध मँगवाया और उससे श्री राम-लक्ष्मण ने अपने सिरों पर जटाओं के मुकुट बनाए॥1॥

राम सखाँ तब नाव मगाई। प्रिया चढाई चढे रघुवाई॥

लखन बान धनु धरे बनाई। आपु चढे प्रभु आयसु पाई॥2॥

तब श्री रामचन्द्रजी के सखा निषादराज ने नाव मँगवाई। पहले प्रिया सीताजी को उस पर चढाकर फिर श्री रघुनाथजी चढे। फिर लक्ष्मणजी ने धनुष-बाण सजाकर रखे और प्रभु श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर स्वयं चढे॥2॥

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा॥

तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पंकज गहेहू॥3॥

मुझे व्याकुल देखकर श्री रामचन्द्रजी धीरज धरकर मधुर वचन बोले- हे तात! पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और मेरी ओर से बार-बार उनके चरण कमल पकड़ना॥3॥

करबि पायँ परि बिनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥

बन मग मंगल कुसल हमारें। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें॥4॥

फिर पाँव पकड़कर विनती करना कि हे पिताजी! आप मेरी चिंता न कीजिए। आपकी कृपा, अनुग्रह और पुण्य से वन में और मार्ग में हमारा कुशल-मंगल होगा॥4॥

छन्द :

तुम्हरेँ अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।

प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥

जननीं सकल परितोषि परि परि पायँ करि बिनती घनी।

तुलसी करहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसलधनी॥

हे पिताजी! आपके अनुग्रह से मैं वन जाते हुए सब प्रकार का सुख पाऊँगा। आज्ञा का भलीभाँति पालन करके चरणों का दर्शन करने कुशल पूर्वक फिर लौट आऊँगा। सब माताओं के पैरों पड़-पड़कर उनका समाधान करके और उनसे बहुत विनती करके तुलसीदास कहते हैं- तुम वही प्रयत्न करना, जिसमें कोसलपति पिताजी कुशल रहें।

सोरठा :

गुर सन कहब सँदेसु बार बार पद पदुम गहि।

करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति॥151॥

बार-बार चरण कमलों को पकड़कर गुरु वशिष्ठजी से मेरा संदेश कहना कि वे वही उपदेश दें, जिससे अवधपति पिताजी मेरा सोच न करें॥151॥

चौपाई :

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएहु बिनती मोरी॥

सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जातें रह नरनाहु सुखारी॥1॥

हे तात! सब पुरवासियों और कुटुम्बियों से निहोरा (अनुरोध) करके मेरी विनती सुनाना कि वही मनुष्य मेरा सब प्रकार से हितकारी है, जिसकी चेष्टा से महाराज सुखी रहें॥1॥

कहब सँदेसु भरत के आएँ। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥

पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेएहु मातु सकल सम जानी॥2॥

भरत के आने पर उनको मेरा संदेश कहना कि राजा का पद पा जाने पर नीति न छोड़ देना, कर्म, वचन और मन से प्रजा का पालन करना और सब माताओं को समान जानकर उनकी सेवा करना॥2॥

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥

तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहिं करै न काऊ॥3॥

और हे भाई! पिता, माता और स्वजनों की सेवा करके भाईपन को अंत तक निबाहना। हे तात! राजा (पिताजी) को उसी प्रकार से रखना जिससे वे कभी (किसी तरह भी) मेरा सोच न करें॥3॥

लखन कहे कछु बचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥

बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लारिकाई॥4॥

लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे, किन्तु श्री रामजी ने उन्हें बरजकर फिर मुझसे अनुरोध किया और बार-बार अपनी सौगंध दिलाई (और कहा) हे तात! लक्ष्मण का लड़कपन वहाँ न कहना॥4॥

दोहा :

कहि प्रनामु कछु कहन लिय सिय भइ सिथिल सनेह।

थकित बचन लोचन सजल पुलक पल्लवित देह॥152॥

प्रणाम कर सीताजी भी कुछ कहने लगी थीं, परन्तु स्नेहवश वे शिथिल हो गईं। उनकी वाणी रुक गई, नेत्रों में जल भर आया और शरीर रोमांच से व्याप्त हो गया॥152॥

चौपाई :

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई॥

रघुकुलतिलक चले एहि भाँती। देखउँ ठाढ़ कुलिस धरि छाती॥1॥

उसी समय श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर केवट ने पार जाने के लिए नाव चला दी। इस प्रकार रघुवंश तिलक श्री रामचन्द्रजी चल दिए और मैं छाती पर वज्र रखकर खड़ा-खड़ा देखता रहा॥1॥

मैं आपन किमि कहाँ कलेसू। जिअत फिरेउँ लेइ राम सँदेसू॥

अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ॥2॥

मैं अपने क्लेश को कैसे कहूँ, जो श्री रामजी का यह संदेश लेकर जीता ही लौट आया! ऐसा कहकर मंत्री की वाणी रुक गई (वे चुप हो गए) और वे हानि की ग्लानि और सोच के वश हो गए॥2॥

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥

तलफत बिषम मोह मन मापा। माजा मनहुँ मीन कहूँ ब्यापा॥3॥

सारथी सुमंत्र के वचन सुनते ही राजा पृथ्वी पर गिर पड़े, उनके हृदय में भयानक जलन होने लगी। वे तड़पने लगे, उनका मन भीषण मोह से व्याकुल हो गया। मानो मछली को माँजा व्याप गया हो (पहली वर्षा का जल लग गया हो)॥3॥

करि बिलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥

सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥4॥

सब रानियाँ विलाप करके रो रही हैं। उस महान विपत्ति का कैसे वर्णन किया जाए? उस समय के विलाप को सुनकर दुःख को भी दुःख लगा और धीरज का भी धीरज भाग गया!॥4॥

दोहा :

भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरु।

बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुँ कुलिस कठोरु॥153॥

राजा के रावले (रनिवास) में (रोने का) शोर सुनकर अयोध्या भर में बड़ा भारी कुहराम मच गया! (ऐसा जान पड़ता था) मानो पक्षियों के विशाल वन में रात के समय कठोर वज्र गिरा हो॥153॥

चौपाई :

प्राण कंठगत भयउ भुआलू। मनि बिहीन जनु ब्याकुल ब्यालू॥

इंद्रीं सकल बिकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनू बिनु बारी॥1॥

राजा के प्राण कंठ में आ गए। मानो मणि के बिना साँप व्याकुल (मरणासन्न) हो गया हो। इन्द्रियाँ सब बहुत ही विकल हो गईं, मानो बिना जल के तालाब में कमलों का वन मुरझा गया हो॥1॥

कौसल्याँ नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जियँ जाना॥

उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी॥2॥

कौसल्याजी ने राजा को बहुत दुःखी देखकर अपने हृदय में जान लिया कि अब सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो चला! तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्या हृदय में धीरज धरकर समय के

अनुकूल वचन बोलीं-॥2॥

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥

करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढेठ सकल प्रिय पथिक समाजू॥3॥

हे नाथ! आप मन में समझ कर विचार कीजिए कि श्री रामचन्द्र का वियोग अपार समुद्र है। अयोध्या जहाज है और आप उसके कर्णधार (खेने वाले) हैं। सब प्रियजन (कुटुम्बी और प्रजा) ही यात्रियों का समाज है, जो इस जहाज पर चढा हुआ है॥3॥

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूडिहि सबु परिवारू॥

जों जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी॥4॥

आप धीरज धरिएगा, तो सब पार पहुँच जाएँगे। नहीं तो सारा परिवार डूब जाएगा। हे प्रिय स्वामी! यदि मेरी विनती हृदय में धारण कीजिएगा तो श्री राम, लक्ष्मण, सीता फिर आ मिलेंगे॥

4॥

दोहा :

प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु चितयउ आँखि उघारि।

तलफत मीन मलीन जनु सींचत सीतल बारि॥154॥

प्रिय पत्नी कौसल्या के कोमल वचन सुनते हुए राजा ने आँखें खोलकर देखा! मानो तड़पती हुई दीन मछली पर कोई शीतल जल छिड़क रहा हो॥154॥

चौपाई :

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमंत्र कहँ राम कृपालू॥

कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥1॥

धीरज धरकर राजा उठ बैठे और बोले-सुमंत्र! कहो, कृपालु श्री राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ हैं? स्नेही राम कहाँ हैं? और मेरी प्यारी बहू जानकी कहाँ है?॥1॥

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥2॥

राजा व्याकुल होकर बहुत प्रकार से विलाप कर रहे हैं। वह रात युग के समान बड़ी हो गई, बीतती ही नहीं। राजा को अंधे तपस्वी (श्रवणकुमार के पिता) के शाप की याद आ गई। उन्होंने सब कथा कौसल्या को कह सुनाई॥2॥

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥

सो तनु राखि करब में काहा। जेहिं न प्रेम पनु मोर निबाहा॥3॥

उस इतिहास का वर्णन करते-करते राजा व्याकुल हो गए और कहने लगे कि श्री राम के बिना जीने की आशा को धिक्कार है। मैं उस शरीर को रखकर क्या करूँगा, जिसने मेरा प्रेम का प्रण नहीं निबाहा?॥3॥

हा रघुनंदन प्राण पिरीते। तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते॥

हा जानकी लखन हा रघुबर। हा पितु हित चित चातक जलधर॥4॥

हा रघुकुल को आनंद देने वाले मेरे प्राण प्यारे राम! तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गए। हा जानकी, लक्ष्मण! हा रघुवीर! हा पिता के चित रूपी चातक के हित करने वाले मेघ!॥4॥

दोहा :

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।

तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राठ गयउ सुरधाम॥155॥

राम-राम कहकर, फिर राम कहकर, फिर राम-राम कहकर और फिर राम कहकर राजा श्री राम के विरह में शरीर त्याग कर सुरलोक को सिधार गए॥155॥

चौपाई :

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥

जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥1॥

जीने और मरने का फल तो दशरथजी ने ही पाया, जिनका निर्मल यश अनेकों ब्रह्मांडों में छा गया। जीते जी तो श्री रामचन्द्रजी के चन्द्रमा के समान मुख को देखा और श्री राम के विरह को निमित्त बनाकर अपना मरण सुधार लिया॥1॥

सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बलु तेजु बखानी॥

करहिं विलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा॥2॥

सब रानियाँ शोक के मारे व्याकुल होकर रो रही हैं। वे राजा के रूप, शील, बल और तेज का बखान कर-करके अनेकों प्रकार से विलाप कर रही हैं और बार-बार धरती पर गिर-गिर पड़ती हैं॥2॥

बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदनु करहिं पुरबासी॥

अँथयउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू॥3॥

दास-दासीगण व्याकुल होकर विलाप कर रहे हैं और नगर निवासी घर-घर रो रहे हैं। कहते हैं कि आज धर्म की सीमा, गुण और रूप के भंडार सूर्यकुल के सूर्य अस्त हो गए?॥3॥

गारीं सकल कैकइहि देहीं। नयन बिहीन कीन्ह जग जेहीं॥

एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी॥4॥

सब कैकेयी को गालियाँ देते हैं, जिसने संसार भर को बिना नेत्रों का (अंधा) कर दिया! इस प्रकार विलाप करते रात बीत गई। प्रातःकाल सब बड़े-बड़े ज्ञानी मुनि आए॥4॥

दोहा :

तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास।
सोक नेवारेउ सबहि कर निज बिग्यान प्रकास॥156॥

तब वशिष्ठ मुनि ने समय के अनुकूल अनेक इतिहास कहकर अपने विज्ञान के प्रकाश से सबका शोक दूर किया॥156॥

चौपाई :

तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाषा॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू॥1॥

वशिष्ठजी ने नाव में तेल भरवाकर राजा के शरीर को उसमें रखवा दिया। फिर दूतों को बुलवाकर उनसे ऐसा कहा- तुम लोग जल्दी दौड़कर भरत के पास जाओ। राजा की मृत्यु का समाचार कहीं किसी से न कहना॥1॥

एतनेइ कहेहु भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयउ दोउ भाई॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए॥2॥

जाकर भरत से इतना ही कहना कि दोनों भाइयों को गुरुजी ने बुलवा भेजा है। मुनि की आज्ञा सुनकर धावन (दूत) दौड़े। वे अपने वेग से उत्तम घोड़ों को भी लजाते हुए चले॥2॥

अनरथु अवध अरंभेउ जब तैं। कुसगुन होहिं भरत कहूँ तब तैं॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कल्पना॥3॥

जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगे। वे रात को भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर (उन स्वप्नों के कारण) करोड़ों (अनेकों) तरह की बुरी-बुरी कल्पनाएँ किया करते थे॥3॥

बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना॥
मागहिं हृदयँ महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई॥4॥

(अनिष्टशान्ति के लिए) वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे। महादेवजी को हृदय में मनाकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाइयों का कुशल-क्षेम माँगते थे॥4॥

दोहा :

एहि बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन श्रवन सुनि चले गनेसु मनाई॥157॥

भरतजी इस प्रकार मन में चिंता कर रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा कानों से सुनते ही वे गणेशजी को मनाकर चल पड़े।॥157॥

चौपाई :

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके॥

हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाऊँ उड़ाई॥1॥

हवा के समान वेग वाले घोड़ों को हाँकते हुए वे विकट नदी, पहाड़ तथा जंगलों को लाँघते हुए चले। उनके हृदय में बड़ा सोच था, कुछ सुहाता न था। मन में ऐसा सोचते थे कि उड़कर पहुँच जाऊँ॥1॥

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगर निअराई॥

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा॥2॥

एक-एक निमेष वर्ष के समान बीत रहा था। इस प्रकार भरतजी नगर के निकट पहुँचे। नगर में प्रवेश करते समय अपशकुन होने लगे। कौए बुरी जगह बैठकर बुरी तरह से काँव-काँव कर रहे हैं॥2॥

खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला॥

श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा॥3॥

गदहे और सियार विपरीत बोल रहे हैं। यह सुन-सुनकर भरत के मन में बड़ी पीड़ा हो रही है। तालाब, नदी, वन, बगीचे सब शोभाहीन हो रहे हैं। नगर बहुत ही भयानक लग रहा है॥3॥

खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए॥

नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहुँ सबन्हि सब संपति हारी॥4॥

श्री रामजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सताए हुए पक्षी-पशु, घोड़े-हाथी (ऐसे दुःखी हो रहे हैं कि) देखे नहीं जाते। नगर के स्त्री-पुरुष अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। मानो सब अपनी सारी सम्पत्ति हार बैठे हों॥4॥

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गवँहि जोहारहिं जाहिं।

भरत कुसल पूँछि न सकहिं भय बिषाद मन माहिं॥158॥

नगर के लोग मिलते हैं, पर कुछ कहते नहीं, गौं से (चुपके से) जोहार (वंदना) करके चले जाते हैं। भरतजी भी किसी से कुशल नहीं पूछ सकते, क्योंकि उनके मन में भय और विषाद छा रहा है॥

158॥

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥

आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि॥1॥

बाजार और रास्ते देखे नहीं जाते। मानो नगर में दसों दिशाओं में दावाग्नि लगी है! पुत्र को आते सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकेयी (बड़ी) हर्षित हुई॥1॥

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेंटि भवन लेइ आई॥

भरत दुखित परिवारु निहारा॥ मानहुँ तुहिन बनज बनू मारा॥2॥

वह आरती सजाकर आनंद में भरकर उठ दौड़ी और दरवाजे पर ही मिलकर भरत-शत्रुघ्न को महल में ले आई। भरत ने सारे परिवार को दुःखी देखा। मानो कमलों के वन को पाला मार गया हो॥2॥

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती॥

सुतिह ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें॥3॥

एक कैकेयी ही इस तरह हर्षित दिखती है मानो भीलनी जंगल में आग लगाकर आनंद में भर रही हो। पुत्र को सोच वश और मन मारे (बहुत उदास) देखकर वह पूछने लगी- हमारे नैहर में कुशल तो है?॥3॥

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई॥

कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भाता॥4॥

भरतजी ने सब कुशल कह सुनाई। फिर अपने कुल की कुशल-क्षेम पूछी। (भरतजी ने कहा-) कहो, पिताजी कहाँ हैं? मेरी सब माताएँ कहाँ हैं? सीताजी और मेरे प्यारे भाई राम-लक्ष्मण कहाँ हैं?॥4॥

दोहा :

सुनि सुत बचन सनेहमय कपट नीर भरि नैन।

भरत श्रवन मन शूल सम पापिनि बोली बैन॥159॥

पुत्र के स्नेहमय वचन सुनकर नेत्रों में कपट का जल भरकर पापिनी कैकेयी भरत के कानों में और मन में शूल के समान चुभने वाले वचन बोली-॥159॥

चौपाई :

तात बात में सकल सँवारी। भै मंथरा सहाय बिचारी॥

कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ॥1॥

हे तात! मैंने सारी बात बना ली थी। बेचारी मंथरा सहायक हुई। पर विधाता ने बीच में जरा सा काम बिगाड़ दिया। वह यह कि राजा देवलोक को पधार गए॥1॥

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा॥

तात तात हा तात पुकारी। परे भूमितल ब्याकुल भारी॥2॥

भरत यह सुनते ही विषाद के मारे विवश (बेहाल) हो गए। मानो सिंह की गर्जना सुनकर हाथी सहम गया हो। वे 'तात! तात! हा तात!' पुकारते हुए अत्यन्त व्याकुल होकर जमीन पर गिर

पड़े॥2॥

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौँपेहु मोही॥

बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी॥3॥

(और विलाप करने लगे कि) हे तात! मैं आपको (स्वर्ग के लिए) चलते समय देख भी न सका। (हाय!) आप मुझे श्री रामजी को सौँप भी नहीं गए! फिर धीरज धरकर वे सम्हलकर उठे और बोले- माता! पिता के मरने का कारण तो बताओ॥3॥

सुनि सुत बचन कहति कैकेई। मरमु पाँछि जनु माहुर देई॥

आदिहु तें सब आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी॥4॥

पुत्र का वचन सुनकर कैकेयी कहने लगी। मानो मर्म स्थान को पाछकर (चाकू से चीरकर) उसमें जहर भर रही हो। कुटिल और कठोर कैकेयी ने अपनी सब करनी शुरू से (आखिर तक बड़े) प्रसन्न मन से सुना दी॥4॥

दोहा :

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।

हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु॥160॥

श्री रामचन्द्रजी का वन जाना सुनकर भरतजी को पिता का मरण भूल गया और हृदय में इस सारे अनर्थ का कारण अपने को ही जानकर वे मौन होकर स्तम्भित रह गए (अर्थात् उनकी बोली बंद हो गई और वे सन्न रह गए)॥160॥

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति॥

तात राउ नहिं सोचै जोगू। बिढइ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू॥1॥

पुत्र को व्याकुल देखकर कैकेयी समझाने लगी। मानो जले पर नमक लगा रही हो। (वह बोली-) हे तात! राजा सोच करने योग्य नहीं हैं। उन्होंने पुण्य और यश कमाकर उसका पर्याप्त भोग किया॥1॥

जीवत सकल जनम फल पाए। अंत अमरपति सदन सिधाए॥

अस अनुमानि सोच परिहरहू। सहित समाज राज पुर करहू॥2॥

जीवनकाल में ही उन्होंने जन्म लेने के सम्पूर्ण फल पा लिए और अंत में वे इन्द्रलोक को चले गए। ऐसा विचारकर सोच छोड़ दो और समाज सहित नगर का राज्य करो॥2॥

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकैं छत जनु लाग अँगारू॥

धीरज धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहि भाँति कुल नासा॥3॥

राजकुमार भरतजी यह सुनकर बहुत ही सहम गए। मानो पके घाव पर अँगार छू गया हो।

उन्होंने धीरज धरकर बड़ी लम्बी साँस लेते हुए कहा- पापिनी! तूने सभी तरह से कुल का नाश कर दिया॥3॥

जों पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥

पेड़ काटि तैं पालठ सींचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥4॥

हाय! यदि तेरी ऐसी ही अत्यन्त बुरी रुचि (दुष्ट इच्छा) थी, तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला? तूने पेड़ को काटकर पत्ते को सींचा है और मछली के जीने के लिए पानी को उलीच डाला! (अर्थात् मेरा हित करने जाकर उलटा तूने मेरा अहित कर डाला)॥4॥

दोहा :

हंसबंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाइ।

जननी तूँ जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ॥161॥

मुझे सूर्यवंश (सा वंश), दशरथजी (सरीखे) पिता और राम-लक्ष्मण से भाई मिले। पर हे जननी! मुझे जन्म देने वाली माता तू हुई! (क्या किया जाए!) विधाता से कुछ भी वश नहीं चलता॥

161॥

चौपाई :

जब मैं कुमति कुमत जियँ ठयऊ। खंड खंड होइ हृदय न गयऊ॥

बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥1॥

अरी कुमति! जब तूने हृदय में यह बुरा विचार (निश्चय) ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकड़े-टुकड़े (क्यों) न हो गए? वरदान माँगते समय तेरे मन में कुछ भी पीड़ा नहीं हुई? तेरी जीभ गल नहीं गई? तेरे मुँह में कीड़े नहीं पड़ गए?॥1॥

भूपँ प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥

बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥2॥

राजा ने तेरा विश्वास कैसे कर लिया? (जान पड़ता है,) विधाता ने मरने के समय उनकी बुद्धि हर ली थी। स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह सम्पूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है॥2॥

सरल सुशील धरम रत राऊ। सो किमि जानै तीय सुभाऊ॥

अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाहीं॥3॥

फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्मपरायण थे। वे भला, स्त्री स्वभाव को कैसे जानते? अरे, जगत के जीव-जन्तुओं में ऐसा कौन है, जिसे श्री रघुनाथजी प्राणों के समान प्यारे नहीं हैं॥3॥

भे अति अहित रामु तेउ तोहीं। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥4॥

वे श्री रामजी भी तुझे अहित हो गए (वैरी लगे)! तू कौन है? मुझे सच-सच कह! तू जो है, सो है, अब मुँह में स्याही पोतकर (मुँह काला करके) उठकर मेरी आँखों की ओट में जा बैठ॥4॥

दोहा :

राम बिरोधी हृदय तें प्रगट कीन्ह बिधि मोहि।

मो समान को पातकी बादि कहउँ कछु तोहि॥162॥

विधाता ने मुझे श्री रामजी से विरोध करने वाले (तेरे) हृदय से उत्पन्न किया (अथवा विधाता ने मुझे हृदय से राम का विरोधी जाहिर कर दिया।) मेरे बराबर पापी दूसरा कौन है? मैं व्यर्थ ही तुझे कुछ कहता हूँ॥162॥

चौपाई :

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई॥

तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई॥1॥

माता की कुटिलता सुनकर शत्रुघ्नजी के सब अंग क्रोध से जल रहे हैं, पर कुछ वश नहीं चलता। उसी समय भाँति-भाँति के कपड़ों और गहनों से सजकर कुबरी (मंथरा) वहाँ आई॥1॥

लखि रिस भरेठ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई॥

हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भर महि करत पुकारा॥2॥

उसे (सजी) देखकर लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्नजी क्रोध में भर गए। मानो जलती हुई आग को घी की आहुति मिल गई हो। उन्होंने जोर से तककर कूबड़ पर एक लात जमा दी। वह चिल्लाती हुई मुँह के बल जमीन पर गिर पड़ी॥2॥

कूबर टूटेठ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू॥

आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा॥3॥

उसका कूबड़ टूट गया, कपाल फूट गया, दाँत टूट गए और मुँह से खून बहने लगा। (वह कराहती हुई बोली-) हाय दैव! मैंने क्या बिगाड़ा? जो भला करते बुरा फल पाया॥3॥

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥

भरत दयानिधि दीन्हि छुड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥4॥

उसकी यह बात सुनकर और उसे नख से शिखा तक दुष्ट जानकर शत्रुघ्नजी झोंटा पकड़-पकड़कर उसे घसीटने लगे। तब दयानिधि भरतजी ने उसको छुड़ा दिया और दोनों भाई (तुरंत) कौसल्याजी के पास गए॥4॥

दोहा :

मलिन बसन बिबरन बिकल कृस शरीर दुख भार।

कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार॥163॥

कौसल्याजी मैले वस्त्र पहने हैं, चेहरे का रंग बदला हुआ है, व्याकुल हो रही हैं, दुःख के बोझ से शरीर सूख गया है। ऐसी दिख रही हैं मानो सोने की सुंदर कल्पलता को वन में पाला मार गया हो॥163॥

चौपाई :

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुचित अवनि परी झई आई॥

देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी॥1॥

भरत को देखते ही माता कौसल्याजी उठ दौड़ीं। पर चक्कर आ जाने से मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यह देखते ही भरतजी बड़े व्याकुल हो गए और शरीर की सुध भुलाकर चरणों में गिर पड़े॥1॥

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई॥

कैकड़ कत जनमी जग माझा। जौँ जनमि त भइ काहे न बाँझा॥2॥

(फिर बोले-) माता! पिताजी कहाँ हैं? उन्हें दिखा दें। सीताजी तथा मेरे दोनों भाई श्री राम-लक्ष्मण कहाँ हैं? (उन्हें दिखा दें।) कैकेयी जगत में क्यों जनमी! और यदि जनमी ही तो फिर बाँझ क्यों न हुई?-॥2॥

कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही॥

को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातुजेहि लागी॥3॥

जिसने कुल के कलंक, अपयश के भाँडे और प्रियजनों के द्रोही मुझ जैसे पुत्र को उत्पन्न किया। तीनों लोकों में मेरे समान अभागा कौन है? जिसके कारण हे माता! तेरी यह दशा हुई!॥3॥

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मैं केवल सब अनरथ हेतू॥

धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूषन भागी॥4॥

पिताजी स्वर्ग में हैं और श्री रामजी वन में हैं। केतु के समान केवल मैं ही इन सब अनर्थों का कारण हूँ। मुझे धिक्कार है! मैं बाँस के वन में आग उत्पन्न हुआ और कठिन दाह, दुःख और दोषों का भागी बना॥4॥

दोहा :

मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी सँभारि।

लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि॥164॥

भरतजी के कोमल वचन सुनकर माता कौसल्याजी फिर सँभलकर उठीं। उन्होंने भरत को

उठाकर छाती से लगा लिया और नेत्रों से आँसू बहाने लगीं॥164॥

चौपाई :

सरल सुभाय मायँ हियँ लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए॥

भँटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई॥1॥

सरल स्वभाव वाली माता ने बड़े प्रेम से भरतजी को छाती से लगा लिया, मानो श्री रामजी ही लौटकर आ गए हों। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई शत्रुघ्न को हृदय से लगाया। शोक और स्नेह हृदय में समाता नहीं है॥1॥

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई॥

माताँ भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछिं मृदु बचन उचारे॥2॥

कौसल्याजी का स्वभाव देखकर सब कोई कह रहे हैं-श्री राम की माता का ऐसा स्वभाव क्यों न हो। माता ने भरतजी को गोद में बैठा लिया और उनके आँसू पोंछकर कोमल वचन बोलीं-॥2॥

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥

जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥3॥

हे वत्स! मैं बलैया लेती हूँ। तुम अब भी धीरज धरो। बुरा समय जानकर शोक त्याग दो। काल और कर्म की गति अमित जानकर हृदय में हानि और ग्लानि मत मानो॥3॥

काहुहि दोसु देहु जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता॥

जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा॥4॥

हे तात! किसी को दोष मत दो। विधाता मेरे लिए सब प्रकार से उलटा हो गया है, जो इतने दुःख पर भी मुझे जिला रहा है। अब भी कौन जानता है, उसे क्या भा रहा है?॥4॥

दोहा :

पितु आयस भूषण बसन तात तजे रघुबीर।

बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥165॥

हे तात! पिता की आज्ञा से श्री रघुवीर ने भूषण-वस्त्र त्याग दिए और वल्कल वस्त्र पहन लिए। उनके हृदय में न कुछ विषाद था, न हर्ष!॥165॥

चौपाई :

मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥

चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥1॥

उनका मुख प्रसन्न था, मन में न आसक्ति थी, न रोष (द्वेष)। सबका सब तरह से संतोष कराकर वे वन को चले। यह सुनकर सीता भी उनके साथ लग गईं। श्रीराम के चरणों की अनुरागिणी वे

किसी तरह न रहीं॥1॥

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई॥2॥

सुनते ही लक्ष्मण भी साथ ही उठ चले। श्री रघुनाथ ने उन्हें रोकने के बहुत यत्न किए, पर वे न रहे। तब श्री रघुनाथजी सबको सिर नवाकर सीता और छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लेकर चले गए॥2॥

रामु लखनु सिय बनहि सिधाए। गइँ न संग न प्रान पठाए॥
यहु सबु भा इन्ह आँखिन्ह आगें। तउ न तजा तनु जीव अभागें॥3॥

श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन को चले गए। मैं न तो साथ ही गई और न मैंने अपने प्राण ही उनके साथ भेजे। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ, तो भी अभागे जीव ने शरीर नहीं छोड़ा॥3॥

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत में महतारी॥
जिऐ मरै भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना॥4॥

अपने स्नेह की ओर देखकर मुझे लाज नहीं आती; राम सरीखे पुत्र की मैं माता! जीना और मरना तो राजा ने खूब जाना। मेरा हृदय तो सैकड़ों वज्रों के समान कठोर है॥4॥

दोहा :

कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।

ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुँ सोक नेवासु ॥166॥

कौसल्याजी के वचनों को सुनकर भरत सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा।
राजमहल मानो शोक का निवास बन गया॥166॥

चौपाई :

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्याँ लिए हृदयँ लगाई॥

भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुनाए॥1॥

भरत, शत्रुघ्न दोनों भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्याजी ने उनको हृदय से लगा लिया। अनेकों प्रकार से भरतजी को समझाया और बहुत सी विवेकभरी बातें उन्हें कहकर सुनाई॥1॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाई। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई॥

छल बिहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥2॥

भरतजी ने भी सब माताओं को पुराण और वेदों की सुंदर कथाएँ कहकर समझाया। दोनों हाथ

जोड़कर भरतजी छलरहित, पवित्र और सीधी सुंदर वाणी बोले-॥2॥

जे अघ मातु पिता सुत मारें। गाड़ गोठ महिसुर पुर जारें॥

जे अघ तिय बालक बध कीन्हें। मीत महीपति माहुर दीन्हें॥3॥

जो पाप माता-पिता और पुत्र के मारने से होते हैं और जो गोशाला और ब्राह्मणों के नगर जलाने से होते हैं, जो पाप स्त्री और बालक की हत्या करने से होते हैं और जो मित्र और राजा को जहर देने से होते हैं-॥3॥

जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥

ते पातक मोहि होहुँ बिधाता। जौं यहु होइ मोर मत माता॥4॥

कर्म, वचन और मन से होने वाले जितने पातक एवं उपपातक (बड़े-छोटे पाप) हैं, जिनको कवि लोग कहते हैं, हे विधाता! यदि इस काम में मेरा मत हो, तो हे माता! वे सब पाप मुझे लगेँ॥4॥

दोहा :

जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर।

तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर॥167॥

जो लोग श्री हरि और श्री शंकरजी के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं, हे माता! यदि इसमें मेरा मत हो तो विधाता मुझे उनकी गति दे॥167॥

चौपाई :

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेहीं। पिसुन पराय पाप कहि देहीं॥

कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी॥1॥

जो लोग वेदों को बेचते हैं, धर्म को दुह लेते हैं, चुगलखोर हैं, दूसरों के पापों को कह देते हैं, जो कपटी, कुटिल, कलहप्रिय और क्रोधी हैं तथा जो वेदों की निंदा करने वाले और विश्वभर के विरोधी हैं,॥1॥

लोभी लंपट लोलुपचारा। जे ताकहिं परधनु परदारा॥

पावों में तिन्ह कै गति घोरा। जौं जननी यहु संमत मोरा॥2॥

जो लोभी, लम्पट और लालचियों का आचरण करने वाले हैं, जो पराए धन और पराई स्त्री की ताक में रहते हैं, हे जननी! यदि इस काम में मेरी सम्मति हो तो मैं उनकी भयानक गति को पाऊँ॥2॥

जे नहिं साधुसंग अनुरागे। परमारथ पथ बिमुख अभागे॥

जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई॥3॥

जिनका सत्संग में प्रेम नहीं है, जो अभागे परमार्थ के मार्ग से विमुख हैं, जो मनुष्य शरीर पाकर

श्री हरि का भजन नहीं करते, जिनको हरि-हर (भगवान विष्णु और शंकरजी) का सुयश नहीं सुहाता,॥3॥

तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं। बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं॥

तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौं यहु जानौं भेऊ॥4॥

जो वेद मार्ग को छोड़कर वाम (वेद प्रतिकूल) मार्ग पर चलते हैं, जो ठग हैं और वेष बनाकर जगत को छलते हैं, हे माता! यदि मैं इस भेद को जानता भी होऊँ तो शंकरजी मुझे उन लोगों की गति दें॥4॥

दोहा :

मातु भरत के बचन सुनि साँचे सरल सुभायँ।

कहति राम प्रिय तात तुम्ह सदा बचन मन कायँ॥168॥

माता कौसल्याजी भरतजी के स्वाभाविक ही सच्चे और सरल वचनों को सुनकर कहने लगीं- हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीर से सदा ही श्री रामचन्द्र के प्यारे हो॥168॥

चौपाई :

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥

बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥1॥

श्री राम तुम्हारे प्राणों से भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी श्री रघुनाथ को प्राणों से भी अधिक प्यारे हो। चन्द्रमा चाहे विष चुआने लगे और पाला आग बरसाने लगे, जलचर जीव जल से विरक्त हो जाए,॥1॥

भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥

मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥2॥

और ज्ञान हो जाने पर भी चाहे मोह न मिटे, पर तुम श्री रामचन्द्र के प्रतिकूल कभी नहीं हो सकते। इसमें तुम्हारी सम्मति है, जगत में जो कोई ऐसा कहते हैं, वे स्वप्न में भी सुख और शुभ गति नहीं पावेंगे॥2॥

अस कहि मातु भरतु हिँएँ लाए। थन पय स्रवहिँ नयन जल छाए॥

करत बिलाप बहुत एहि भाँती। बैठेहिँ बीति गई सब राती॥3॥

ऐसा कहकर माता कौसल्या ने भरतजी को हृदय से लगा लिया। उनके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया। इस प्रकार बहुत विलाप करते हुए सारी रात बैठे ही बैठे बीत गई॥3॥

बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥

मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे॥4॥

तब वामदेवजी और वशिष्ठजी आए। उन्होंने सब मंत्रियों तथा महाजनों को बुलाया। फिर मुनि वशिष्ठजी ने परमार्थ के सुंदर समयानुकूल वचन कहकर बहुत प्रकार से भरतजी को उपदेश दिया॥4॥

दोहा :

तात हृदयँ धीरजु धरहु करहु जो अवसर आजु।

उठे भरत गुर बचन सुनि करन कहेउ सबु साजु॥169॥

(वशिष्ठजी ने कहा-) हे तात! हृदय में धीरज धरो और आज जिस कार्य के करने का अवसर है, उसे करो। गुरुजी के वचन सुनकर भरतजी उठे और उन्होंने सब तैयारी करने के लिए कहा॥ 169॥

चौपाई :

नृपतनु बेद बिदित अन्हवावा। परम बिचित्र बिमानु बनावा॥

गाहि पदभरत मातु सब राखी। रहीं रानि दरसन अभिलाषी॥1॥

वेदों में बताई हुई विधि से राजा की देह को स्नान कराया गया और परम विचित्र विमान बनाया गया। भरतजी ने सब माताओं को चरण पकड़कर रखा (अर्थात् प्रार्थना करके उनको सती होने से रोक लिया)। वे रानियाँ भी (श्री राम के) दर्शन की अभिलाषा से रह गईं॥1॥

चंदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगंध सुहाए॥

सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई॥2॥

चंदन और अगर के तथा और भी अनेकों प्रकार के अपार (कपूर, गुग्गुलु, केसर आदि) सुगंध द्रव्यों के बहुत से बोझ आए। सरयूजी के तट पर सुंदर चिता रचकर बनाई गई, (जो ऐसी मालूम होती थी) मानो स्वर्ग की सुंदर सीढ़ी हो॥2॥

एहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजलि दीन्ही॥

सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना॥3॥

इस प्रकार सब दाह क्रिया की गई और सबने विधिपूर्वक स्नान करके तिलांजलि दी। फिर वेद, स्मृति और पुराण सबका मत निश्चय करके उसके अनुसार भरतजी ने पिता का दशगात्र विधान (दस दिनों के कृत्य) किया॥3॥

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा॥

भए बिसुद्ध दिए सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना॥4॥

मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी ने जहाँ जैसी आज्ञा दी, वहाँ भरतजी ने सब वैसा ही हजारों प्रकार से किया।

शुद्ध हो जाने पर (विधिपूर्वक) सब दान दिए। गायें तथा घोड़े, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियाँ,॥4॥

दोहा :

सिंघासन भूषण बसन अन्न धरनि धन धाम।

दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम॥170॥

सिंहासन, गहने, कपड़े, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजी ने दिए, भूदेव ब्राह्मण दान पाकर परिपूर्णकाम हो गए (अर्थात् उनकी सारी मनोकामनाएँ अच्छी तरह से पूरी हो गईं)॥170॥

चौपाई :

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी॥

सुदिनु सोधि मुनिबर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए॥1॥

पिताजी के लिए भरतजी ने जैसी करनी की वह लाखों मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती। तब शुभ दिन शोधकर श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी आए और उन्होंने मंत्रियों तथा सब महाजनों को बुलवाया॥1॥

बैठे राजसभाँ सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥

भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥2॥

सब लोग राजसभा में जाकर बैठ गए। तब मुनि ने भरतजी तथा शत्रुघ्नजी दोनों भाइयों को बुलवा भेजा। भरतजी को वशिष्ठजी ने अपने पास बैठा लिया और नीति तथा धर्म से भरे हुए वचन कहे॥2॥

प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कैकड़ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥

भूप धरमुब्रतु सत्य सराहा। जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा॥3॥

पहले तो कैकेयी ने जैसी कुटिल करनी की थी, श्रेष्ठ मुनि ने वह सारी कथा कही। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की सराहना की, जिन्होंने शरीर त्याग कर प्रेम को निबाहा॥3॥

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥

बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥4॥

श्री रामचन्द्रजी के गुण, शील और स्वभाव का वर्णन करते-करते तो मुनिराज के नेत्रों में जल भर आया और वे शरीर से पुलकित हो गए। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी के प्रेम की बड़ाई करते हुए ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह में मग्न हो गए॥4॥

दोहा :

सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।

हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥171॥

मुनिनाथ ने बिलखकर (दुःखी होकर) कहा- हे भरत! सुनो, भावी (होनहार) बड़ी बलवान है। हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश, ये सब विधाता के हाथ हैं॥171॥

चौपाई :

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू॥

तात बिचारु करहु मन माहीं। सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥1॥

ऐसा विचार कर किसे दोष दिया जाए? और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाए? हे तात! मन में विचार करो। राजा दशरथ सोच करने के योग्य नहीं हैं॥1॥

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥2॥

सोच उस ब्राह्मण का करना चाहिए, जो वेद नहीं जानता और जो अपना धर्म छोड़कर विषय भोग में ही लीन रहता है। उस राजा का सोच करना चाहिए, जो नीति नहीं जानता और जिसको प्रजा प्राणों के समान प्यारी नहीं है॥2॥

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥

सोचिअ सूद्रु बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥3॥

उस वैश्य का सोच करना चाहिए, जो धनवान होकर भी कंजूस है और जो अतिथि सत्कार तथा शिवजी की भक्ति करने में कुशल नहीं है। उस शूद्र का सोच करना चाहिए, जो ब्राह्मणों का अपमान करने वाला, बहुत बोलने वाला, मान-बड़ाई चाहने वाला और ज्ञान का घमंड रखने वाला है॥3॥

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥

सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहिं गुरु आयसु अनुसरई॥4॥

पुनः उस स्त्री का सोच करना चाहिए जो पति को छलने वाली, कुटिल, कलहप्रिय और स्वेच्छा चारिणी है। उस ब्रह्मचारी का सोच करना चाहिए, जो अपने ब्रह्मचर्य व्रत को छोड़ देता है और गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता॥4॥

दोहा :

सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।

सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥172॥

उस गृहस्थ का सोच करना चाहिए, जो मोहवश कर्म मार्ग का त्याग कर देता है, उस संन्यासी का सोच करना चाहिए, जो दुनिया के प्रपंच में फँसा हुआ और ज्ञान-वैराग्य से हीन है॥172॥

चौपाई :

बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥1॥

वानप्रस्थ वही सोच करने योग्य है, जिसको तपस्या छोड़कर भोग अच्छे लगते हैं। सोच उसका करना चाहिए जो चुगलखोर है, बिना ही कारण क्रोध करने वाला है तथा माता, पिता, गुरु एवं भाई-बंधुओं के साथ विरोध रखने वाला है॥1॥

सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥

सोचनीय सबहीं बिधि सोई। जो न छाडि छलु हरि जन होई॥2॥

सब प्रकार से उसका सोच करना चाहिए, जो दूसरों का अनिष्ट करता है, अपने ही शरीर का पोषण करता है और बड़ा भारी निर्दयी है और वह तो सभी प्रकार से सोच करने योग्य है, जो छल छोड़कर हरि का भक्त नहीं होता॥2॥

सोचनीय नहीं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥

भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥3॥

कोसलराज दशरथजी सोच करने योग्य नहीं हैं, जिनका प्रभाव चौदहों लोकों में प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसा राजा तो न हुआ, न है और न अब होने का ही है॥3॥

बिधि हरि हरु सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥4॥

हब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र और दिक्पाल सभी दशरथजी के गुणों की कथाएँ कहा करते हैं॥4॥

दोहा :

कहहु तात केहि भाँति कोउ करिहि बडाई तासु।

राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥173॥

हे तात! कहो, उनकी बड़ाई कोई किस प्रकार करेगा, जिनके श्री राम, लक्ष्मण, तुम और शत्रुघ्न-सरीखे पवित्र पुत्र हैं?॥173॥

चौपाई :

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥

यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू॥1॥

राजा सब प्रकार से बड़भागी थे। उनके लिए विषाद करना व्यर्थ है। यह सुन और समझकर सोच त्याग दो और राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर तदनुसार करो॥1॥

रायँ राजपदु तुम्ह कहूँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा॥

तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी॥2॥

राजा ने राज पद तुमको दिया है। पिता का वचन तुम्हें सत्य करना चाहिए, जिन्होंने वचन के लिए ही श्री रामचन्द्रजी को त्याग दिया और रामविरह की अग्नि में अपने शरीर की आहुति दे दी॥2॥

नृपहि बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई॥3॥

राजा को वचन प्रिय थे, प्राण प्रिय नहीं थे, इसलिए हे तात! पिता के वचनों को प्रमाण (सत्य) करो! राजा की आज्ञा सिर चढ़ाकर पालन करो, इसमें तुम्हारी सब तरह भलाई है॥3॥

परसुराम पितु अग्या राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥

तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥4॥

परशुरामजी ने पिता की आज्ञा रखी और माता को मार डाला, सब लोक इस बात के साक्षी हैं। राजा ययाति के पुत्र ने पिता को अपनी जवानी दे दी। पिता की आज्ञा पालन करने से उन्हें पाप और अपयश नहीं हुआ॥4॥

दोहा :

अनुचित उचित बिचारु तजि ते पालहिं पितु बैन।

ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन॥174॥

जो अनुचित और उचित का विचार छोड़कर पिता के वचनों का पालन करते हैं, वे (यहाँ) सुख और सुयश के पात्र होकर अंत में इन्द्रपुरी (स्वर्ग) में निवास करते हैं॥174॥

चौपाई :

अवसि नरेस बचन फुर करहु। पालहु प्रजा सोकु परिहरहु॥

सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहँ सुकृतु सुजसु नहिं दोषू॥1॥

राजा का वचन अवश्य सत्य करो। शोक त्याग दो और प्रजा का पालन करो। ऐसा करने से स्वर्ग में राजा संतोष पावेंगे और तुम को पुण्य और सुंदर यश मिलेगा, दोष नहीं लगेगा॥1॥

बेद बिदित संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥

करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचन हित जानी॥2॥

यह वेद में प्रसिद्ध है और (स्मृति-पुराणादि) सभी शास्त्रों के द्वारा सम्मत है कि पिता जिसको दे वही राजतिलक पाता है, इसलिए तुम राज्य करो, गलानि का त्याग कर दो। मेरे वचन को हित समझकर मानो॥2॥

सुनि सुखु लहब राम बैदेहीं। अनुचित कहब न पंडित केहीं॥

कौसल्यादि सकल महतारीं। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारीं॥3॥

इस बात को सुनकर श्री रामचन्द्रजी और जानकीजी सुख पावेंगे और कोई पंडित इसे अनुचित नहीं कहेगा। कौसल्याजी आदि तुम्हारी सब माताएँ भी प्रजा के सुख से सुखी होंगी॥

परम तुम्हारे राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥

सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥4॥

जो तुम्हारे और श्री रामचन्द्रजी के श्रेष्ठ संबंध को जान लेगा, वह सभी प्रकार से तुमसे भला मानेगा। श्री रामचन्द्रजी के लौट आने पर राज्य उन्हें सौंप देना और सुंदर स्नेह से उनकी सेवा करना॥4॥

दोहा :

कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।

रघुपति आएँ उचित जस तस तब करब बहोरि॥175॥

मंत्री हाथ जोड़कर कह रहे हैं- गुरुजी की आज्ञा का अवश्य ही पालन कीजिए। श्री रघुनाथजी के लौट आने पर जैसा उचित हो, तब फिर वैसा ही कीजिएगा॥175॥

चौपाई :

कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥

सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥1॥

कौसल्याजी भी धीरज धरकर कह रही हैं- हे पुत्र! गुरुजी की आज्ञा पथ्य रूप है। उसका आदर करना चाहिए और हित मानकर उसका पालन करना चाहिए। काल की गति को जानकर विषाद का त्याग कर देना चाहिए॥1॥

बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥

परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हहीं सुत सब कहँ अवलंबा॥2॥

श्री रघुनाथजी वन में हैं, महाराज स्वर्ग का राज्य करने चले गए और हे तात! तुम इस प्रकार कातर हो रहे हो। हे पुत्र! कुटुम्ब, प्रजा, मंत्री और सब माताओं के, सबके एक तुम ही सहारे हो॥

2॥

लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥

सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥3॥

विधाता को प्रतिकूल और काल को कठोर देखकर धीरज धरो, माता तुम्हारी बलिहारी जाती है। गुरु की आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसी के अनुसार कार्य करो और प्रजा का पालन कर कुटुम्बियों का दुःख हरो॥3॥

गुरु के बचन सचिव अभिनंदनु। सुने भरत हिय हित जनु चंदनु॥

सुनी बहोरि मातु मृदु बानी। सील स्नेह सरल रस सानी॥4॥

भरतजी ने गुरु के वचनों और मंत्रियों के अभिनंदन (अनुमोदन) को सुना, जो उनके हृदय के लिए मानो चंदन के समान (शीतल) थे। फिर उन्होंने शील, स्नेह और सरलता के रस में सनी हुई माता कौसल्या की कोमल वाणी सुनी॥4॥

छंद :

सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरतु व्याकुल भए।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीवँ सहज स्नेह की॥

सरलता के रस में सनी हुई माता की वाणी सुनकर भरतजी व्याकुल हो गए। उनके नेत्र कमल जल (आँसू) बहाकर हृदय के विरह रूपी नवीन अंकुर को सींचने लगे। (नेत्रों के आँसुओं ने उनके वियोग-दुःख को बहुत ही बढ़ाकर उन्हें अत्यन्त व्याकुल कर दिया।) उनकी वह दशा देखकर उस समय सबको अपने शरीर की सुध भूल गई। तुलसीदासजी कहते हैं- स्वाभाविक प्रेम की सीमा श्री भरतजी की सब लोग आदरपूर्वक सराहना करने लगे।

सोरठा :

भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचन अमिअँ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥176॥

धैर्य की धुरी को धारण करने वाले भरतजी धीरज धरकर, कमल के समान हाथों को जोड़कर, वचनों को मानो अमृत में डुबाकर सबको उचित उत्तर देने लगे-॥176॥

मासपारायण, अठारहवाँ विश्राम

चौपाई :

मोहि उपदेसु दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥

मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहउँ कीन्हा॥1॥

गुरुजी ने मुझे सुंदर उपदेश दिया। (फिर) प्रजा, मंत्री आदि सभी को यही सम्मत है। माता ने भी उचित समझकर ही आज्ञा दी है और मैं भी अवश्य उसको सिर चढ़ाकर वैसा ही करना चाहता हूँ॥1॥

गुर पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी॥

उचित कि अनुचित किएँ बिचारु। धरमु जाइ सिर पातक भारु॥2॥

(क्योंकि) गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद् (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर करना (मानना) चाहिए। उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप का भार चढ़ता है॥2॥

तुम्हें तो देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समझत हउँ नीकें। तदपि होत परितोष न जी कें॥3॥

आप तो मुझे वही सरल शिक्षा दे रहे हैं, जिसके आचरण करने में मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भलीभाँति समझता हूँ, तथापि मेरे हृदय को संतोष नहीं होता॥3॥

अब तुम्हें बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू॥4॥

अब आप लोग मेरी विनती सुन लीजिए और मेरी योग्यता के अनुसार मुझे शिक्षा दीजिए। मैं उत्तर दे रहा हूँ, यह अपराध क्षमा कीजिए। साधु पुरुष दुःखी मनुष्य के दोष-गुणों को नहीं गिनते।

दोहा :

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥177॥

पिताजी स्वर्ग में हैं, श्री सीतारामजी वन में हैं और मुझे आप राज्य करने के लिए कह रहे हैं। इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम (होने की आशा रखते हैं)?॥177॥

चौपाई :

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमानि दीख मन माहीं। आन उपायँ मोर हित नाहीं॥1॥

मेरा कल्याण तो सीतापति श्री रामजी की चाकरी में है, सो उसे माता की कुटिलता ने छीन लिया। मैंने अपने मन में अनुमान करके देख लिया है कि दूसरे किसी उपाय से मेरा कल्याण नहीं है॥1॥

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें॥
बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मविचारू॥2॥

यह शोक का समुदाय राज्य लक्ष्मण, श्री रामचंद्रजी और सीताजी के चरणों को देखे बिना किस गिनती में है (इसका क्या मूल्य है)? जैसे कपड़ों के बिना गहनों का बोझ व्यर्थ है। वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है॥2॥

सरुज सरीर बादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा॥

जायँ जीव बिनु देह सुहाई। बादि मोर सबु बिनु रघुराई॥3॥

रोगी शरीर के लिए नाना प्रकार के भोग व्यर्थ हैं। श्री हरि की भक्ति के बिना जप और योग व्यर्थ हैं। जीव के बिना सुंदर देह व्यर्थ है, वैसे ही श्री रघुनाथजी के बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है॥3॥

जाऊँ राम पहिं आयसु देह। एकाहिं आँक मोर हित एहू॥

मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोठ सनेह जड़ता बस कहहू॥4॥

मुझे आज्ञा दीजिए, मैं श्री रामजी के पास जाऊँ! एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) मेरा हित इसी में है। और मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं, यह भी आप स्नेह की जड़ता (मोह) के वश होकर ही कह रहे हैं॥4॥

दोहा :

कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गतलाज।

तुम्ह चाहत सुखु मोहबस मोहि से अधम कै राज॥178॥

कैकेयी के पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज मुझ से अधम के राज्य से आप मोह के वश होकर ही सुख चाहते हैं॥178॥

चौपाई :

कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमशील नरनाहू॥

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥1॥

मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें, धर्मशील को ही राजा होना चाहिए। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही पृथ्वी पाताल में धँस जाएगी॥1॥

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लागि सीय राम बनबासू॥

रायँ राम कहूँ काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमरपुर कीन्हा॥2॥

मेरे समान पापों का घर कौन होगा, जिसके कारण सीताजी और श्री रामजी का वनवास हुआ? राजा ने श्री रामजी को वन दिया और उनके बिछुड़ते ही स्वयं स्वर्ग को गमन किया॥2॥

मैं सठु सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनउँ सचेतू॥

बिन रघुबीर बिलोकि अबासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥3॥

और मैं दुष्ट, जो अनर्थों का कारण हूँ, होश-हवास में बैठा सब बातें सुन रहा हूँ। श्री रघुनाथजी से रहित घर को देखकर और जगत् का उपहास सहकर भी ये प्राण बने हुए हैं॥3॥

राम पुनीत बिषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥

कहँ लागि कहीं हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहिं लही बड़ाई॥4॥

(इसका यही कारण है कि ये प्राण) श्री राम रूपी पवित्र विषय रस में आसक्त नहीं हैं। ये लालची भूमि और भोगों के ही भूखे हैं। मैं अपने हृदय की कठोरता कहाँ तक कहूँ? जिसने वज्र का भी तिरस्कार करके बड़ाई पाई है॥4॥

दोहा :

कारन तें कारजु कठिन होइ दोसु नहिं मोर।

कुलिस अस्थि तें उपल तें लोह कराल कठोर॥179॥

कारण से कार्य कठिन होता ही है, इसमें मेरा दोष नहीं। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा भयानक और कठोर होता है॥179॥

चौपाई :

कैकई भव तनु अनुरागे। पावँर प्रान अघाइ अभागे॥

जों प्रिय बिरहँ प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे॥1॥

कैकेयी से उत्पन्न देह में प्रेम करने वाले ये पामर प्राण भरपेट (पूरी तरह से) अभागे हैं। जब प्रिय के वियोग में भी मुझे प्राण प्रिय लग रहे हैं, तब अभी आगे मैं और भी बहुत कुछ देखूँ-सुनूँगा॥1॥

लखन राम सिय कहूँ बनू दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा॥

लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु संतापू॥2॥

लक्ष्मण, श्री रामजी और सीताजी को तो वन दिया, स्वर्ग भेजकर पति का कल्याण किया, स्वयं विधवापन और अपयश लिया, प्रजा को शोक और संताप दिया,॥2॥

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू॥

ऐहि तें मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम्ह टीका॥3॥

और मुझे सुख, सुंदर यश और उत्तम राज्य दिया! कैकेयी ने सभी का काम बना दिया! इससे अच्छा अब मेरे लिए और क्या होगा? उस पर भी आप लोग मुझे राजतिलक देने को कहते हैं!॥

3॥

कैकइ जठर जनमि जग माहीं। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाहीं॥

मोरि बात सब बिधिहिं बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई॥4॥

कैकेयी के पेट से जगत् में जन्म लेकर यह मेरे लिए कुछ भी अनुचित नहीं है। मेरी सब बात तो विधाता ने ही बना दी है। (फिर) उसमें प्रजा और पंच (आप लोग) क्यों सहायता कर रहे हैं?॥4॥

दोहा :

ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस तेहि पुनि बीछी मार।

तेहि पिआइअ बारुनी कहहु काह उपचार॥180॥

जिसे कुग्रह लगे हों (अथवा जो पिशाचग्रस्त हो), फिर जो वायुरोग से पीड़ित हो और उसी को फिर बिच्छू डंक मार दे, उसको यदि मदिरा पिलाई जाए, तो कहिए यह कैसा इलाज है!॥180॥

चौपाई :

कैकड़ सुअन जोगु जग जोई। चतुर बिरंचि दीन्ह मोहि सोई॥

दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि बादि बड़ाई॥1॥

कैकेयी के लड़के के लिए संसार में जो कुछ योग्य था, चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। पर 'दशरथजी का पुत्र' और 'राम का छोटा भाई' होने की बड़ाई मुझे विधाता ने व्यर्थ ही दी॥1॥

तुम्ह सब कहहु कढ़ावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥

उतरु देउँ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥2॥

आप सब लोग भी मुझे टीका कढ़ाने के लिए कह रहे हैं! राजा की आज्ञा सभी के लिए अच्छी है। मैं किस-किस को किस-किस प्रकार से उत्तर दूँ? जिसकी जैसी रुचि हो, आप लोग सुखपूर्वक वही कहें॥2॥

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई॥

मो बिनु को सचराचर माहीं। जेहि सिय रामु प्रानप्रिय नाहीं॥3॥

मेरी कुमाता कैकेयी समेत मुझे छोड़कर, कहिए और कौन कहेगा कि यह काम अच्छा किया गया? जड़-चेतन जगत् में मेरे सिवा और कौन है, जिसको श्री सीता-रामजी प्राणों के समान प्यारे न हों॥3॥

परम हानि सब कहँ बड़ लाहू। अदिनु मोर नहिं दूषन काहू॥

संसय शील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सब जो कछु कहहू॥4॥

जो परम हानि है, उसी में सबको बड़ा लाभ दिख रहा है। मेरा बुरा दिन है किसी का दोष नहीं। आप सब जो कुछ कहते हैं सो सब उचित ही है, क्योंकि आप लोग संशय, शील और प्रेम के वश हैं॥4॥

दोहा :

राम मातु सुठि सरलचित मो पर प्रेमु बिसेषि।

कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि॥181॥

श्री रामचंद्रजी की माता बहुत ही सरल हृदय हैं और मुझ पर उनका विशेष प्रेम है, इसलिए मेरी दीनता देखकर वे स्वाभाविक स्नेहवश ही ऐसा कह रही हैं॥181॥

चौपाई :

गुरु बिबेक सागर जगु जाना। जिन्हहि बिस्व कर बदर समाना॥

मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भएँ बिधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ॥1॥

गुरुजी ज्ञान के समुद्र हैं, इस बात को सारा जगत् जानता है, जिसके लिए विश्व हथेली पर रखे हुए बेर के समान है, वे भी मेरे लिए राजतिलक का साज सज रहे हैं। सत्य है, विधाता के विपरीत होने पर सब कोई विपरीत हो जाते हैं॥1॥

परिहरि रामु सीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥

सो मैं सुनब सहब सुखु मानी। अंतहुँ कीच तहाँ जहँ पानी॥2॥

श्री रामचंद्रजी और सीताजी को छोड़कर जगत् में कोई यह नहीं कहेगा कि इस अनर्थ में मेरी सम्मति नहीं है। मैं उसे सुखपूर्वक सुनूँगा और सहूँगा, क्योंकि जहाँ पानी होता है, वहाँ अन्त में कीचड़ होता ही है॥2॥

डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू॥

एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय रामु दुखारी॥3॥

मुझे इसका डर नहीं है कि जगत् मुझे बुरा कहेगा और न मुझे परलोक का ही सोच है। मेरे हृदय में तो बस, एक ही दुःसह दावानल धधक रहा है कि मेरे कारण श्री सीता-रामजी दुःखी हुए॥3॥

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा॥

मोर जनम रघुबर बन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी॥4॥

जीवन का उत्तम लाभ तो लक्ष्मण ने पाया, जिन्होंने सब कुछ तजकर श्री रामजी के चरणों में मन लगाया। मेरा जन्म तो श्री रामजी के वनवास के लिए ही हुआ था। मैं अभागा झूठ-मूठ क्या पछताता हूँ?॥4॥

दोहा :

आपनि दारुन दीनता कहँ सबहि सिरु नाइ।

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ॥182॥

सबको सिर झुकाकर मैं अपनी दारुण दीनता कहता हूँ। श्री रघुनाथजी के चरणों के दर्शन किए बिना मेरे जी की जलन न जाएगी॥182॥

चौपाई :

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा। को जिय कै रघुबर बिनु बूझा॥

एकहिं आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहँ प्रभु पाहीं॥1॥

मुझे दूसरा कोई उपाय नहीं सूझता। श्री राम के बिना मेरे हृदय की बात कौन जान सकता है?
मन में एक ही आँक (निश्चयपूर्वक) यही है कि प्रातः काल श्री रामजी के पास चल दूँगा॥1॥

यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी॥

तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी॥2॥

यद्यपि मैं बुरा हूँ और अपराधी हूँ और मेरे ही कारण यह सब उपद्रव हुआ है, तथापि श्री रामजी मुझे शरण में सम्मुख आया हुआ देखकर सब अपराध क्षमा करके मुझ पर विशेष कृपा करेंगे॥

2॥

सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥

अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक जद्यपि बामा॥3॥

श्री रघुनाथजी शील, संकोच, अत्यन्त सरल स्वभाव, कृपा और स्नेह के घर हैं। श्री रामजी ने कभी शत्रु का भी अनिष्ट नहीं किया। मैं यद्यपि टेढ़ा हूँ, पर हूँ तो उनका बच्चा और गुलाम ही॥

3॥

तुम्ह पै पाँच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥

जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥4॥

आप पंच (सब) लोग भी इसी में मेरा कल्याण मानकर सुंदर वाणी से आज्ञा और आशीर्वाद दीजिए, जिसमें मेरी विनती सुनकर और मुझे अपना दास जानकर श्री रामचन्द्रजी राजधानी को लौट आवें॥4॥

दोहा :

यद्यपि जनमु कुमातु तैं मैं सठु सदा सदोस।

आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस॥183॥

यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मैं दुष्ट तथा सदा दोषयुक्त भी हूँ, तो भी मुझे श्री रामजी का भरोसा है कि वे मुझे अपना जानकर त्यागेंगे नहीं॥183॥

चौपाई :

भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधाँ जनु पागे॥

लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥1॥

भरतजी के वचन सबको प्यारे लगे। मानो वे श्री रामजी के प्रेमरूपी अमृत में पगे हुए थे। श्री रामवियोग रूपी भीषण विष से सब लोग जले हुए थे। वे मानो बीज सहित मंत्र को सुनते ही जाग उठे॥1॥

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेहँ बिकल भए भारी॥

भरतहि कहहिं सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही॥2॥

माता, मंत्री, गुरु, नगर के स्त्री-पुरुष सभी स्नेह के कारण बहुत ही व्याकुल हो गए। सब भरतजी को सराह-सराहकर कहते हैं कि आपका शरीर श्री रामप्रेम की साक्षात मूर्ति ही है॥2॥

तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू॥

जो पावँरु अपनी जडताई। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाई॥3॥

हे तात भरत! आप ऐसा क्यों न कहें। श्री रामजी को आप प्राणों के समान प्यारे हैं। जो नीच अपनी मूर्खता से आपकी माता कैंकेयी की कुटिलता को लेकर आप पर सन्देह करेगा,॥3॥

सो सठु कोटिक पुरुष समेता। बसिहि कलप सत नरक निकेता॥

अहि अघ अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई॥4॥

वह दुष्ट करोड़ों पुरखों सहित सौ कल्पों तक नरक के घर में निवास करेगा। साँप के पाप और अवगुण को मणि नहीं ग्रहण करती, बल्कि वह विष को हर लेती है और दुःख तथा दरिद्रता को भस्म कर देती है॥4॥

दोहा :

अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।

सोक सिंधु बूडत सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥184॥

हे भरतजी! वन को अवश्य चलिए, जहाँ श्री रामजी हैं, आपने बहुत अच्छी सलाह विचारी। शोक समुद्र में डूबते हुए सब लोगों को आपने (बड़ा) सहारा दे दिया॥184॥

चौपाई :

भा सब कैं मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥

चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रानप्रिय भे सबही के॥1॥

सबके मन में कम आनंद नहीं हुआ (अर्थात बहुत ही आनंद हुआ)! मानो मेघों की गर्जना सुनकर चातक और मोर आनंदित हो रहे हों। (दूसरे दिन) प्रातःकाल चलने का सुंदर निर्णय देखकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गए॥1॥

मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई॥

धन्य भरत जीवनु जग माहीं। सीलु सनेहु सराहत जाहीं॥2॥

मुनि वशिष्ठजी की वंदना करके और भरतजी को सिर नवाकर, सब लोग विदा लेकर अपने-अपने घर को चले। जगत में भरतजी का जीवन धन्य है, इस प्रकार कहते हुए वे उनके शील और स्नेह की सराहना करते जाते हैं॥2॥

कहहिं परसपर भा बड काजू। सकल चलै कर साजहिं साजू॥

जेहि राखहिं रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी॥3॥

आपस में कहते हैं, बड़ा काम हुआ। सभी चलने की तैयारी करने लगे। जिसको भी घर की रखवाली के लिए रहो, ऐसा कहकर रखते हैं, वही समझता है मानो मेरी गर्दन मारी गई॥3॥

कोठ कह रहन कहिअ नहिं काहू। को न चहइ जग जीवन लाहू॥4॥

कोई-कोई कहते हैं- रहने के लिए किसी को भी मत कहो, जगत में जीवन का लाभ कौन नहीं चाहता?॥4॥

दोहा :

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहद मातु पितु भाइ।

सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥185॥

वह सम्पत्ति, घर, सुख, मित्र, माता, पिता, भाई जल जाए जो श्री रामजी के चरणों के सम्मुख होने में हँसते हुए (प्रसन्नतापूर्वक) सहायता न करे॥185॥

चौपाई :

घर घर साजहिं बाहन नाना। हरषु हृदयँ परभात पयाना॥

भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू। नगरु बाजि गज भवन भँडारू॥1॥

घर-घर लोग अनेकों प्रकार की सवारियाँ सजा रहे हैं। हृदय में (बड़ा) हर्ष है कि सबेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े, हाथी, महल-खजाना आदि-॥1॥

संपति सब रघुपति कै आही। जाँ बिनु जतन चलीं तजि ताही॥

तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साइँ दोहाई॥2॥

सारी सम्पत्ति श्री रघुनाथजी की है। यदि उसकी (रक्षा की) व्यवस्था किए बिना उसे ऐसे ही छोड़कर चल दूँ तो परिणाम में मेरी भलाई नहीं है, क्योंकि स्वामी का द्रोह सब पापों में शिरोमणि (श्रेष्ठ) है॥2॥

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥

अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥3॥

सेवक वही है, जो स्वामी का हित करे, चाहे कोई करोड़ों दोष क्यों न दे। भरतजी ने ऐसा विचारकर ऐसे विश्वासपात्र सेवकों को बुलाया, जो कभी स्वप्न में भी अपने धर्म से नहीं डिगे थे॥3॥

कहि सबु मरमु धरमु भल भाषा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा॥

करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे॥4॥

भरतजी ने उनको सब भेद समझाकर फिर उत्तम धर्म बतलाया और जो जिस योग्य था, उसे

उसी काम पर नियुक्त कर दिया। सब व्यवस्था करके, रक्षकों को रखकर भरतजी राम माता कौसल्याजी के पास गए॥4॥

दोहा :

आरत जननी जानि सब भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकीं सजन सुखासन जान॥186॥

स्नेह के सुजान (प्रेम के तत्व को जानने वाले) भरतजी ने सब माताओं को आर्त (दुःखी) जानकर उनके लिए पालकियाँ तैयार करने तथा सुखासन यान (सुखपाल) सजाने के लिए कहा॥

186॥

चौपाई :

चक्क चक्कि जिमि पुर नर नारी। चहत प्रात उर आरत भारी॥
जागत सब निसि भयउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥1॥

नगर के नर-नारी चकवे-चकवी की भाँति हृदय में अत्यन्त आर्त होकर प्रातःकाल का होना चाहते हैं। सारी रात जागते-जागते सबेरा हो गया। तब भरतजी ने चतुर मंत्रियों को बुलवाया॥

1॥

कहेउ लेहु सबु तिलक समाजू। बनहिं देब मुनि रामहि राजू॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे॥2॥

और कहा- तिलक का सब सामान ले चलो। वन में ही मुनि वशिष्ठजी श्री रामचन्द्रजी को राज्य देंगे, जल्दी चलो। यह सुनकर मंत्रियों ने वंदना की और तुरंत घोड़े, रथ और हाथी सजवा दिए॥

2॥

अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ॥

बिप्र बृंद चढि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥3॥

सबसे पहले मुनिराज वशिष्ठजी अरुंधती और अग्निहोत्र की सब सामग्री सहित रथ पर सवार होकर चले। फिर ब्राह्मणों के समूह, जो सब के सब तपस्या और तेज के भंडार थे, अनेकों

सवारियों पर चढ़कर चले॥3॥

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥

सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढि चढि चलत भई सब रानी॥4॥

नगर के सब लोग रथों को सजा-सजाकर चित्रकूट को चल पड़े। जिनका वर्णन नहीं हो सकता,

ऐसी सुंदर पालकियों पर चढ़-चढ़कर सब रानियाँ चलीं॥4॥

दोहा :

सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ।

सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ॥187॥

विश्वासपात्र सेवकों को नगर सौंपकर और सबको आदरपूर्वक रवाना करके, तब श्री सीता-रामजी के चरणों को स्मरण करके भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले॥187॥

चौपाई :

राम दरस बस सब नर नारी। जनु करि करिनि चले तकि बारी॥

बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहिं जाहीं॥1॥

श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के वश में हुए (दर्शन की अनन्य लालसा से) सब नर-नारी ऐसे चले मानो प्यासे हाथी-हथिनी जल को तककर (बड़ी तेजी से बावले से हुए) जा रहे हों। श्री सीताजी-रामजी (सब सुखों को छोड़कर) वन में हैं, मन में ऐसा विचार करके छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित भरतजी पैदल ही चले जा रहे हैं॥1॥

देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥

जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥2॥

उनका स्नेह देखकर लोग प्रेम में मग्न हो गए और सब घोड़े, हाथी, रथों को छोड़कर उनसे उतरकर पैदल चलने लगे। तब श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी भरत के पास जाकर और अपनी पालकी उनके समीप खड़ी करके कोमल वाणी से बोलीं-॥2॥

तात चढहु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥

तुम्हरे चलत चलिहि सबु लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥3॥

हे बेटा! माता बलैया लेती है, तुम रथ पर चढ़ जाओ। नहीं तो सारा परिवार दुःखी हो जाएगा। तुम्हारे पैदल चलने से सभी लोग पैदल चलेंगे। शोक के मारे सब दुबले हो रहे हैं, पैदल रास्ते के (पैदल चलने के) योग्य नहीं हैं॥3॥

सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढि चलत भए दोउ भाई॥

तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥4॥

माता की आज्ञा को सिर चढ़ाकर और उनके चरणों में सिर नवाकर दोनों भाई रथ पर चढ़कर चलने लगे। पहले दिन तमसा पर वास (मुकाम) करके दूसरा मुकाम गोमती के तीर पर किया॥

4॥

दोहा :

पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग।

करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग॥188॥

कोई दूध ही पीते, कोई फलाहार करते और कुछ लोग रात को एक ही बार भोजन करते हैं। भूषण और भोग-विलास को छोड़कर सब लोग श्री रामचन्द्रजी के लिए नियम और व्रत करते हैं॥188॥

चौपाई :

सई तीर बसि चले बिहाने। सुंगबेरपुर सब निअराने॥

समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सबिषादा॥1॥

रात भर सई नदी के तीर पर निवास करके सबेरे वहाँ से चल दिए और सब श्रृंगवेरपुर के समीप जा पहुँचे। निषादराज ने सब समाचार सुने, तो वह दुःखी होकर हृदय में विचार करने लगा-॥1॥

कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाउ मन माहीं॥

जौं पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई॥2॥

क्या कारण है जो भरत वन को जा रहे हैं, मन में कुछ कपट भाव अवश्य है। यदि मन में कुटिलता न होती, तो साथ में सेना क्यों ले चले हैं॥2॥

जानहिं सानुज रामहि मारी। करउँ अकंटक राजु सुखारी॥

भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी॥3॥

समझते हैं कि छोटे भाई लक्ष्मण सहित श्री राम को मारकर सुख से निष्कण्टक राज्य करूँगा। भरत ने हृदय में राजनीति को स्थान नहीं दिया (राजनीति का विचार नहीं किया)। तब (पहले) तो कलंक ही लगा था, अब तो जीवन से ही हाथ धोना पड़ेगा॥3॥

सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥

का आचरजु भरतु अस करहीं। नहिं बिष बेलि अमिअ फल फरहीं॥4॥

सम्पूर्ण देवता और दैत्य वीर जुट जाएँ, तो भी श्री रामजी को रण में जीतने वाला कोई नहीं है। भरत जो ऐसा कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है? विष की बेलें अमृतफल कभी नहीं फलतीं॥

4॥

दोहा :

अस बिचारि गुहँ ग्याति सन कहेउ सजग सब होहु।

हथवाँसहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥189॥

ऐसा विचारकर गुह (निषादराज) ने अपनी जाति वालों से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। नावों को हाथ में (कब्जे में) कर लो और फिर उन्हें डुबा दो तथा सब घाटों को रोक दो॥189॥

चौपाई :

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥

सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥1॥

सुसज्जित होकर घाटों को रोक लो और सब लोग मरने के साज सजा लो (अर्थात भरत से युद्ध में लड़कर मरने के लिए तैयार हो जाओ)। मैं भरत से सामने (मैदान में) लोहा लूँगा (मुठभेड़ करूँगा) और जीते जी उन्हें गंगा पार न उतरने दूँगा॥1॥

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥

भरत भाइ नृपु में जन नीचू। बड़ें भाग असि पाइअ मीचू॥2॥

युद्ध में मरण, फिर गंगाजी का तट, श्री रामजी का काम और क्षणभंगुर शरीर (जो चाहे जब नाश हो जाए), भरत श्री रामजी के भाई और राजा (उनके हाथ से मरना) और मैं नीच सेवक- बड़े भाग्य से ऐसी मृत्यु मिलती है॥2॥

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहउँ भुवन दस चारी॥

तजउँ प्रान रघुनाथ निहोरें। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरें॥3॥

मैं स्वामी के काम के लिए रण में लड़ाई करूँगा और चौदहों लोकों को अपने यश से उज्ज्वल कर दूँगा। श्री रघुनाथजी के निमित्त प्राण त्याग दूँगा। मेरे तो दोनों ही हाथों में आनंद के लड्डू हैं (अर्थात जीत गया तो राम सेवक का यश प्राप्त करूँगा और मारा गया तो श्री रामजी की नित्य सेवा प्राप्त करूँगा)॥3॥

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥

जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥4॥

साधुओं के समाज में जिसकी गिनती नहीं और श्री रामजी के भक्तों में जिसका स्थान नहीं, वह जगत में पृथ्वी का भार होकर व्यर्थ ही जीता है। वह माता के यौवन रूपी वृक्ष के काटने के लिए कुल्हाड़ा मात्र है॥4॥

दोहा :

बिगत बिषाद निषादपति सबहि बढाइ उछाहु।

सुमिरि राम मागेउ तुरत तरकस धनुष सनाहु॥190॥

(इस प्रकार श्री रामजी के लिए प्राण समर्पण का निश्चय करके) निषादराज विषाद से रहित हो गया और सबका उत्साह बढ़ाकर तथा श्री रामचन्द्रजी का स्मरण करके उसने तुरंत ही तरकस, धनुष और कवच माँगा॥190॥

चौपाई :

बेगहु भाइहु सजहु सँजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥

भलेहिं नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढावइ करषा॥1॥

(उसने कहा-) हे भाइयों! जल्दी करो और सब सामान सजाओ। मेरी आज्ञा सुनकर कोई मन में कायरता न लावे। सब हर्ष के साथ बोल उठे- हे नाथ! बहुत अच्छा और आपस में एक-दूसरे का जोश बढ़ाने लगे॥1॥

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचइ रारी॥

सुमिरि राम पद पंकज पनहीं। भार्थी बाँधि चढाइन्हि धनहीं॥2॥

निषादराज को जोहार कर-करके सब निषाद चले। सभी बड़े शूरवीर हैं और संग्राम में लड़ना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। श्री रामचन्द्रजी के चरणकमलों की जूतियों का स्मरण करके उन्होंने भाथियाँ (छोटे-छोटे तरकस) बाँधकर धनुहियों (छोटे-छोटे धनुषों) पर प्रत्यंचा चढाई॥2॥

अँगरी पहिरि कूँडि सिर धरहीं। फरसा बाँस सेल सम करहीं॥

एक कुसल अति ओइन खाँडे। कूदहिं गगन मनहुँ छिति छाँडे॥3॥

कवच पहनकर सिर पर लोहे का टोप रखते हैं और फरसे, भाले तथा बरछों को सीधा कर रहे हैं (सुधार रहे हैं)। कोई तलवार के वार रोकने में अत्यन्त ही कुशल है। वे ऐसे उमंग में भरे हैं, मानो धरती छोड़कर आकाश में कूद (उछल) रहे हों॥3॥

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहि जोहारे जाई॥

देखि सुभट सब लायक जाने। लै लै नाम सकल सनमाने॥4॥

अपना-अपना साज-समाज (लड़ाई का सामान और दल) बनाकर उन्होंने जाकर निषादराज गुह को जोहार की। निषादराज ने सुंदर योद्धाओं को देखकर, सबको सुयोग्य जाना और नाम ले-लेकर सबका सम्मान किया॥4॥

दोहा :

भाइहु लावहु धोख जनि आजु काज बड़ मोहि।

सुनि सरोष बोले सुभट बीर अधीर न होहि॥191॥

(उसने कहा-) हे भाइयों! धोखा न लाना (अर्थात् मरने से न घबड़ाना), आज मेरा बड़ा भारी काम है। यह सुनकर सब योद्धा बड़े जोश के साथ बोल उठे- हे वीर! अधीर मत हो॥191॥

चौपाई :

राम प्रताप नाथ बल तोरे। करहिं कटक बिनु भट बिनु घोरे॥

जीवन पाउ न पाछें धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं॥1॥

हे नाथ! श्री रामचन्द्रजी के प्रताप से और आपके बल से हम लोग भरत की सेना को बिना वीर और बिना घोड़े की कर देंगे (एक-एक वीर और एक-एक घोड़े को मार डालेंगे)। जीते जी पीछे

पाँव न रखेंगे। पृथ्वी को रुण्ड-मुण्डमयी कर देंगे (सिरों और धड़ों से छा देंगे)॥1॥

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥

एतना कहत छींक भइ बाँए। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए॥2॥

निषादराज ने वीरों का बढ़िया दल देखकर कहा- जुझारू (लड़ाई का) ढोल बजाओ। इतना कहते ही बाईं ओर छींक हुई। शकुन विचारने वालों ने कहा कि खेत सुंदर हैं (जीत होगी)॥2॥

बूढु एकु कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥

रामहि भरतु मनावन जाहीं। सगुन कहइ अस बिग्रहु नाहीं॥3॥

एक बूढे ने शकुन विचारकर कहा- भरत से मिल लीजिए, उनसे लड़ाई नहीं होगी। भरत श्री रामचन्द्रजी को मनाने जा रहे हैं। शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है॥3॥

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढा॥

भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझौं। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझौं॥4॥

यह सुनकर निषादराज गुहने कहा- बूढा ठीक कह रहा है। जल्दी में (बिना विचारे) कोई काम करके मूर्ख लोग पछताते हैं। भरतजी का शील स्वभाव बिना समझे और बिना जाने युद्ध करने में हित की बहुत बड़ी हानि है॥4॥

दोहा :

गहहु घाट भट समिटि सब लेउँ मरम मिलि जाइ।

बूझि मित्र अरि मध्य गति तस तब करिहउँ आइ॥192॥

अतएव हे वीरों! तुम लोग इकट्ठे होकर सब घाटों को रोक लो, मैं जाकर भरतजी से मिलकर उनका भेद लेता हूँ। उनका भाव मित्र का है या शत्रु का या उदासीन का, यह जानकर तब आकर वैसा (उसी के अनुसार) प्रबंध करूँगा॥192॥

चौपाई :

लखब सनेहु सुभायँ सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइँ दुराएँ॥

अस कहि भेंट सँजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग मागे॥1॥

उनके सुंदर स्वभाव से मैं उनके स्नेह को पहचान लूँगा। वैर और प्रेम छिपाने से नहीं छिपते। ऐसा कहकर वह भेंट का सामान सजाने लगा। उसने कंद, मूल, फल, पक्षी और हिरन मँगवाए॥

1॥

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥

मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥2॥

कहार लोग पुरानी और मोटी पहिना नामक मछलियों के भार भर-भरकर लाए। भेंट का सामान

सजाकर मिलने के लिए चले तो मंगलदायक शुभ-शकुन मिले॥2॥

देखि दूरि तें कहि निज नाम्। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनाम्॥

जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥3॥

निषादराज ने मुनिराज वशिष्ठजी को देखकर अपना नाम बतलाकर दूर ही से दण्डवत प्रणाम किया। मुनीश्वर वशिष्ठजी ने उसको राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और भरतजी को समझाकर कहा (कि यह श्री रामजी का मित्र है)॥3॥

राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उचरि उमगत अनुरागा॥

गाउँ जाति गुहँ नाउँ सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥4॥

यह श्री राम का मित्र है, इतना सुनते ही भरतजी ने रथ त्याग दिया। वे रथ से उतरकर प्रेम में उमंगते हुए चले। निषादराज गुह ने अपना गाँव, जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर माथा टेककर जोहार की॥4॥

दोहा :

करत दंडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ।

मनहुँ लखन सन भेंट भइ प्रेमु न हृदयँ समाइ॥193॥

दण्डवत करते देखकर भरतजी ने उठाकर उसको छाती से लगा लिया। हृदय में प्रेम समाता नहीं है, मानो स्वयं लक्ष्मणजी से भेंट हो गई हो॥193॥

चौपाई :

भेंटत भरतु ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती॥

धन्य धन्य धुनि मंगल मूला। सुर सराहि तेहि बरिसहिं फूला॥1॥

भरतजी गुह को अत्यन्त प्रेम से गले लगा रहे हैं। प्रेम की रीति को सब लोग सिहा रहे हैं (ईर्ष्यापूर्वक प्रशंसा कर रहे हैं)। मंगल की मूल 'धन्य-धन्य' की ध्वनि करके देवता उसकी सराहना करते हुए फूल बरसा रहे हैं॥1॥

लोक बेद सब भाँतिहिं नीचा। जासु छाँह छुड़ लेइअ सींचा॥

तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता॥2॥

(वे कहते हैं-) जो लोक और वेद दोनों में सब प्रकार से नीचा माना जाता है, जिसकी छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है, उसी निषाद से अँकवार भरकर (हृदय से चिपटाकर) श्री रामचन्द्रजी के छोटे भाई भरतजी (आनंद और प्रेमवश) शरीर में पुलकावली से परिपूर्ण हो मिल रहे हैं॥2॥

राम राम कहि जे जमुहारीं। तिन्हहि न पाप पुंज समुहारीं॥

यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जगु पावन कीन्हा॥3॥

जो लोग राम-राम कहकर जँभाई लेते हैं (अर्थात आलस्य से भी जिनके मुँह से राम-नाम का उच्चारण हो जाता है), पापों के समूह (कोई भी पाप) उनके सामने नहीं आते। फिर इस गुह को तो स्वयं श्री रामचन्द्रजी ने हृदय से लगा लिया और कुल समेत इसे जगत्पावन (जगत को पवित्र करने वाला) बना दिया॥3॥

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरेई॥

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥4॥

कर्मनाशा नदी का जल गंगाजी में पड़ जाता है (मिल जाता है), तब कहिए, उसे कौन सिर पर धारण नहीं करता? जगत जानता है कि उलटा नाम (मरा-मरा) जपते-जपते वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हो गए॥4॥

दोहा :

स्वपच सबर खस जमन जड़ पावँर कोल किरात।

रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात॥194॥

मूर्ख और पामर चाण्डाल, शबर, खस, यवन, कोल और किरात भी राम-नाम कहते ही परम पवित्र और त्रिभुवन में विख्यात हो जाते हैं॥194॥

चौपाई :

नहिं अचिरिजु जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्हि रघुबीर बड़ाई॥

राम नाम महिमा सुर कहहीं। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहहीं॥1॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, युग-युगान्तर से यही रीति चली आ रही है। श्री रघुनाथजी ने किसको बड़ाई नहीं दी? इस प्रकार देवता राम नाम की महिमा कह रहे हैं और उसे सुन-सुनकर अयोध्या के लोग सुख पा रहे हैं॥1॥

रामसखहि मिलि भरत सप्रेमा। पूँछी कुसल सुमंगल खेमा॥

देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू॥2॥

राम सखा निषादराज से प्रेम के साथ मिलकर भरतजी ने कुशल, मंगल और क्षेम पूछी। भरतजी का शील और प्रेम देखकर निषाद उस समय विदेह हो गया (प्रेममुग्ध होकर देह की सुध भूल गया)॥2॥

सकुच सनेहु मोदु मन बाढा। भरतहि चितवत एकटक ठाढा॥

धरि धीरजु पद बंदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी॥3॥

उसके मन में संकोच, प्रेम और आनंद इतना बढ़ गया कि वह खड़ा-खड़ा टकटकी लगाए भरतजी

को देखता रहा। फिर धीरज धरकर भरतजी के चरणों की वंदना करके प्रेम के साथ हाथ जोड़कर विनती करने लगा-॥3॥

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मैं तिहुँ काल कुसल निज लेखी॥

अब प्रभु परम अनुग्रह तोरें। सहित कोटि कुल मंगल मोरें॥4॥

हे प्रभो! कुशल के मूल आपके चरण कमलों के दर्शन कर मैंने तीनों कालों में अपना कुशल जान लिया। अब आपके परम अनुग्रह से करोड़ों कुलों (पीढ़ियों) सहित मेरा मंगल (कल्याण) हो गया॥4॥

दोहा :

समुझि मोरि करतूति कुलु प्रभु महिमा जियँ जोड़।

जो न भजइ रघुबीर पद जग बिधि बंचित सोड़॥195॥

मेरी करतूत और कुल को समझकर और प्रभु श्री रामचन्द्रजी की महिमा को मन में देख (विचार) कर (अर्थात् कहाँ तो मैं नीच जाति और नीच कर्म करने वाला जीव, और कहाँ अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान श्री रामचन्द्रजी! पर उन्होंने मुझ जैसे नीच को भी अपनी अहैतुकी कृपा वश अपना लिया- यह समझकर) जो रघुवीर श्री रामजी के चरणों का भजन नहीं करता, वह जगत में विधाता के द्वारा ठगा गया है॥195॥

चौपाई :

कपटी कायर कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥

राम कीन्ह आपन जबही तें। भयउँ भुवन भूषन तबही तें॥1॥

मैं कपटी, कायर, कुबुद्धि और कुजाति हूँ और लोक-वेद दोनों से सब प्रकार से बाहर हूँ। पर जब से श्री रामचन्द्रजी ने मुझे अपनाया है, तभी से मैं विश्व का भूषण हो गया॥1॥

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥

कहि निषाद निज नाम सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥2॥

निषाद राज की प्रीति को देखकर और सुंदर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी उससे मिले। फिर निषाद ने अपना नाम ले-लेकर सुंदर (नम्र और मधुर) वाणी से सब रानियों को आदरपूर्वक जोहार की॥2॥

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥

निरखि निषादु नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥3॥

रानियाँ उसे लक्ष्मणजी के समान समझकर आशीर्वाद देती हैं कि तुम सौ लाख वर्षों तक सुख पूर्वक जिओ। नगर के स्त्री-पुरुष निषाद को देखकर ऐसे सुखी हुए, मानो लक्ष्मणजी को देख रहे

हों॥3॥

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटै रामभद्र भरि बाहू॥

सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लइ चलेउ लेवाई॥4॥

सब कहते हैं कि जीवन का लाभ तो इसी ने पाया है, जिसे कल्याण स्वरूप श्री रामचन्द्रजी ने भुजाओं में बाँधकर गले लगाया है। निषाद अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर मन में परम आनंदित हो सबको अपने साथ लिवा ले चला॥4॥

दोहा :

सनकारे सेवक सकल चले स्वामि रुख पाइ।

घर तरु तर सर बाग बन बास बनाएन्हि जाइ॥196॥

उसने अपने सब सेवकों को इशारे से कह दिया। वे स्वामी का रुख पाकर चले और उन्होंने घरों में, वृक्षों के नीचे, तालाबों पर तथा बगीचों और जंगलों में ठहरने के लिए स्थान बना दिए॥196॥

चौपाई :

सृंगबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेहँ सब अंग सिथिल तब॥

सोहत दिँ निषादहि लागू। जनु तनु धरँ बिनय अनुरागू॥1॥

भरतजी ने जब श्रृंगबेरपुर को देखा, तब उनके सब अंग प्रेम के कारण शिथिल हो गए। वे निषाद को लाग दिए (अर्थात् उसके कंधे पर हाथ रखे चलते हुए) ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो विनय और प्रेम शरीर धारण किए हुए हों॥1॥

एहि बिधि भरत सेनु सबु संग्गा। दीखि जाइ जग पावनि गंगा॥

रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू॥2॥

इस प्रकार भरतजी ने सब सेना को साथ में लिए हुए जगत को पवित्र करने वाली गंगाजी के दर्शन किए। श्री रामघाट को (जहाँ श्री रामजी ने स्नान संध्या की थी) प्रणाम किया। उनका मन इतना आनंदमग्न हो गया, मानो उन्हें स्वयं श्री रामजी मिल गए हों॥2॥

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी॥

करि मज्जनु मागहिं कर जोरी। रामचन्द्र पद प्रीति न थोरी॥3॥

नगर के नर-नारी प्रणाम कर रहे हैं और गंगाजी के ब्रह्म रूप जल को देख-देखकर आनंदित हो रहे हैं। गंगाजी में स्नान कर हाथ जोड़कर सब यही वर माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारा प्रेम कम न हो (अर्थात् बहुत अधिक हो)॥3॥

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥

जोरि पानि बर मागउँ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥4॥

भरतजी ने कहा- हे गंगे! आपकी रज सबको सुख देने वाली तथा सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। मैं हाथ जोड़कर यही वरदान माँगता हूँ कि श्री सीता-रामजी के चरणों में मेरा स्वाभाविक प्रेम हो॥4॥

दोहा :

एहि बिधि मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ॥197॥

इस प्रकार भरतजी स्नान कर और गुरुजी की आज्ञा पाकर तथा यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी हैं, डेरा उठा ले चले॥197॥

चौपाई :

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहिं गे दोठ भाई॥1॥

लोगों ने जहाँ-तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सभी का पता लगाया (कि सब लोग आकर आराम से टिक गए हैं या नहीं)। फिर देव पूजन करके आज्ञा पाकर दोनों भाई श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी के पास गए॥1॥

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी॥
भाइहि सौँपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई॥2॥

चरण दबाकर और कोमल वचन कह-कहकर भरतजी ने सब माताओं का सत्कार किया। फिर भाई शत्रुघ्न को माताओं की सेवा सौंपकर आपने निषाद को बुला लिया॥2॥

चले सखा कर सौं कर जोरें। सिथिल सरीरु सनेह न थोरें॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुडाऊ॥3॥

सखा निषाद राज के हाथ से हाथ मिलाए हुए भरतजी चले। प्रेम कुछ थोड़ा नहीं है (अर्थात् बहुत अधिक प्रेम है), जिससे उनका शरीर शिथिल हो रहा है। भरतजी सखा से पूछते हैं कि मुझे वह स्थान दिखलाओ और नेत्र और मन की जलन कुछ ठंडी करो-॥3॥

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए॥
भरत बचन सुनि भयठ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयठ निषादू॥4॥

जहाँ सीताजी, श्री रामजी और लक्ष्मण रात को सोए थे। ऐसा कहते ही उनके नेत्रों के कोरों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बड़ा विषाद हुआ। वह तुरंत ही उन्हें वहाँ ले गया॥4॥

दोहा :

जहाँ सिंसुपा पुनीत तर रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेहँ सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनामु॥198॥

जहाँ पवित्र अशोक के वृक्ष के नीचे श्री रामजी ने विश्राम किया था। भरतजी ने वहाँ अत्यन्त प्रेम से आदरपूर्वक दण्डवत प्रणाम किया॥198॥

चौपाई :

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई॥

चरन देख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई॥1॥

कुशों की सुंदर साथरी देखकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम किया। श्री रामचन्द्रजी के चरण चिह्नों की रज आँखों में लगाई। (उस समय के) प्रेम की अधिकता कहते नहीं बनती॥1॥

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥

सजल बिलोचन हृदयँ गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥2॥

भरतजी ने दो-चार स्वर्णबिन्दु (सोने के कण या तारे आदि जो सीताजी के गहने-कपड़ों से गिर पड़े थे) देखे तो उनको सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। उनके नेत्र (प्रेमाश्रु के) जल से भरे हैं और हृदय में ग्लानि भरी है। वे सखा से सुंदर वाणी में ये वचन बोले-॥2॥

श्रीहत सीय बिरहँ दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥

पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोगु जोगु जग जेही॥3॥

ये स्वर्ण के कण या तारे भी सीताजी के विरह से ऐसे श्रीहत (शोभाहीन) एवं कान्तिहीन हो रहे हैं, जैसे (राम वियोग में) अयोध्या के नर-नारी विलीन (शोक के कारण क्षीण) हो रहे हैं। जिन सीताजी के पिता राजा जनक हैं, इस जगत में भोग और योग दोनों ही जिनकी मुट्ठी में हैं, उन जनकजी को मैं किसकी उपमा दूँ?॥3॥

ससुर भानुकुल भानु भुआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥

प्राणनाथु रघुनाथ गोसाईं। जो बड़ होत सो राम बड़ाई॥4॥

सूर्यकुल के सूर्य राजा दशरथजी जिनके ससुर हैं, जिनको अमरावती के स्वामी इन्द्र भी सिहाते थे। (ईर्ष्यापूर्वक उनके जैसा ऐश्वर्य और प्रताप पाना चाहते थे) और प्रभु श्री रघुनाथजी जिनके प्राणनाथ हैं, जो इतने बड़े हैं कि जो कोई भी बड़ा होता है, वह श्री रामचन्द्रजी की (दी हुई) बड़ाई से ही होता है॥4॥

दोहा :

पति देवता सुतीय मनि सीय साँथरी देखि।

बिहरत हृदउ न हहरि हर पबि तें कठिन बिसेषि॥199॥

उन श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियों में शिरोमणि सीताजी की साथरी (कुश शय्या) देखकर मेरा हृदय हहराकर (दहलकर) फट नहीं जाता, हे शंकर! यह वज्र से भी अधिक कठोर है!॥199॥

चौपाई :

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥

पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे॥1॥

मेरे छोटे भाई लक्ष्मण बहुत ही सुंदर और प्यार करने योग्य हैं। ऐसे भाई न तो किसी के हुए, न हैं, न होने के ही हैं। जो लक्ष्मण अवध के लोगों को प्यारे, माता-पिता के दुलारे और श्री सीता-रामजी के प्राण प्यारे हैं,॥1॥

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाठ तन लाग न काठ॥

ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहिं छाती॥2॥

जिनकी कोमल मूर्ति और सुकुमार स्वभाव है, जिनके शरीर में कभी गरम हवा भी नहीं लगी, वे वन में सब प्रकार की विपतियाँ सह रहे हैं। (हाय!) इस मेरी छाती ने (कठोरता में) करोड़ों वज्रों का भी निरादर कर दिया (नहीं तो यह कभी की फट गई होती)॥2॥

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप शील सुख सब गुन सागर॥

पुरजन परिजन गुरु पितु माता। राम सुभाऊ सबहि सुखदाता॥3॥

श्री रामचंद्रजी ने जन्म (अवतार) लेकर जगत् को प्रकाशित (परम सुशोभित) कर दिया। वे रूप, शील, सुख और समस्त गुणों के समुद्र हैं। पुरवासी, कुटुम्बी, गुरु, पिता-माता सभी को श्री रामजी का स्वभाव सुख देने वाला है॥3॥

बैरिउ राम बड़ाई करहीं। बोलनि मिलनि बिनय मन हरहीं॥

सारद कोटि कोटि सत सेषा। करि न सकहिं प्रभु गुन गन लेखा॥4॥

शत्रु भी श्री रामजी की बड़ाई करते हैं। बोल-चाल, मिलने के ढंग और विनय से वे मन को हर लेते हैं। करोड़ों सरस्वती और अरबों शेषजी भी प्रभु श्री रामचंद्रजी के गुण समूहों की गिनती नहीं कर सकते॥4॥

दोहा :

सुखस्वरूप रघुवंसमनि मंगल मोद निधान।

ते सोवत कुस डसि महि बिधि गति अति बलवान॥200॥

जो सुख स्वरूप रघुवंश शिरोमणि श्री रामचंद्रजी मंगल और आनंद के भंडार हैं, वे पृथ्वी पर कुशा बिछाकर सोते हैं। विधाता की गति बड़ी ही बलवान है॥200॥

चौपाई :

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवनतरु जिमि जोगवइ राउ॥

पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती॥1॥

श्री रामचंद्रजी ने कानों से भी कभी दुःख का नाम नहीं सुना। महाराज स्वयं जीवन वृक्ष की तरह उनकी सार-सँभाल किया करते थे। सब माताएँ भी रात-दिन उनकी ऐसी सार-सँभाल करती थीं, जैसे पलक नेत्रों और साँप अपनी मणि की करते हैं॥1॥

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी॥

धिग कैकई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला॥2॥

वही श्री रामचंद्रजी अब जंगलों में पैदल फिरते हैं और कंद-मूल तथा फल-फूलों का भोजन करते हैं। अमंगल की मूल कैकेयी धिक्कार है, जो अपने प्राणप्रियतम पति से भी प्रतिकूल हो गई॥2॥

में धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी॥

कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाताँ। साइँदोह मोहि कीन्ह कुमाताँ॥3॥

मुझे पापों के समुद्र और अभागे को धिक्कार है, धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुल का कलंक बनाकर पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामी द्रोही बना दिया॥3॥

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू॥

राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु बिधि बामहि॥4॥

यह सुनकर निषादराज प्रेमपूर्वक समझाने लगा- हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद किसलिए करते हैं? श्री रामचंद्रजी आपको प्यारे हैं और आप श्री रामचंद्रजी को प्यारे हैं। यही निचोड़ (निश्चित सिद्धांत) है, दोष तो प्रतिकूल विधाता को है॥4॥

छंद- :

बिधि बाम की करनी कठिन जेहिं मातु कीन्ही बावरी।

तेहि राति पुनि पुनि करहिं प्रभु सादर सरहना रावरी॥

तुलसी न तुम्ह सो राम प्रीतमु कहतु हों सौँहे किएँ।

परिनाम मंगल जानि अपने आनिए धीरजु हिएँ॥

प्रतिकूल विधाता की करनी बड़ी कठोर है, जिसने माता कैकेयी को बावली बना दिया (उसकी मति फेर दी)। उस रात को प्रभु श्री रामचंद्रजी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं- (निषादराज कहता है कि-) श्री रामचंद्रजी को आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है, मैं सौगंध खाकर कहता हूँ। परिणाम में मंगल होगा, यह जानकर आप अपने हृदय में धैर्य धारण कीजिए।

सोरठा :

अंतरजामी रामु सकुच सप्रेम कृपायतन।

चलिअ करिअ बिश्रामु यह बिचारि दृढ आनि मन॥201॥

श्री रामचंद्रजी अंतर्यामी तथा संकोच, प्रेम और कृपा के धाम हैं, यह विचार कर और मन में दृढता लाकर चलिए और विश्राम कीजिए॥201॥

चौपाई :

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा॥

यह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी॥1॥

सखा के वचन सुनकर, हृदय में धीरज धरकर श्री रामचंद्रजी का स्मरण करते हुए भरतजी डेरे को चले। नगर के सारे स्त्री-पुरुष यह (श्री रामजी के ठहरने के स्थान का) समाचार पाकर बड़े आतुर होकर उस स्थान को देखने चले॥1॥

परदखिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा।

भरि भरि बारि बिलोचन लेंहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं॥2॥

वे उस स्थान की परिक्रमा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी को बहुत दोष देते हैं। नेत्रों में जल भर-भर लेते हैं और प्रतिकूल विधाता को दूषण देते हैं॥2॥

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥

निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥3॥

कोई भरतजी के स्नेह की सराहना करते हैं और कोई कहते हैं कि राजा ने अपना प्रेम खूब निबाहा। सब अपनी निंदा करके निषाद की प्रशंसा करते हैं। उस समय के विमोह और विषाद को कौन कह सकता है?॥3॥

ऐहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥

गुरहि सुनावँ चढाइ सुहाई। नई नाव सब मातु चढाई॥4॥

इस प्रकार रातभर सब लोग जागते रहे। सबेरा होते ही खेवा लगा। सुंदर नाव पर गुरुजी को चढ़ाकर फिर नई नाव पर सब माताओं को चढ़ाया॥4॥

दंड चारि महुँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा॥5॥

चार घड़ी में सब गंगाजी के पार उतर गए। तब भरतजी ने उतरकर सबको सँभाला॥5॥

दोहा :

प्रातक्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।

आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ॥202॥

प्रातःकाल की क्रियाओं को करके माता के चरणों की वंदना कर और गुरुजी को सिर नवाकर भरतजी ने विषाद गणों को (रास्ता दिखलाने के लिए) आगे कर लिया और सेना चला दी॥202॥

141॥

चौपाई :

कियउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकीं सकल चलाई॥

साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुरु कीन्हा॥1॥

निषादराज को आगे करके पीछे सब माताओं की पालकियाँ चलाई। छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर उनके साथ कर दिया। फिर ब्राह्मणों सहित गुरुजी ने गमन किया॥1॥

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥

गवने भरत पयादेहिं पाए। कोतल संग जाहिं डोरिआए॥2॥

तदनन्तर आप (भरतजी) ने गंगाजी को प्रणाम किया और लक्ष्मण सहित श्री सीता-रामजी का स्मरण किया। भरतजी पैदल ही चले। उनके साथ कोतल (बिना सवार के) घोड़े बागडोर से बँधे हुए चले जा रहे हैं॥2॥

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥

रामु पयादेहि पायँ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए॥3॥

उत्तम सेवक बार-बार कहते हैं कि हे नाथ! आप घोड़े पर सवार हो लीजिए। (भरतजी जवाब देते हैं कि) श्री रामचंद्रजी तो पैदल ही गए और हमारे लिए रथ, हाथी और घोड़े बनाए गए हैं॥3॥

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥

देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी॥4॥

मुझे उचित तो ऐसा है कि मैं सिर के बल चलकर जाऊँ। सेवक का धर्म सबसे कठिन होता है। भरतजी की दशा देखकर और कोमल वाणी सुनकर सब सेवकगण गलानि के मारे गले जा रहे हैं॥4॥

दोहा :

भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रबेसु प्रयाग।

कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥203॥

प्रेम में उमँग-उमँगकर सीताराम-सीताराम कहते हुए भरतजी ने तीसरे पहर प्रयाग में प्रवेश किया॥203॥

चौपाई :

झलका झलकत पायन्ह कैसैं। पंकज कोस ओस कन जैसैं॥

भरत पयादेहिं आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू॥1॥

उनके चरणों में छाले कैसे चमकते हैं, जैसे कमल की कली पर ओस की बूँदें चमकती हों। भरतजी आज पैदल ही चलकर आए हैं, यह समाचार सुनकर सारा समाज दुःखी हो गया॥1॥

खबरि लीन्ह सब लोग नहाए। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आए॥

सबिधि सितासित नीर नहाने। दिए दान महिसुर सनमाने॥2॥

जब भरतजी ने यह पता पा लिया कि सब लोग स्नान कर चुके, तब त्रिवेणी पर आकर उन्हें प्रणाम किया। फिर विधिपूर्वक (गंगा-यमुना के) श्वेत और श्याम जल में स्नान किया और दान देकर ब्राह्मणों का सम्मान किया॥2॥

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे॥

सकल काम प्रद तीरथराऊ। बेद बिदित जग प्रगट प्रभाऊ॥3॥

श्याम और सफेद (यमुनाजी और गंगाजी की) लहरों को देखकर भरतजी का शरीर पुलकित हो उठा और उन्होंने हाथ जोड़कर कहा- हे तीर्थराज! आप समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आपका प्रभाव वेदों में प्रसिद्ध और संसार में प्रकट है॥3॥

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥

अस जिअँ जानि सुजान सुदानी। सफल करहिं जग जाचक बानी॥4॥

मैं अपना धर्म (न माँगने का क्षत्रिय धर्म) त्यागकर आप से भीख माँगता हूँ। आर्त मनुष्य कौन सा कुकर्म नहीं करता? ऐसा हृदय में जानकर सुजान उत्तम दानी जगत् में माँगने वाले की वाणी को सफल किया करते हैं (अर्थात् वह जो माँगता है, सो दे देते हैं)॥4॥

दोहा :

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।

जनम-जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥204॥

मुझे न अर्थ की रुचि (इच्छा) है, न धर्म की, न काम की और न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्री रामजी के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं॥

204॥

चौपाई :

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥

सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरें॥1॥

स्वयं श्री रामचंद्रजी भी भले ही मुझे कुटिल समझें और लोग मुझे गुरुद्रोही तथा स्वामी द्रोही भले ही कहें, पर श्री सीता-रामजी के चरणों में मेरा प्रेम आपकी कृपा से दिन-दिन बढ़ता ही

रहे॥1॥

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥

चातकु रटिन घटें घटि जाई। बढें प्रेम सब भाँति भलाई॥2॥

मेघ चाहे जन्मभर चातक की सुध भुला दे और जल माँगने पर वह चाहे वज्र और पत्थर (ओले) ही गिरावे, पर चातक की रटन घटने से तो उसकी बात ही घट जाएगी (प्रतिष्ठा ही नष्ट हो जाएगी)। उसकी तो प्रेम बढ़ने में ही सब तरह से भलाई है॥2॥

कनकहिं बान चढइ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥

भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥3॥

जैसे तपाने से सोने पर आब (चमक) आ जाती है, वैसे ही प्रियतम के चरणों में प्रेम का नियम निबाहने से प्रेमी सेवक का गौरव बढ़ जाता है। भरतजी के वचन सुनकर बीच त्रिवेणी में से सुंदर मंगल देने वाली कोमल वाणी हुई॥3॥

तात भरत तुम्ह सब बिधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू॥

बादि गलानि करहु मन माहीं। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाही॥4॥

हे तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। श्री रामचंद्रजी के चरणों में तुम्हारा अथाह प्रेम है। तुम व्यर्थ ही मन में गलानि कर रहे हो। श्री रामचंद्रजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

तनु पुलकेउ हियँ हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।

भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥205॥

त्रिवेणीजी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया, हृदय में हर्ष छा गया। भरतजी धन्य हैं, कहकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे॥205॥

चौपाई :

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी॥

कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥1॥

तीर्थराज प्रयाग में रहने वाले वनप्रस्थ, ब्रह्मचारी, गृहस्थ और उदासीन (संन्यासी) सब बहुत ही आनंदित हैं और दस-पाँच मिलकर आपस में कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है॥1॥

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥

दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥2॥

श्री रामचन्द्रजी के सुंदर गुण समूहों को सुनते हुए वे मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी के पास आए। मुनि ने

भरतजी को दण्डवत प्रणाम करते देखा और उन्हें अपना मूर्तिमान सौभाग्य समझा॥2॥

धाड़ उठाड़ लाड़ उर लीन्है। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्है॥

आसनु दीन्ह नाड़ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥3॥

उन्होंने दौड़कर भरतजी को उठाकर हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया। मुनि ने उन्हें आसन दिया। वे सिर नवाकर इस तरह बैठे मानो भागकर संकोच के घर में घुस जाना चाहते हैं॥3॥

मुनि पूँछब कछु यह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥

सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥4॥

उनके मन में यह बड़ा सोच है कि मुनि कुछ पूछेंगे (तो मैं क्या उत्तर दूँगा)। भरतजी के शील और संकोच को देखकर ऋषि बोले- भरत! सुनो, हम सब खबर पा चुके हैं। विधाता के कर्तव्य पर कुछ वश नहीं चलता॥4॥

दोहा :

तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।

तात कैकड़हि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥206॥

माता की करतूत को समझकर (याद करके) तुम हृदय में गलानि मत करो। हे तात! कैकेयी का कोई दोष नहीं है, उसकी बुद्धि तो सरस्वती बिगाड़ गई थी॥206॥

चौपाई :

यहउ कहत भल कहिहि न कोऊ। लोकु बेदु बुध संमत दोऊ॥

तात तुम्हार बिमल जसु गाई। पाइहि लोकउ बेदु बड़ाई॥1॥

यह कहते भी कोई भला न कहेगा, क्योंकि लोक और वेद दोनों ही विद्वानों को मान्य है, किन्तु हे तात! तुम्हारा निर्मल यश गाकर तो लोक और वेद दोनों बड़ाई पावेंगे॥1॥

लोक बेद संमत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥

राठ सत्यव्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु बड़ाई॥2॥

यह लोक और वेद दोनों को मान्य है और सब यही कहते हैं कि पिता जिसको राज्य दे वही पाता है। राजा सत्यव्रती थे, तुमको बुलाकर राज्य देते, तो सुख मिलता, धर्म रहता और बड़ाई होती॥2॥

राम गवनु बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला॥

सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अंतहुँ पछितानी॥3॥

सारे अनर्थ की जड़ तो श्री रामचन्द्रजी का वनगमन है, जिसे सुनकर समस्त संसार को पीड़ा

हुई। वह श्री राम का वनगमन भी भावीवश हुआ। बेसमझ रानी तो भावीवश कुचाल करके अंत में पछताई॥3॥

तहँउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहै सो अधम अयान असाधू॥
करतेहु राजु त तुम्हहि ना दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू॥4॥

उसमें भी तुम्हारा कोई तनिक सा भी अपराध कहे, तो वह अधम, अज्ञानी और असाधु है। यदि तुम राज्य करते तो भी तुम्हें दोष न होता। सुनकर श्री रामचन्द्रजी को भी संतोष ही होता॥4॥

दोहा :

अब अति कीन्हेहु भरत भल तुम्हहि उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुबर चरन सनेहु॥207॥

हे भरत! अब तो तुमने बहुत ही अच्छा किया, यही मत तुम्हारे लिए उचित था। श्री रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम होना ही संसार में समस्त सुंदर मंगलों का मूल है॥207॥

चौपाई :

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राणा। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता॥1॥

सो वह (श्री रामचन्द्रजी के चरणों का प्रेम) तो तुम्हारा धन, जीवन और प्राण ही है, तुम्हारे समान बड़भागी कौन है? हे तात! तुम्हारे लिए यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम दशरथजी के पुत्र और श्री रामचन्द्रजी के प्यारे भाई हो॥1॥

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥2॥

हे भरत! सुनो, श्री रामचन्द्र के मन में तुम्हारे समान प्रेम पात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी तीनों की सारी रात उस दिन अत्यन्त प्रेम के साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती॥2॥

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कैं। सुख जीवन जग जस जड़ नर कैं॥3॥

प्रयागराज में जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैंने उनका यह मर्म जाना। वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। तुम पर श्री रामचन्द्रजी का ऐसा ही (अगाध) स्नेह है, जैसा मूर्ख (विषयासक्त) मनुष्य का संसार में सुखमय जीवन पर होता है॥3॥

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तौ भरत मोर मत एहु। धरें देह जनु राम सनेहु॥4॥

यह श्री रघुनाथजी की बहुत बड़ाई नहीं है, क्योंकि श्री रघुनाथजी तो शरणागत के कुटुम्ब भर को पालने वाले हैं। हे भरत! मेरा यह मत है कि तुम तो मानो शरीरधारी श्री रामजी के प्रेम ही हो॥4॥

दोहा :

तुम्ह कहँ भरत कलंक यह हम सब कहँ उपदेसु।

राम भगति रस सिद्धि हित भा यह समठ गनेसु॥208॥

हे भरत! तुम्हारे लिए (तुम्हारी समझ में) यह कलंक है, पर हम सबके लिए तो उपदेश है। श्री रामभक्ति रूपी रस की सिद्धि के लिए यह समय गणेश (बड़ा शुभ) हुआ है॥208॥

चौपाई :

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥

उदित सदा अँथइहि कबहँ ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना॥1॥

हे तात! तुम्हारा यश निर्मल नवीन चन्द्रमा है और श्री रामचन्द्रजी के दास कुमुद और चकोर हैं (वह चन्द्रमा तो प्रतिदिन अस्त होता और घटता है, जिससे कुमुद और चकोर को दुःख होता है),

परन्तु यह तुम्हारा यश रूपी चन्द्रमा सदा उदय रहेगा, कभी अस्त होगा ही नहीं! जगत रूपी

आकाश में यह घटेगा नहीं, वरन दिन-दिन दूना होगा॥1॥

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रताप रबि छबिहि न हरिही॥

निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकड़ करतबु राहू॥2॥

त्रैलोक्य रूपी चकवा इस यश रूपी चन्द्रमा पर अत्यन्त प्रेम करेगा और प्रभु श्री रामचन्द्रजी का प्रताप रूपी सूर्य इसकी छबि को हरण नहीं करेगा। यह चन्द्रमा रात-दिन सदा सब किसी को सुख देने वाला होगा। कैकेयी का कुकर्म रूपी राहु इसे ग्रास नहीं करेगा॥2॥

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥

राम भगत अब अमिअँ अघाहँ। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहँ॥3॥

यह चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी के सुंदर प्रेम रूपी अमृत से पूर्ण है। यह गुरु के अपमान रूपी दोष से दूषित नहीं है। तुमने इस यश रूपी चन्द्रमा की सृष्टि करके पृथ्वी पर भी अमृत को सुलभ

कर दिया। अब श्री रामजी के भक्त इस अमृत से तृप्त हो लें॥3॥

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥

दसरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिकु कहा जेहि सम जग नाही॥4॥

राजा भगीरथ गंगाजी को लाए, जिन (गंगाजी) का स्मरण ही सम्पूर्ण सुंदर मंगलों की खान है। दशरथजी के गुण समूहों का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता, अधिक क्या, जिनकी बराबरी

का जगत में कोई नहीं है॥4॥

दोहा :

जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आई।

जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नहीं अघाइ॥209॥

जिनके प्रेम और संकोच (शील) के वश में होकर स्वयं (सच्चिदानंदघन) भगवान श्री राम आकर प्रकट हुए, जिन्हें श्री महादेवजी अपने हृदय के नेत्रों से कभी अघाकर नहीं देख पाए (अर्थात् जिनका स्वरूप हृदय में देखते-देखते शिवजी कभी तृप्त नहीं हुए)॥209॥

चौपाई :

कीरति बिधु तुम्ह कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम पेम मृगरूपा॥

तात गलानि करहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारसु पाएँ॥1॥

(परन्तु उनसे भी बढ़कर) तुमने कीर्ति रूपी अनुपम चंद्रमा को उत्पन्न किया, जिसमें श्री राम प्रेम ही हिरन के (चिह्न के) रूप में बसता है। हे तात! तुम व्यर्थ ही हृदय में गलानि कर रहे हो। पारस पाकर भी तुम दरिद्रता से डर रहे हो!॥1॥

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥

सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥2॥

हे भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं (किसी का पक्ष नहीं करते), तपस्वी हैं (किसी की मुँह देखी नहीं कहते) और वन में रहते हैं (किसी से कुछ प्रयोजन नहीं रखते)। सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी का दर्शन प्राप्त हुआ॥2॥

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा॥

भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भयऊ॥3॥

(सीता-लक्ष्मण सहित श्री रामदर्शन रूप) उस महान फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है! प्रयागराज समेत हमारा बड़ा भाग्य है। हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यश से जगत को जीत लिया है। ऐसा कहकर मुनि प्रेम में मग्न हो गए॥3॥

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥

धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा॥4॥

भरद्वाज मुनि के वचन सुनकर सभासद् हर्षित हो गए। 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। आकाश में और प्रयागराज में 'धन्य, धन्य' की ध्वनि सुन-सुनकर भरतजी प्रेम में मग्न हो रहे हैं॥4॥

दोहा :

पुलक गात हियँ रामु सिय सजल सरोरुह नैन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि बोले गदगद बैन॥210॥

भरतजी का शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता-रामजी हैं और कमल के समान नेत्र (प्रेमाश्रु के) जल से भरे हैं। वे मुनियों की मंडली को प्रणाम करके गद्गद वचन बोले-॥210॥

चौपाई :

मुनि समाजु अरु तीरथराजू। साँचिहुँ सपथ अघाइ अकाजू॥

एहिं थल जौं किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई॥1॥

मुनियों का समाज है और फिर तीर्थराज है। यहाँ सच्ची सौगंध खाने से भी भरपूर हानि होती है। इस स्थान में यदि कुछ बनाकर कहा जाए, तो इसके समान कोई बड़ा पाप और नीचता न होगी॥1॥

तुम्ह सर्बग्य कहऊँ सतिभाऊ। उर अंतरजामी रघुराऊ॥

मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥2॥

मैं सच्चे भाव से कहता हूँ। आप सर्वज्ञ हैं और श्री रघुनाथजी हृदय के भीतर की जानने वाले हैं (मैं कुछ भी असत्य कहूँगा तो आपसे और उनसे छिपा नहीं रह सकता)। मुझे माता कैकेयी की करनी का कुछ भी सोच नहीं है और न मेरे मन में इसी बात का दुःख है कि जगत मुझे नीच समझेगा॥2॥

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥

सुकृत सुजस भरि भुअन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए॥3॥

न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जाएगा और न पिताजी के मरने का ही मुझे शोक है, क्योंकि उनका सुंदर पुण्य और सुयश विश्व भर में सुशोभित है। उन्होंने श्री राम-लक्ष्मण सरीखे पुत्र पाए॥3॥

राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥4॥

फिर जिन्होंने श्री रामचन्द्रजी के विरह में अपने क्षणभंगुर शरीर को त्याग दिया, ऐसे राजा के लिए सोच करने का कौन प्रसंग है? (सोच इसी बात का है कि) श्री रामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पैरों में बिना जूती के मुनियों का वेष बनाए वन-वन में फिरते हैं॥4॥

दोहा :

अजिन बसन फल असन महि सयन डसि कुस पात।

बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥211॥

वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलों का भोजन करते हैं, पृथ्वी पर कुश और पत्ते बिछाकर सोते हैं और वृक्षों के नीचे निवास करके नित्य सर्दी, गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं। 211॥

चौपाई :

एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥

एहि कुरोग कर औषधु नाहीं। सोधेउँ सकल बिस्व मन माहीं॥1॥

इसी दुःख की जलन से निरंतर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिन में भूख लगती है, न रात को नींद आती है। मैंने मन ही मन समस्त विश्व को खोज डाला, पर इस कुरोग की औषध कहीं नहीं है॥1॥

मातु कुमत बढई अघ मूला। तेहिं हमार हित कीन्ह बँसूला॥

कलि कुकाठ कर कीन्ह कुजंत्रू। गाड़ि अवधि पढ़ि कठिन कुमंत्रू॥2॥

माता का कुमत (बुरा विचार) पापों का मूल बढई है। उसने हमारे हित का बसूला बनाया। उससे कलह रूपी कुकाठ का कुयंत्र बनाया और चौदह वर्ष की अवधि रूपी कठिन कुमंत्र पढ़कर उस यंत्र को गाड़ दिया। (यहाँ माता का कुविचार बढई है, भरत को राज्य बसूला है, राम का वनवास कुयंत्र है और चौदह वर्ष की अवधि कुमंत्र है)॥2॥

मोहि लागि यह कुठाट तेहिं ठाटा। घालेसि सब जगु बारहबाटा॥

मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसइ अवध नहिं आन उपाएँ॥3॥

मेरे लिए उसने यह सारा कुठाट (बुरा साज) रचा और सारे जगत को बारहबाट (छिन्न-भिन्न) करके नष्ट कर डाला। यह कुयोग श्री रामचन्द्रजी के लौट आने पर ही मिट सकता है और तभी अयोध्या बस सकती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं॥3॥

भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई। सबहिं कीन्हि बहु भाँति बड़ाई॥

तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥4॥

भरतजी के वचन सुनकर मुनि ने सुख पाया और सभी ने उनकी बहुत प्रकार से बड़ाई की। (मुनि ने कहा-) हे तात! अधिक सोच मत करो। श्री रामचन्द्रजी के चरणों का दर्शन करते ही सारा दुःख मिट जाएगा॥4॥

दोहा :

करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि पेमप्रिय होहु।

कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु करि छोहु॥212॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजी ने उनका समाधान करके कहा- अब आप लोग हमारे प्रेम प्रिय

अतिथि बनिए और कृपा करके कंद-मूल, फल-फूल जो कुछ हम दें, स्वीकार कीजिए॥212॥

चौपाई :

सुनि मुनि बचन भरत हियँ सोचू। भयउ कुअवसर कठिन संकोचू॥

जानि गुरुइ गुर गिरा बहोरी। चरन बंदि बोले कर जोरी॥1॥

मुनि के वचन सुनकर भरत के हृदय में सोच हुआ कि यह बेमौके बड़ा बेढब संकोच आ पड़ा!
फिर गुरुजनों की वाणी को महत्वपूर्ण (आदरणीय) समझकर, चरणों की वंदना करके हाथ
जोड़कर बोले-॥1॥

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरम यहु नाथ हमारा॥

भरत बचन मुनिबर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥2॥

हे नाथ! आपकी आज्ञा को सिर चढ़ाकर उसका पालन करना, यह हमारा परम धर्म है। भरतजी
के ये वचन मुनिश्रेष्ठ के मन को अच्छे लगे। उन्होंने विश्वासपात्र सेवकों और शिष्यों को पास
बुलाया॥2॥

चाहिअ कीन्हि भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई।

भलेहिं नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥3॥

(और कहा कि) भरत की पहुनाई करनी चाहिए। जाकर कंद, मूल और फल लाओ। उन्होंने 'हे
नाथ! बहुत अच्छा' कहकर सिर नवाया और तब वे बड़े आनंदित होकर अपने-अपने काम को
चल दिए॥3॥

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥

सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहिं गोसाईं॥4॥

मुनि को चिंता हुई कि हमने बहुत बड़े मेहमान को न्योता है। अब जैसा देवता हो, वैसी ही
उसकी पूजा भी होनी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धियाँ और अणिमादि सिद्धियाँ आ गईं (और बोलीं-)
हे गोसाईं! जो आपकी आज्ञा हो सो हम करें॥4॥

दोहा :

राम बिरह ब्याकुल भरतु सानुज सहित समाज।

पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज॥213॥

मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा- छोटे भाई शत्रुघ्न और समाज सहित भरतजी श्री रामचन्द्रजी के
विरह में व्याकुल हैं, इनकी पहुनाई (आतिथ्य सत्कार) करके इनके श्रम को दूर करो॥213॥

चौपाई :

रिधि सिधि सिर धरि मुनिबर बानी। बड़भागिनि आपुहि अनुमानी॥

कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई॥1॥

ऋद्धि-सिद्धि ने मुनिराज की आज्ञा को सिर चढ़ाकर अपने को बड़भागिनी समझा। सब सिद्धियाँ आपस में कहने लगीं- श्री रामचन्द्रजी के छोटे भाई भरत ऐसे अतिथि हैं, जिनकी तुलना में कोई नहीं आ सकता॥1॥

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू॥

अस कहि रचेठ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना॥2॥

अतः मुनि के चरणों की वंदना करके आज वही करना चाहिए, जिससे सारा राज-समाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन्होंने बहुत से सुंदर घर बनाए, जिन्हें देखकर विमान भी विलखते हैं (लजा जाते हैं)॥2॥

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे॥

दासीं दास साजु सब लीन्हें। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हें॥3॥

उन घरों में बहुत से भोग (इन्द्रियों के विषय) और ऐश्वर्य (ठाट-बाट) का सामान भरकर रख दिया, जिन्हें देखकर देवता भी ललचा गए। दासी-दास सब प्रकार की सामग्री लिए हुए मन लगाकर उनके मनों को देखते रहते हैं (अर्थात् उनके मन की रुचि के अनुसार करते रहते हैं)॥

3॥

सब समाजु सजि सिधि पल माहीं। जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाहीं॥

प्रथमहिं बास दिए सब केही। सुंदर सुखद जथा रुचि जेही॥4॥

जो सुख के सामान स्वर्ग में भी स्वप्न में भी नहीं हैं, ऐसे सब सामान सिद्धियों ने पल भर में सजा दिए। पहले तो उन्होंने सब किसी को, जिसकी जैसी रुचि थी, वैसे ही, सुंदर सुखदायक निवास स्थान दिए॥4॥

दोहा :

बहुरि सपरिजन भरत कहूँ रिषि अस आयसु दीन्ह।

बिधि बिसमय दायकु बिभव मुनिबर तपबल कीन्ह॥214॥

और फिर कुटुम्ब सहित भरतजी को दिए, क्योंकि ऋषि भरद्वाजजी ने ऐसी ही आज्ञा दे रखी थी। (भरतजी चाहते थे कि उनके सब संगियों को आराम मिले, इसलिए उनके मन की बात जानकर मुनि ने पहले उन लोगों को स्थान देकर पीछे सपरिवार भरतजी को स्थान देने के लिए आज्ञा दी थी।) मुनि श्रेष्ठ ने तपोबल से ब्रह्मा को भी चकित कर देने वाला वैभव रच दिया॥214॥

चौपाई :

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका॥

सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी॥1॥

जब भरतजी ने मुनि के प्रभाव को देखा, तो उसके सामने उन्हें (इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि) सभी लोकपालों के लोक तुच्छ जान पड़े। सुख की सामग्री का वर्णन नहीं हो सकता, जिसे देखकर ज्ञानी लोग भी वैराग्य भूल जाते हैं॥1॥

आसन सयन सुबसन बिताना। बन बाटिका बिहग मृग नाना॥

सुरभि फूल फल अमिअ समाना। बिमल जलासय बिबिध बिधाना॥2॥

आसन, सेज, सुंदर वस्त्र, चँदोवे, वन, बगीचे, भाँति-भाँति के पक्षी और पशु, सुगंधित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल, अनेकों प्रकार के (तालाब, कुएँ, बावली आदि) निर्मल जलाशय,॥2॥

असन पान सुचि अमिअ अमी से। देखि लोग सकुचात जमी से॥

सुर सुरभी सुरतरु सबही कें। लखि अभिलाषु सुरेस सची कें॥3॥

तथा अमृत के भी अमृत-सरीखे पवित्र खान-पान के पदार्थ थे, जिन्हें देखकर सब लोग संयमी पुरुषों (विरक्त मुनियों) की भाँति सकुचा रहे हैं। सभी के डेरों में (मनोवांछित वस्तु देने वाले) कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं, जिन्हें देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को भी अभिलाषा होती है (उनका भी मन ललचा जाता है)॥3॥

रितु बसंत बह त्रिबिध बयारी। सब कहँ सुलभ पदारथ चारी॥

स्रक चंदन बनितादिक भोगा। देखि हरष बिसमय बस लोगा॥4॥

वसन्त ऋतु है। शीतल, मंद, सुगंध तीन प्रकार की हवा बह रही है। सभी को (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चारों पदार्थ सुलभ हैं। माला, चंदन, स्त्री आदि भोगों को देखकर सब लोग हर्ष और विषाद के वश हो रहे हैं। (हर्ष तो भोग सामग्रियों को और मुनि के तप प्रभाव को देखकर होता है और विषाद इस बात से होता है कि श्री राम के वियोग में नियम-व्रत से रहने वाले हम लोग भोग-विलास में क्यों आ फँसे, कहीं इनमें आसक्त होकर हमारा मन नियम-व्रतों को न त्याग दे)॥4॥

दोहा :

संपत्ति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।

तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥215॥

सम्पत्ति (भोग-विलास की सामग्री) चकवी है और भरतजी चकवा हैं और मुनि की आज्ञा खेल है, जिसने उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को बंद कर रखा और ऐसे ही सबेरा हो गया। (जैसे किसी बहेलिए के द्वारा एक पिंजड़े में रखे जाने पर भी चकवी-चकवे का रात को संयोग नहीं होता, वैसे ही भरद्वाजजी की आज्ञा से रात भर भोग सामग्रियों के साथ रहने पर भी

भरतजी ने मन से भी उनका स्पर्श तक नहीं किया।॥215॥

मासपारायण, उन्नीसवाँ विश्राम

चौपाई :

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाई मुनिहि सिरु सहित समाजा।

रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत बिनय बहु भाषी॥1॥

(प्रातःकाल) भरतजी ने तीर्थराज में स्नान किया और समाज सहित मुनि को सिर नवाकर और ऋषि की आज्ञा तथा आशीर्वाद को सिर चढ़ाकर दण्डवत् करके बहुत विनती की॥1॥

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हें। चले चित्रकूटहिं चितु दीन्हें॥

रामसखा कर दीन्हें लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥2॥

तदनन्तर रास्ते की पहचान रखने वाले लोगों (कुशल पथप्रदर्शकों) के साथ सब लोगों को लिए हुए भरतजी त्रिकूट में चित्त लगाए चले। भरतजी रामसखा गुह के हाथ में हाथ दिए हुए ऐसे जा रहे हैं, मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किए हुए हो॥2॥

नहिं पद त्रान सीस नहिं छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥

लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदु बानी॥3॥

न तो उनके पैरों में जूते हैं और न सिर पर छाया है, उनका प्रेम नियम, व्रत और धर्म निष्कपट (सच्चा) है। वे सखा निषादराज से लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी के रास्ते की बातें पूछते हैं और वह कोमल वाणी से कहता है॥3॥

राम बास थल बिटप बिलोकें। उर अनुराग रहत नहिं रोकें॥

देखि दसा सुर बरिसहिं फूला। भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥4॥

श्री रामचंद्रजी के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देखकर उनके हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरतजी की यह दशा देखकर देवता फूल बरसाने लगे। पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया॥4॥

दोहा :

किँ जाहिं छाया जलद सुखद बहइ बर बात।

तस मगु भयउ न राम कहँ जस भा भरतहि जात॥216॥

बादल छाया किए जा रहे हैं, सुख देने वाली सुंदर हवा बह रही है। भरतजी के जाते समय मार्ग जैसा सुखदायक हुआ, वैसा श्री रामचंद्रजी को भी नहीं हुआ था॥216॥

चौपाई :

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भए परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥1॥

रास्ते में असंख्य जड़-चेतन जीव थे। उनमें से जिनको प्रभु श्री रामचंद्रजी ने देखा, अथवा जिन्होंने प्रभु श्री रामचंद्रजी को देखा, वे सब (उसी समय) परमपद के अधिकारी हो गए, परन्तु अब भरतजी के दर्शन ने तो उनका भव (जन्म-मरण) रूपी रोग मिटा ही दिया। (श्री रामदर्शन से तो वे परमपद के अधिकारी ही हुए थे, परन्तु भरत दर्शन से उन्हें वह परमपद प्राप्त हो गया)॥1॥

यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं। सुमिरत जिनहि रामु मन माहीं॥
बारक राम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥2॥

भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है, जिन्हें श्री रामजी स्वयं अपने मन में स्मरण करते रहते हैं। जगत् में जो भी मनुष्य एक बार 'राम' कह लेते हैं, वे भी तरने-तारने वाले हो जाते हैं॥

2॥

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मंगलदाता॥

सिद्ध साधु मुनिबर अस कहहीं। भरतहि निरखि हरषु हियँ लहहीं॥3॥

फिर भरतजी तो श्री रामचंद्रजी के प्यारे तथा उनके छोटे भाई ठहरे। तब भला उनके लिए मार्ग मंगल (सुख) दायक कैसे न हो? सिद्ध, साधु और श्रेष्ठ मुनि ऐसा कह रहे हैं और भरतजी को देखकर हृदय में हर्ष लाभ करते हैं॥3॥

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहूँ पोचू॥

गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई॥4॥

भरतजी के (इस प्रेम के) प्रभाव को देखकर देवराज इन्द्र को सोच हो गया (कि कहीं इनके प्रेमवश श्री रामजी लौट न जाएँ और हमारा बना-बनाया काम बिगड़ जाए)। संसार भले के लिए भला और बुरे के लिए बुरा है (मनुष्य जैसा आप होता है जगत् उसे वैसा ही दिखता है)। उसने गुरु बृहस्पतिजी से कहा- हे प्रभो! वही उपाय कीजिए जिससे श्री रामचंद्रजी और भरतजी की भेंट ही न हो॥4॥

दोहा :

रामु सँकोची प्रेम बस भरत सप्रेम पयोधि।

बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥217॥

श्री रामचंद्रजी संकोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात

बिगड़ना चाहती है, इसलिए कुछ छल ढूँढकर इसका उपाय कीजिए॥217॥

चौपाई :

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने। सहसनयन बिनु लोचन जाने॥

मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥1॥

इंद्र के वचन सुनते ही देवगुरु बृहस्पतिजी मुस्कुराए। उन्होंने हजार नेत्रों वाले इंद्र को (ज्ञान रूपी) नेत्रोरहित (मूर्ख) समझा और कहा- हे देवराज! माया के स्वामी श्री रामचंद्रजी के सेवक के साथ कोई माया करता है तो वह उलटकर अपने ही ऊपर आ पड़ती है॥1॥

तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानी।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥2॥

उस समय (पिछली बार) तो श्री रामचंद्रजी का रुख जानकर कुछ किया था, परन्तु इस समय कुचाल करने से हानि ही होगी। हे देवराज! श्री रघुनाथजी का स्वभाव सुनो, वे अपने प्रति किए हुए अपराध से कभी रुष्ट नहीं होते॥2॥

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। यह महिमा जानहिं दुरबासा॥3॥

पर जो कोई उनके भक्त का अपराध करता है, वह श्री राम की क्रोधाग्नि में जल जाता है। लोक और वेद दोनों में इतिहास (कथा) प्रसिद्ध है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं॥3॥

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥4॥

सारा जगत् श्री राम को जपता है, वे श्री रामजी जिनको जपते हैं, उन भरतजी के समान श्री रामचंद्रजी का प्रेमी कौन होगा?॥4॥

दोहा :

मनहुँ न आनिअ अमरपति रघुबर भगत अकाजु।

अजसु लोक परलोक दुख दिन दिन सोक समाजु॥218॥

हे देवराज! रघुकुलश्रेष्ठ श्री रामचंद्रजी के भक्त का काम बिगाड़ने की बात मन में भी न लाइए। ऐसा करने से लोक में अपयश और परलोक में दुःख होगा और शोक का सामान दिनोंदिन बढ़ता ही चला जाएगा॥218॥

चौपाई :

सुनु सुरेस उपदेशु हमारा। रामहि सेवकु परम पिआरा॥

मानत सुखु सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई॥1॥

हे देवराज! हमारा उपदेश सुनो। श्री रामजी को अपना सेवक परम प्रिय है। वे अपने सेवक की

सेवा से सुख मानते हैं और सेवक के साथ वैर करने से बड़ा भारी वैर मानते हैं॥1॥

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फलु चाखा॥2॥

यद्यपि वे सम हैं- उनमें न राग है, न रोष है और न वे किसी का पाप-पुण्य और गुण-दोष ही ग्रहण करते हैं। उन्होंने विश्व में कर्म को ही प्रधान कर रखा है। जो जैसा करता है, वह वैसा ही फल भोगता है॥2॥

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसार॥

अगनु अलेप अमान एकरस। रामु सगुन भए भगत प्रेम बस॥3॥

तथापि वे भक्त और अभक्त के हृदय के अनुसार सम और विषम व्यवहार करते हैं (भक्त को प्रेम से गले लगा लेते हैं और अभक्त को मारकर तार देते हैं)। गुणरहित, निर्लेप, मानरहित और सदा एकरस भगवान् श्री राम भक्त के प्रेमवश ही सगुण हुए हैं॥3॥

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥

अस जियँ जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥4॥

श्री रामजी सदा अपने सेवकों (भक्तों) की रुचि रखते आए हैं। वेद, पुराण, साधु और देवता इसके साक्षी हैं। ऐसा हृदय में जानकर कुटिलता छोड़ दो और भरतजी के चरणों में सुंदर प्रीति करो॥

4॥

दोहा :

राम भगत परहित निरत पर दुख दुखी दयाल।

भगत सिरोमनि भरत तें जनि डरपहु सुरपाल॥219॥

हे देवराज इंद्र! श्री रामचंद्रजी के भक्त सदा दूसरों के हित में लगे रहते हैं, वे दूसरों के दुःख से दुःखी और दयालु होते हैं। फिर भरतजी तो भक्तों के शिरोमणि हैं, उनसे बिलकुल न डरो॥219॥

चौपाई :

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयस अनुसारी॥

स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥1॥

प्रभु श्री रामचंद्रजी सत्यप्रतिज्ञ और देवताओं का हित करने वाले हैं और भरतजी श्री रामजी की आज्ञा के अनुसार चलने वाले हैं। तुम व्यर्थ ही स्वार्थ के विशेष वश होकर व्याकुल हो रहे हो।

इसमें भरतजी का कोई दोष नहीं, तुम्हारा ही मोह है॥1॥

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥

बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥2॥

देवगुरु बृहस्पतिजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर इंद्र के मन में बड़ा आनंद हुआ और उनकी चिंता मिट गई। तब हर्षित होकर देवराज फूल बरसाकर भरतजी के स्वभाव की सराहना करने लगे॥

2॥

एहि बिधि भरत चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥

जबहि रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहु पासा॥3॥

इस प्रकार भरतजी मार्ग में चले जा रहे हैं। उनकी (प्रेममयी) दशा देखकर मुनि और सिद्ध लोग भी सिहाते हैं। भरतजी जब भी 'राम' कहकर लंबी साँस लेते हैं, तभी मानो चारों ओर प्रेम उमड़ पड़ता है॥3॥

द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पषाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना॥

बीच बास करि जमुनहिं आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥4॥

उनके (प्रेम और दीनता से पूर्ण) वचनों को सुनकर वज्र और पत्थर भी पिघल जाते हैं। अयोध्यावासियों का प्रेम कहते नहीं बनता। बीच में निवास (मुकाम) करके भरतजी यमुनाजी के तट पर आए। यमुनाजी का जल देखकर उनके नेत्रों में जल भर आया॥4॥

दोहा :

रघुबर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज।

होत मगन बारिधि बिरह चढे बिबेक जहाज॥220॥

श्री रघुनाथजी के (श्याम) रंग का सुंदर जल देखकर सारे समाज सहित भरतजी (प्रेम विह्वल होकर) श्री रामजी के विरह रूपी समुद्र में डूबते-डूबते विवेक रूपी जहाज पर चढ़ गए (अर्थात् यमुनाजी का श्यामवर्ण जल देखकर सब लोग श्यामवर्ण भगवान के प्रेम में विह्वल हो गए और उन्हें न पाकर विरह व्यथा से पीड़ित हो गए, तब भरतजी को यह ध्यान आया कि जल्दी चलकर उनके साक्षात् दर्शन करेंगे, इस विवेक से वे फिर उत्साहित हो गए)॥220॥

चौपाई :

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयउ समय सम सबहि सुपासू॥

रातिहिं घाट घाट की तरनी। आई अगनित जाहिं न बरनी॥1॥

उस दिन यमुनाजी के किनारे निवास किया। समयानुसार सबके लिए (खान-पान आदि की) सुंदर व्यवस्था हुई (निषादराज का संकेत पाकर) रात ही रात में घाट-घाट की अगणित नावें वहाँ आ गईं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

प्रात पार भए एकहि खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥

चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथ दोउ भाई॥2॥

सबेरे एक ही खेवे में सब लोग पार हो गए और श्री रामचंद्रजी के सखा निषादराज की इस सेवा से संतुष्ट हुए। फिर स्नान करके और नदी को सिर नवाकर निषादराज के साथ दोनों भाई चले॥

2॥

आगें मुनिबर बाहन आछें। राजसमाज जाइ सबु पाछें॥

तेहि पाछें दोउ बंधु पयादें। भूषन बसन बेष सुठि सादें॥3॥

आगे अच्छी-अच्छी सवारियों पर श्रेष्ठ मुनि हैं, उनके पीछे सारा राजसमाज जा रहा है। उसके पीछे दोनों भाई बहुत सादे भूषण-वस्त्र और वेष से पैदल चल रहे हैं॥3॥

सेवक सुहृद सचिवसुत साथ। सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा॥

जहँ जहँ राम बास बिश्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥4॥

सेवक, मित्र और मंत्री के पुत्र उनके साथ हैं। लक्ष्मण, सीताजी और श्री रघुनाथजी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहाँ-जहाँ श्री रामजी ने निवास और विश्राम किया था, वहाँ-वहाँ वे प्रेमसहित प्रणाम करते हैं॥4॥

दोहा :

मगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि थाइ।

देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥221॥

मार्ग में रहने वाले स्त्री-पुरुष यह सुनकर घर और काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ते हैं और उनके रूप (सौंदर्य) और प्रेम को देखकर वे सब जन्म लेने का फल पाकर आनंदित होते हैं॥221॥

चौपाई :

कहहिं सप्रेम एक एक पाहीं। रामु लखनु सखि होहिं कि नाहीं॥

बय बपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥1॥

गाँवों की स्त्रियाँ एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक कहती हैं- सखी! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं? हे सखी! इनकी अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं के समान है॥1॥

बेषु न सो सखि सीय न संग्गा। आगें अनी चली चतुरंग्गा॥

नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहिं भेदा॥2॥

परन्तु सखी! इनका न तो वह वेष (वल्कल वस्त्रधारी मुनिवेष) है, न सीताजी ही संग हैं और इनके आगे चतुरंगिणी सेना चली जा रही है। फिर इनके मुख प्रसन्न नहीं हैं, इनके मन में खेद है। हे सखी! इसी भेद के कारण संदेह होता है॥2॥

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी॥

तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी॥3॥

उसका तर्क (युक्ति) अन्य स्त्रियों के मन भाया। सब कहती हैं कि इसके समान सयानी (चतुर) कोई नहीं है। उसकी सराहना करके और 'तेरी वाणी सत्य है' इस प्रकार उसका सम्मान करके दूसरी स्त्री मीठे वचन बोली॥3॥

कहि सप्रेम बस कथाप्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू॥

भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी॥4॥

श्री रामजी के राजतिलक का आनंद जिस प्रकार से भंग हुआ था, वह सब कथाप्रसंग प्रेमपूर्वक कहकर फिर वह भाग्यवती स्त्री श्री भरतजी के शील, स्नेह और स्वभाव की सराहना करने लगी॥

4॥

दोहा :

चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु।

जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु॥222॥

(वह बोली-) देखो, ये भरतजी पिता के दिए हुए राज्य को त्यागकर पैदल चलते और फलाहार करते हुए श्री रामजी को मनाने के लिए जा रहे हैं। इनके समान आज कौन है?॥222॥

चौपाई :

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू॥

जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई॥1॥

भरतजी का भाईपना, भक्ति और इनके आचरण कहने और सुनने से दुःख और दोषों के हरने वाले हैं। हे सखी! उनके संबंध में जो कुछ भी कहा जाए, वह थोड़ा है। श्री रामचंद्रजी के भाई ऐसे क्यों न हों॥1॥

हम सब सानुज भरतहि देखें। भइन्ह धन्य जुबती जन लेखें॥

सुनि गुन देखि दसा पछिताहीं। कैकइ जननि जोगु सुतु नाहीं॥2॥

छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी को देखकर हम सब भी आज धन्य (बड़भागिनी) स्त्रियों की गिनती में आ गईं। इस प्रकार भरतजी के गुण सुनकर और उनकी दशा देखकर स्त्रियाँ पछताती हैं और कहती हैं- यह पुत्र कैकयी जैसी माता के योग्य नहीं है॥2॥

कोठ कह दूषनु रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन॥

कहँ हम लोक बेद बिधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी॥3॥

कोई कहती है- इसमें रानी का भी दोष नहीं है। यह सब विधाता ने ही किया है, जो हमारे अनुकूल है। कहाँ तो हम लोक और वेद दोनों की विधि (मर्यादा) से हीन, कुल और करतूत दोनों

से मलिन तुच्छ स्त्रियाँ,॥3॥

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा॥

अस अनंदु अचिरिजु प्रति ग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा॥4॥

जो बुरे देश (जंगली प्रान्त) और बुरे गाँव में बसती हैं और (स्त्रियों में भी) नीच स्त्रियाँ हैं! और कहाँ यह महान् पुण्यों का परिणामस्वरूप इनका दर्शन! ऐसा ही आनंद और आश्चर्य गाँव-गाँव में हो रहा है। मानो मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग गया हो॥4॥

दोहा :

भरत दरसु देखत खुलेठ मग लोगन्ह कर भागु।

जनु सिंघलबासिन्ह भयउ बिधि बस सुलभ प्रयागु॥223॥

भरतजी का स्वरूप देखते ही रास्ते में रहने वाले लोगों के भाग्य खुल गए! मानो दैवयोग से सिंहलद्वीप के बसने वालों को तीर्थराज प्रयाग सुलभ हो गया हो!॥223॥

चौपाई :

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा॥

तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा॥1॥

(इस प्रकार) अपने गुणों सहित श्री रामचंद्रजी के गुणों की कथा सुनते और श्री रघुनाथजी को स्मरण करते हुए भरतजी चले जा रहे हैं। वे तीर्थ देखकर स्नान और मुनियों के आश्रम तथा देवताओं के मंदिर देखकर प्रणाम करते हैं॥1॥

मनहीं मन मागहिं बरु एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥

मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥2॥

और मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि श्री सीता-रामजी के चरण कमलों में प्रेम हो। मार्ग में भील, कोल आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त मिलते हैं॥2॥

करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥

ते प्रभु समाचार सब कहहीं। भरतहि देखि जनम फलु लहहीं॥3॥

उनमें से जिस-तिस से प्रणाम करके पूछते हैं कि लक्ष्मणजी, श्री रामजी और जानकीजी किस वन में हैं? वे प्रभु के सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल पाते हैं॥3॥

जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥

एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनबास कहानी॥4॥

जो लोग कहते हैं कि हमने उनको कुशलपूर्वक देखा है, उनको ये श्री राम-लक्ष्मण के समान ही प्यारे मानते हैं। इस प्रकार सबसे सुंदर वाणी से पूछते और श्री रामजी के वनवास की कहानी

सुनते जाते हैं॥4॥

दोहा :

तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।

राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥224॥

उस दिन वहीं ठहरकर दूसरे दिन प्रातःकाल ही श्री रघुनाथजी का स्मरण करके चले। साथ के सब लोगों को भी भरतजी के समान ही श्री रामजी के दर्शन की लालसा (लगी हुई) है॥224॥

चौपाई :

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू॥

भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटिहि दुख दाहू॥1॥

सबको मंगलसूचक शकुन हो रहे हैं। सुख देने वाले (पुरुषों के दाहिने और स्त्रियों के बाएँ) नेत्र और भुजाएँ फड़क रही हैं। समाज सहित भरतजी को उत्साह हो रहा है कि श्री रामचंद्रजी मिलेंगे और दुःख का दाह मिट जाएगा॥1॥

करत मनोरथ जस जियँ जाके। जाहिं सनेह सुराँ सब छाके।

सिथिल अंग पग मग डगि डोलहिं। बिहबल बचन प्रेम बस बोलहिं॥2॥

जिसके जी में जैसा है, वह वैसा ही मनोरथ करता है। सब स्नेही रूपी मदिरा से छके (प्रेम में मतवाले हुए) चले जा रहे हैं। अंग शिथिल हैं, रास्ते में पैर डगमगा रहे हैं और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं॥2॥

रामसखाँ तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥

जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोड बीरा॥3॥

रामसखा निषादराज ने उसी समय स्वाभाविक ही सुहावना पर्वतशिरोमणि कामदगिरि दिखलाया, जिसके निकट ही पयस्विनी नदी के तट पर सीताजी समेत दोनों भाई निवास करते हैं॥3॥

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥

प्रेम मगन अस राज समाजू। जनु फिरि अवध चले रघुराजू॥4॥

सब लोग उस पर्वत को देखकर 'जानकी जीवन श्री रामचंद्रजी की जय हो।' ऐसा कहकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। राजसमाज प्रेम में ऐसा मग्न है मानो श्री रघुनाथजी अयोध्या को लौट चले हों॥4॥

दोहा :

भरत प्रेमु तेहि समय जस तस कहि सकइ न सेषु।

कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुखु अह मम मलिन जनेषु॥225॥

भरतजी का उस समय जैसा प्रेम था, वैसा शेषजी भी नहीं कह सकते। कवि के लिए तो वह वैसा ही अगम है, जैसा अहंता और ममता से मलिन मनुष्यों के लिए ब्रह्मानंद!॥225॥

चौपाई :

सकल सनेह सिथिल रघुबर कैं। गए कोस दुइ दिनकर ढरकैं॥

जलु थलु देखि बसे निसि बीतैं। कीन्ह गवन रघुनाथ पिरीतैं॥1॥

सब लोग श्री रामचंद्रजी के प्रेम के मारे शिथिल होने के कारण सूर्यास्त होने तक (दिनभर में) दो ही कोस चल पाए और जल-स्थल का सुपास देखकर रात को वहीं (बिना खाए-पीए ही) रह गए। रात बीतने पर श्री रघुनाथजी के प्रेमी भरतजी ने आगे गमन किया॥1॥

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीयँ सपन अस देखा॥

सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥2॥

उधर श्री रामचंद्रजी रात शेष रहते ही जागे। रात को सीताजी ने ऐसा स्वप्न देखा (जिसे वे श्री रामचंद्रजी को सुनाने लगीं) मानो समाज सहित भरतजी यहाँ आए हैं। प्रभु के वियोग की अग्नि से उनका शरीर संतप्त है॥2॥

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥

सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचबस सोच बिमोचन॥3॥

सभी लोग मन में उदास, दीन और दुःखी हैं। सासुओं को दूसरी ही सूरत में देखा। सीताजी का स्वप्न सुनकर श्री रामचंद्रजी के नेत्रों में जल भर गया और सबको सोच से छुड़ा देने वाले प्रभु स्वयं (लीला से) सोच के वश हो गए॥3॥

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥

अस कहि बंधु समेत नहाने पूजि पुरारि साधु सनमाने॥4॥

(और बोले-) लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नहीं है। कोई भीषण कुसमाचार (बहुत ही बुरी खबर) सुनावेगा। ऐसा कहकर उन्होंने भाई सहित स्नान किया और त्रिपुरारी महादेवजी का पूजन करके साधुओं का सम्मान किया॥4॥

छंद :

सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।

नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गए॥

तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।

सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

देवताओं का सम्मान (पूजन) और मुनियों की वंदना करके श्री रामचंद्रजी बैठ गए और उत्तर

दिशा की ओर देखने लगे। आकाश में धूल छा रही है, बहुत से पक्षी और पशु व्याकुल होकर भागे हुए प्रभु के आश्रम को आ रहे हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु श्री रामचंद्रजी यह देखकर उठे और सोचने लगे कि क्या कारण है? वे चित्त में आश्चर्ययुक्त हो गए। उसी समय कोल-भीलों ने आकर सब समाचार कहे।

सोरठा :

सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।

सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥226॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सुंदर मंगल वचन सुनते ही श्री रामचंद्रजी के मन में बड़ा आनंद हुआ। शरीर में पुलकावली छा गई और शरद् ऋतु के कमल के समान नेत्र प्रेमाश्रुओं से भर गए॥226॥

चौपाई :

बहुरि सोचबस भे सियरवन्। कारन कवन भरत आगवन्॥

एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥1॥

सीतापति श्री रामचंद्रजी पुनः सोच के वश हो गए कि भरत के आने का क्या कारण है? फिर एक ने आकर ऐसा कहा कि उनके साथ में बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना भी है॥1॥

सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच इत बंधु सकोचू॥

भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥2॥

यह सुनकर श्री रामचंद्रजी को अत्यंत सोच हुआ। इधर तो पिता के वचन और उधर भाई भरतजी का संकोच! भरतजी के स्वभाव को मन में समझकर तो प्रभु श्री रामचंद्रजी चित्त को ठहराने के लिए कोई स्थान ही नहीं पाते हैं॥2॥

समाधान तब भा यह जाने। भरतु कहे महुँ साधु सयाने॥

लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥3॥

तब यह जानकर समाधान हो गया कि भरत साधु और सयाने हैं तथा मेरे कहने में (आज्ञाकारी) हैं। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु श्री रामजी के हृदय में चिंता है तो वे समय के अनुसार अपना नीतियुक्त विचार कहने लगे-॥3॥

बिनु पूछेँ कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाईं॥

तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपनि समुझि कहउँ अनुगामी॥4॥

हे स्वामी! आपके बिना ही पूछे मैं कुछ कहता हूँ, सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नहीं समझा जाता (अर्थात् आप पूछें तब मैं कहूँ, ऐसा अवसर नहीं है, इसलिए यह मेरा कहना ढिठाई

नहीं होगा)। हे स्वामी! आप सर्वज्ञों में शिरोमणि हैं (सब जानते ही हैं)। मैं सेवक तो अपनी समझ की बात कहता हूँ॥4॥

दोहा :

नाथ सुहृद् सुठि सरल चित सील स्नेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ जानिअ आपु समान॥227॥

हे नाथ! आप परम सुहृद् (बिना ही कारण परम हित करने वाले), सरल हृदय तथा शील और स्नेह के भंडार हैं, आपका सभी पर प्रेम और विश्वास है, और अपने हृदय में सबको अपने ही समान जानते हैं॥227॥

चौपाई :

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ मोह बस होहिं जनाई॥
भरतु नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना॥1॥

परंतु मूढ विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली स्वरूप को प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिपरायण, साधु और चतुर हैं तथा प्रभु (आप) के चरणों में उनका प्रेम है, इस बात को सारा जगत् जानता है॥1॥

तेऊ आजु राम पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥2॥

वे भरतजी आज श्री रामजी (आप) का पद (सिंहासन या अधिकार) पाकर धर्म की मर्यादा को मिटाकर चले हैं। कुटिल खोटे भाई भरत कुसमय देखकर और यह जानकर कि रामजी (आप) वनवास में अकेले (असहाय) हैं,॥2॥

करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करै अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आए दल बटोरि दोउ भाई॥3॥

अपने मन में बुरा विचार करके, समाज जोड़कर राज्यों को निष्कण्टक करने के लिए यहाँ आए हैं। करोड़ों (अनेकों) प्रकार की कुटिलताएँ रचकर सेना बटोरकर दोनों भाई आए हैं॥3॥

जौं जियँ होति न कपट कुचाली। केहि सोहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ। जग बौराइ राज पदु पाएँ॥4॥

यदि इनके हृदय में कपट और कुचाल न होती, तो रथ, घोड़े और हाथियों की कतार (ऐसे समय) किसे सुहाती? परन्तु भरत को ही व्यर्थ कौन दोष दे? राजपद पा जाने पर सारा जगत् ही पागल (मतवाला) हो जाता है॥4॥

दोहा :

ससि गुर तिय गामी नघुषु चढेठ भूमिसुर जान।

लोक बेद तें विमुख भा अधम न बेन समान॥228॥

चंद्रमा गुरुपत्नी गामी हुआ, राजा नहुष ब्राह्मणों की पालकी पर चढ़ा और राजा वेन के समान नीच तो कोई नहीं होगा, जो लोक और वेद दोनों से विमुख हो गया॥228॥

चौपाई :

सहस्रबाहु सुरनाथु त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काउ॥1॥

सहस्रबाहु, देवराज इंद्र और त्रिशंकु आदि किसको राजमद ने कलंक नहीं दिया? भरत ने यह उपाय उचित ही किया है, क्योंकि शत्रु और ऋण को कभी जरा भी शेष नहीं रखना चाहिए॥1॥

एक कीन्हि नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥

समुझि परिहि सोउ आजु बिसेषी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥2॥

हाँ, भरत ने एक बात अच्छी नहीं की, जो रामजी (आप) को असहाय जानकर उनका निरादर किया! पर आज संग्राम में श्री रामजी (आप) का क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह बात भी उनकी समझ में विशेष रूप से आ जाएगी (अर्थात् इस निरादर का फल भी वे अच्छी तरह पा जाएँगे)॥2॥

एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥

प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बलु भाषी॥3॥

इतना कहते ही लक्ष्मणजी नीतिरस भूल गए और युद्धरस रूपी वृक्ष पुलकावली के बहाने से फूल उठा (अर्थात् नीति की बात कहते-कहते उनके शरीर में वीर रस छा गया)। वे प्रभु श्री रामचंद्रजी के चरणों की वंदना करके, चरण रज को सिर पर रखकर सच्चा और स्वाभाविक बल कहते हुए बोले॥3॥

अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहि उपचार न थोरा॥

कहँ लागि सहिअ रहिअ मनु मारें। नाथ साथ धनु हाथ हमारें॥4॥

हे नाथ! मेरा कहना अनुचित न मानिएगा। भरत ने हमें कम नहीं प्रचारा है (हमारे साथ कम छेड़छाड़ नहीं की है)। आखिर कहाँ तक सहा जाए और मन मारे रहा जाए, जब स्वामी हमारे साथ हैं और धनुष हमारे हाथ में है!॥4॥

दोहा :

छत्रि जाति रघुकुल जनमु राम अनुग जगु जान।

लातहुँ मारें चढति सिर नीच को धूरि समान॥229॥

क्षत्रिय जाति, रघुकुल में जन्म और फिर मैं श्री रामजी (आप) का अनुगामी (सेवक) हूँ, यह जगत् जानता है। (फिर भला कैसे सहा जाए?) धूल के समान नीच कौन है, परन्तु वह भी लात मारने पर सिर ही चढ़ती है॥229॥

चौपाई :

उठि कर जोरि रजायसु मागा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥

बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥1॥

यों कहकर लक्ष्मणजी ने उठकर, हाथ जोड़कर आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जाग उठा हो। सिर पर जटा बाँधकर कमर में तरकस कस लिया और धनुष को सजाकर तथा बाण को हाथ में लेकर कहा-॥1॥

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥

राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई॥2॥

आज मैं श्री राम (आप) का सेवक होने का यश लूँ और भरत को संग्राम में शिक्षा दूँ। श्री रामचंद्रजी (आप) के निरादर का फल पाकर दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) रण शय्या पर सोवें॥2॥

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥

जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥3॥

अच्छा हुआ जो सारा समाज आकर एकत्र हो गया। आज मैं पिछला सब क्रोध प्रकट करूँगा। जैसे सिंह हाथियों के झुंड को कुचल डालता है और बाज जैसे लवे को लपेट में ले लेता है॥3॥

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥

जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥4॥

वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मैदान में पछाड़ूँगा। यदि शंकरजी भी आकर उनकी सहायता करें, तो भी, मुझे रामजी की सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में (अवश्य) मार डालूँगा (छोड़ूँगा नहीं)॥4॥

दोहा :

अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।

सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥230॥

लक्ष्मणजी को अत्यंत क्रोध से तमतमाया हुआ देखकर और उनकी प्रामाणिक (सत्य) सौगंध सुनकर सब लोग भयभीत हो जाते हैं और लोकपाल घबड़ाकर भागना चाहते हैं॥230॥

चौपाई :

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी॥

तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥1॥

सारा जगत् भय में डूब गया। तब लक्ष्मणजी के अपार बाहुबल की प्रशंसा करती हुई आकाशवाणी हुई- हे तात! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जान सकता है?॥1॥

अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ।

सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥2॥

परन्तु कोई भी काम हो, उसे अनुचित-उचित खूब समझ-बूझकर किया जाए तो सब कोई अच्छा कहते हैं। वेद और विद्वान कहते हैं कि जो बिना विचारे जल्दी में किसी काम को करके पीछे पछताते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं हैं॥2॥

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥

कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई॥3॥

देववाणी सुनकर लक्ष्मणजी सकुचा गए। श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया (और कहा-) हे तात! तुमने बड़ी सुंदर नीति कही। हे भाई! राज्य का मद सबसे कठिन मद है॥3॥

जो अचवँत नृप मातहिं तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥

सुनहू लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥4॥

जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन (सत्संग) नहीं किया, वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते ही (पीते ही) मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण! सुनो, भरत सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है॥4॥

दोहा :

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।

कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥231॥

(अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है) ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य का मद नहीं होने का! क्या कभी काँजी की बूँदों से क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता (फट सकता) है?॥231॥

चौपाई :

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥

गोपद जल बूडहिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाडै छोनी॥1॥

अन्धकार चाहे तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाए। आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल

जाए। गो के खुर इतने जल में अगस्त्यजी डूब जाँँ और पृथ्वी चाहे अपनी स्वाभाविक क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे॥1॥

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥

लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥2॥

मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाए, परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजी की सौगंध खाकर कहता हूँ, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है॥2॥

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता॥

भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥3॥

हे तात! गुरु रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिलाकर विधाता इस दृश्य प्रपंच (जगत्) को रचता है, परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया (दोनों को अलग-अलग कर दिया)॥3॥

गहि गुन पय तजि अवगुण बारी। निज जस जगत कीन्हि उजिआरी॥

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥4॥

गुणरूपी दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्यागकर भरत ने अपने यश से जगत् में उजियाला कर दिया है। भरतजी के गुण, शील और स्वभाव को कहते-कहते श्री रघुनाथजी प्रेमसमुद्र में मग्न हो गए॥4॥

दोहा :

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।

सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपानिकेतु॥232॥

श्री रामचंद्रजी की वाणी सुनकर और भरतजी पर उनका प्रेम देखकर समस्त देवता उनकी सराहना करने लगे (और कहने लगे) कि श्री रामचंद्रजी के समान कृपा के धाम प्रभु और कौन है?॥232॥

चौपाई :

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥1॥

यदि जगत् में भरत का जन्म न होता, तो पृथ्वी पर संपूर्ण धर्मों की धुरी को कौन धारण करता? हे रघुनाथजी! कविकुल के लिए अगम (उनकी कल्पना से अतीत) भरतजी के गुणों की कथा आपके सिवा और कौन जान सकता है?॥1॥

लखन राम सियँ सुनि सुर बानी। अति सुखु लहेठ न जाइ बखानी॥

इहाँ भरतु सब सहित सहाए। मंदाकिनीं पुनीत नहाए॥2॥

लक्ष्मणजी, श्री रामचंद्रजी और सीताजी ने देवताओं की वाणी सुनकर अत्यंत सुख पाया, जो वर्णन नहीं किया जा सकता। यहाँ भरतजी ने सारे समाज के साथ पवित्र मंदाकिनी में स्नान किया॥2॥

सरित समीप राखि सब लोगा। मागि मातु गुरु सचिव नियोगा॥

चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥3॥

फिर सबको नदी के समीप ठहराकर तथा माता, गुरु और मंत्री की आज्ञा माँगकर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरतजी वहाँ चले जहाँ श्री सीताजी और श्री रघुनाथजी थे॥3॥

समुझि मातु करतब सकुचाहीं। करत कुतरक कोटि मन माहीं॥

रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥4॥

भरतजी अपनी माता कैकेयी की करनी को समझकर (याद करके) सकुचाते हैं और मन में करोड़ों (अनेकों) कुतर्क करते हैं (सोचते हैं) श्री राम, लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड़कर कहीं दूसरी जगह उठकर न चले जाएँ॥4॥

दोहा :

मातु मते महुँ मानि मोहि जो कुछ करहिं सो थोर।

अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥233॥

मुझे माता के मत में मानकर वे जो कुछ भी करें सो थोड़ा है, पर वे अपनी ओर समझकर (अपने विरद और संबंध को देखकर) मेरे पापों और अवगुणों को क्षमा करके मेरा आदर ही करेंगे॥233॥

चौपाई :

जौं परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौं सनमानहिं सेवकु मानी॥

मोरें सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही॥1॥

चाहे मलिन मन जानकर मुझे त्याग दें, चाहे अपना सेवक मानकर मेरा सम्मान करें, (कुछ भी करें), मेरे तो श्री रामचंद्रजी की जूतियाँ ही शरण हैं। श्री रामचंद्रजी तो अच्छे स्वामी हैं, दोष तो सब दास का ही है॥1॥

जग जग भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नबीना॥

अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेहँ सिथिल सब गाता॥2॥

जगत् में यश के पात्र तो चातक और मछली ही हैं, जो अपने नेम और प्रेम को सदा नया

बनाए रखने में निपुण हैं। ऐसा मन में सोचते हुए भरतजी मार्ग में चले जाते हैं। उनके सब अंग संकोच और प्रेम से शिथिल हो रहे हैं॥2॥

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥

जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥3॥

माता की हुई बुराई मानो उन्हें लौटाती है, पर धीरज की धुरी को धारण करने वाले भरतजी भक्ति के बल से चले जाते हैं। जब श्री रघुनाथजी के स्वभाव को समझते (स्मरण करते) हैं तब मार्ग में उनके पैर जल्दी-जल्दी पड़ने लगते हैं॥3॥

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रबाहँ जल अलि गति जैसी॥

देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समयँ बिदेहू॥4॥

उस समय भरत की दशा कैसी है? जैसी जल के प्रवाह में जल के भौरे की गति होती है। भरतजी का सोच और प्रेम देखकर उस समय निषाद विदेह हो गया (देह की सुध-बुध भूल गया)॥4॥

दोहा :

लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषादु।

मिटिहि सोचु होइहि हरषु पुनि परिनाम बिषादु॥234॥

मंगल शकुन होने लगे। उन्हें सुनकर और विचारकर निषाद कहने लगा- सोच मिटेगा, हर्ष होगा, पर फिर अन्त में दुःख होगा॥234॥

चौपाई :

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने॥

भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू॥1॥

भरतजी ने सेवक (गुह) के सब वचन सत्य जाने और वे आश्रम के समीप जा पहुँचे। वहाँ के वन और पर्वतों के समूह को देखा तो भरतजी इतने आनंदित हुए मानो कोई भूखा अच्छा अन्न (भोजन) पा गया हो॥1॥

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीड़ित ग्रह मारी॥

जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहिं भरत गति तेहि अनुहारी॥2॥

जैसे ईति के भय से दुःखी हुई और तीनों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) तापों तथा क्रूर ग्रहों और महामारियों से पीड़ित प्रजा किसी उत्तम देश और उत्तम राज्य में जाकर सुखी हो जाए, भरतजी की गति (दशा) ठीक उसी प्रकार हो रही है॥2॥ (अधिक जल बरसना, न बरसना, चूहों का उत्पात, टिड्डियाँ, तोते और दूसरे राजा की चढ़ाई-खेतों में बाधा देने वाले इन

छह उपद्रवों को 'ईति' कहते हैं)।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥3॥

श्री रामचंद्रजी के निवास से वन की सम्पत्ति ऐसी सुशोभित है मानो अच्छे राजा को पाकर प्रजा सुखी हो। सुहावना वन ही पवित्र देश है। विवेक उसका राजा है और वैराग्य मंत्री है॥3॥

भट जम नियम सैल रजधानी। सांति सुमति सुचि सुंदर रानी॥
सकल अंग संपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥4॥

यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) तथा नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान) योद्धा हैं। पर्वत राजधानी है, शांति तथा सुबुद्धि दो सुंदर पवित्र रानियाँ हैं। वह श्रेष्ठ राजा राज्य के सब अंगों से पूर्ण है और श्री रामचंद्रजी के चरणों के आश्रित रहने से उसके चित्त में चाव (आनंद या उत्साह) है॥4॥ (स्वामी, आमत्य, सुहृद, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना- राज्य के सात अंग हैं।)

दोहा :

जीति मोह महिपालु दल सहित बिबेक भुआलु।
करत अकंटक राजु पुरँ सुख संपदा सुकालु॥235॥

मोह रूपी राजा को सेना सहित जीतकर विवेक रूपी राजा निष्कण्टक राज्य कर रहा है। उसके नगर में सुख, सम्पत्ति और सुकाल वर्तमान है॥235॥

चौपाई :

बन प्रदेस मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना॥1॥

वन रूपी प्रांतों में जो मुनियों के बहुत से निवास स्थान हैं, वही मानो शहरों, नगरों, गाँवों और खेड़ों का समूह है। बहुत से विचित्र पक्षी और अनेकों पशु ही मानो प्रजाओं का समाज है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता॥1॥

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष बृष साजु सराहा॥
बयरु बिहाइ चरहिं एक संग्गा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंग्गा॥2॥

गैंडा, हाथी, सिंह, बाघ, सूअर, भैंसे और बैलों को देखकर राजा के साज को सराहते ही बनता है। ये सब आपस का वैर छोड़कर जहाँ-तहाँ एक साथ विचरते हैं। यही मानो चतुरंगिणी सेना है॥2॥

झरना झरहिं मत गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिधि बिधि बाजहिं॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन॥3॥

पानी के झरने झर रहे हैं और मतवाले हाथी चिंघाड़ रहे हैं। मानो वहाँ अनेकों प्रकार के नगाड़े बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, तोता तथा कोयलों के समूह और सुंदर हंस प्रसन्न मन से कूज रहे हैं॥3॥

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहु ओरा॥
बेलि बिटप तून सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला॥4॥

भौरों के समूह गुंजार कर रहे हैं और मोर नाच रहे हैं। मानो उस अच्छे राज्य में चारों ओर मंगल हो रहा है। बेल, वृक्ष, तृण सब फल और फूलों से युक्त हैं। सारा समाज आनंद और मंगल का मूल बन रहा है॥4॥

दोहा :

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयँ अति पेमु।

तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिरानें नेमु॥236॥

श्री रामजी के पर्वत की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यंत प्रेम हुआ। जैसे तपस्वी नियम की समाप्ति होने पर तपस्या का फल पाकर सुखी होता है॥236॥

मासपारायण, बीसवाँ विश्राम नवाह्नपारायण, पाँचवाँ विश्राम

चौपाई :

तब केवट ऊँचे चढि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥

नाथ देखिअहिं बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला॥1॥

तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ़ गया और भुजा उठाकर भरतजी से कहने लगा- हे नाथ! ये जो पाकर, जामुन, आम और तमाल के विशाल वृक्ष दिखाई देते हैं,॥1॥

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मंजु बिसाल देखि मनु मोहा॥

नील सघन पल्लव फल लाला। अबिरल छाहँ सुखद सब काला॥2॥

जिन श्रेष्ठ वृक्षों के बीच में एक सुंदर विशाल बड़ का वृक्ष सुशोभित है, जिसको देखकर मन मोहित हो जाता है, उसके पत्ते नीले और सघन हैं और उसमें लाल फल लगे हैं। उसकी घनी छाया सब ऋतुओं में सुख देने वाली है॥2॥

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमा सी॥

ए तरु सरित समीप गोसाँई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥3॥

मानो ब्रह्माजी ने परम शोभा को एकत्र करके अंधकार और लालिमामयी राशि सी रच दी है। हे गुसाईं! ये वृक्ष नदी के समीप हैं, जहाँ श्री राम की पर्णकुटी छाई है॥3॥

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए॥

बट छायाँ बेदिका बनाई। सियँ निज पानि सरोज सुहाई॥4॥

वहाँ तुलसीजी के बहुत से सुंदर वृक्ष सुशोभित हैं, जो कहीं-कहीं सीताजी ने और कहीं लक्ष्मणजी ने लगाए हैं। इसी बड़ की छाया में सीताजी ने अपने करकमलों से सुंदर वेदी बनाई है॥4॥

दोहा :

जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सिय रामु सुजान।

सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥237॥

जहाँ सुजान श्री सीता-रामजी मुनियों के वृन्द समेत बैठकर नित्य शास्त्र, वेद और पुराणों के सब कथा-इतिहास सुनते हैं॥237॥

चौपाई :

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥

करत प्रनाम चले दोठ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥1॥

सखा के वचन सुनकर और वृक्षों को देखकर भरतजी के नेत्रों में जल उमड़ आया। दोनों भाई प्रणाम करते हुए चले। उनके प्रेम का वर्णन करने में सरस्वतीजी भी सकुचाती हैं॥1॥

हरषहिं निरखि राम पद अंका। मानहुँ पारसु पायठ रंका॥

रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं॥2॥

श्री रामचन्द्रजी के चरणचिह्न देखकर दोनों भाई ऐसे हर्षित होते हैं, मानो दरिद्र पारस पा गया हो। वहाँ की रज को मस्तक पर रखकर हृदय में और नेत्रों में लगाते हैं और श्री रघुनाथजी के मिलने के समान सुख पाते हैं॥2॥

देखि भरत गति अकथ अतीवा। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवा॥

सखहि सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर बरषहिं फूला॥3॥

भरतजी की अत्यन्त अनिर्वचनीय दशा देखकर वन के पशु, पक्षी और जड़ (वृक्षादि) जीव प्रेम में मग्न हो गए। प्रेम के विशेष वश होने से सखा निषादराज को भी रास्ता भूल गया। तब देवता सुंदर रास्ता बतलाकर फूल बरसाने लगे॥3॥

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे॥

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को॥4॥

भरत के प्रेम की इस स्थिति को देखकर सिद्ध और साधक लोग भी अनुराग से भर गए और

उनके स्वाभाविक प्रेम की प्रशंसा करने लगे कि यदि इस पृथ्वी तल पर भरत का जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़ को चेतन और चेतन को जड़ कौन करता?॥4॥

दोहा :

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।

मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥238॥

प्रेम अमृत है, विरह मंदराचल पर्वत है, भरतजी गहरे समुद्र हैं। कृपा के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने देवता और साधुओं के हित के लिए स्वयं (इस भरत रूपी गहरे समुद्र को अपने विरह रूपी मंदराचल से) मथकर यह प्रेम रूपी अमृत प्रकट किया है॥238॥

चौपाई :

सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥

भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन॥1॥

सखा निषादराज सहित इस मनोहर जोड़ी को सघन वन की आड़ के कारण लक्ष्मणजी नहीं देख पाए। भरतजी ने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के समस्त सुमंगलों के धाम और सुंदर पवित्र आश्रम को देखा॥1॥

करत प्रबेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥

देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूँछे बचन कहत अनुरागे॥2॥

आश्रम में प्रवेश करते ही भरतजी का दुःख और दाह (जलन) मिट गया, मानो योगी को परमार्थ (परमतत्व) की प्राप्ति हो गई हो। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी प्रभु के आगे खड़े हैं और पूँछे हुए वचन प्रेमपूर्वक कह रहे हैं (पूँछी हुई बात का प्रेमपूर्वक उत्तर दे रहे हैं)॥2॥

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधें। तून कसें कर सरु धनु काँधें॥

बेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू॥3॥

सिर पर जटा है, कमर में मुनियों का (वल्कल) वस्त्र बाँधे हैं और उसी में तरकस कसे हैं। हाथ में बाण तथा कंधे पर धनुष है, वेदी पर मुनि तथा साधुओं का समुदाय बैठा है और सीताजी सहित श्री रघुनाथजी विराजमान हैं॥3॥

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिबेष कीन्ह रति कामा॥

कर कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत॥4॥

श्री रामजी के वल्कल वस्त्र हैं, जटा धारण किए हैं, श्याम शरीर है। (सीता-रामजी ऐसे लगते हैं) मानो रति और कामदेव ने मुनि का वेष धारण किया हो। श्री रामजी अपने करकमलों से धनुष-बाण फेर रहे हैं और हँसकर देखते ही जी की जलन हर लेते हैं (अर्थात् जिसकी ओर भी एक

बार हँसकर देख लेते हैं, उसी को परम आनंद और शांति मिल जाती है।)॥4॥

दोहा :

लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु।

ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानंदु॥239॥

सुंदर मुनि मंडली के बीच में सीताजी और रघुकुलचंद्र श्री रामचन्द्रजी ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो ज्ञान की सभा में साक्षात् भक्ति और सच्चिदानंद शरीर धारण करके विराजमान हैं॥239॥

चौपाई :

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन॥

पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाई॥1॥

छोटे भाई शत्रुघ्न और सखा निषादराज समेत भरतजी का मन (प्रेम में) मग्न हो रहा है। हर्ष-शोक, सुख-दुःख आदि सब भूल गए। हे नाथ! रक्षा कीजिए, हे गुसाईं! रक्षा कीजिए' ऐसा कहकर वे पृथ्वी पर दण्ड की तरह गिर पड़े॥1॥

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने॥

बंधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा॥2॥

प्रेमभरे वचनों से लक्ष्मणजी ने पहचान लिया और मन में जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। (वे श्री रामजी की ओर मुँह किए खड़े थे, भरतजी पीठ पीछे थे, इससे उन्होंने देखा नहीं।)

अब इस ओर तो भाई भरतजी का सरस प्रेम और उधर स्वामी श्री रामचन्द्रजी की सेवा की प्रबल परवशता॥2॥

मिलि न जाइ नहिं गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥

रहे राखि सेवा पर भारू। चढी चंग जनु खँच खेलारू॥3॥

न तो (क्षणभर के लिए भी सेवा से पृथक होकर) मिलते ही बनता है और न (प्रेमवश) छोड़ते (उपेक्षा करते) ही। कोई श्रेष्ठ कवि ही लक्ष्मणजी के चित्त की इस गति (दुविधा) का वर्णन कर सकता है। वे सेवा पर भार रखकर रह गए (सेवा को ही विशेष महत्वपूर्ण समझकर उसी में लगे रहे) मानो चढ़ी हुई पतंग को खिलाड़ी (पतंग उड़ाने वाला) खींच रहा हो॥3॥

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहूँ पट कहूँ निषंग धनु तीरा॥4॥

लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित पृथ्वी पर मस्तक नवाकर कहा- हे रघुनाथजी! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। यह सुनते ही श्री रघुनाथजी प्रेम में अधीर होकर उठे। कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस, कहीं

धनुष और कहीं बाण॥4॥

दोहा :

बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।

भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान॥240॥

कृपा निधान श्री रामचन्द्रजी ने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदय से लगा लिया! भरतजी और श्री रामजी के मिलन की रीति को देखकर सबको अपनी सुध भूल गई॥240॥

चौपाई :

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी॥

परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई॥1॥

मिलन की प्रीति कैसे बखानी जाए? वह तो कविकुल के लिए कर्म, मन, वाणी तीनों से अगम है। दोनों भाई (भरतजी और श्री रामजी) मन, बुद्धि, चित और अहंकार को भुलाकर परम प्रेम से पूर्ण हो रहे हैं॥1॥

कहहु सुपेम प्रगट को करई। केहि छाया कबि मति अनुसरई॥

कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाचा॥2॥

कहिए, उस श्रेष्ठ प्रेम को कौन प्रकट करे? कवि की बुद्धि किसकी छाया का अनुसरण करे? कवि को तो अक्षर और अर्थ का ही सच्चा बल है। नट ताल की गति के अनुसार ही नाचता है॥2॥

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥

सो मैं कुमति कहीं केहि भाँति। बाज सुराग कि गाँडर ताँती॥3॥

भरतजी और श्री रघुनाथजी का प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता। उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ! भला, गाँडर की ताँत से भी कहीं सुंदर राग बज सकता है?॥3॥ (तालाबों और झीलों में एक तरह की घास होती है, उसे गाँडर कहते हैं।)

मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की। सुरगन सभय धकधकी धरकी॥

समुझाए सुरगुरु जइ जागे। बरषि प्रसून प्रसंसन लागे॥4॥

भरतजी और श्री रामचन्द्रजी के मिलने का ढंग देखकर देवता भयभीत हो गए, उनकी धुकधुकी धड़कने लगी। देव गुरु बृहस्पतिजी ने समझाया, तब कहीं वे मूर्ख चेतें और फूल बरसाकर प्रशंसा करने लगे॥4॥

दोहा :

मिलि सपेम रिपुसूदनहि केवटु भँटेउ राम।

भूरि भायँ भँटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥241॥

फिर श्री रामजी प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर तब केवट (निषादराज) से मिले। प्रणाम करते

हुए लक्ष्मणजी से भरतजी बड़े ही प्रेम से मिले॥241॥

चौपाई :

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥

पुनि मुनिगन दुहँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥1॥

तब लक्ष्मणजी ललककर (बड़ी उमंग के साथ) छोटे भाई शत्रुघ्न से मिले। फिर उन्होंने निषादराज को हृदय से लगा लिया। फिर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाइयों ने (उपस्थित) मुनियों को प्रणाम किया और इच्छित आशीर्वाद पाकर वे आनंदित हुए॥1॥

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥

पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥2॥

छोटे भाई शत्रुघ्न सहित भरतजी प्रेम में उमंगकर सीताजी के चरण कमलों की रज सिर पर धारण कर बार-बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उन्हें उठाकर उनके सिर को अपने करकमल से स्पर्श कर (सिर पर हाथ फेरकर) उन दोनों को बैठाया॥2॥

सीयँ असीस दीन्हि मन माहीं। मनग सनेहँ देह सुधि नाहीं॥

सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥3॥

सीताजी ने मन ही मन आशीर्वाद दिया, क्योंकि वे स्नेह में मग्न हैं, उन्हें देह की सुध-बुध नहीं है। सीताजी को सब प्रकार से अपने अनुकूल देखकर भरतजी सोचरहित हो गए और उनके हृदय का कल्पित भय जाता रहा॥3॥

कोउ किछु कहई न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥

तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥4॥

उस समय न तो कोई कुछ कहता है, न कोई कुछ पूछता है! मन प्रेम से परिपूर्ण है, वह अपनी गति से खाली है (अर्थात् संकल्प-विकल्प और चांचल्य से शून्य है)। उस अवसर पर केवट (निषादराज) धीरज धर और हाथ जोड़कर प्रणाम करके विनती करने लगा-॥4॥

दोहा :

नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।

सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥242॥

हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठजी के साथ सब माताएँ, नगरवासी, सेवक, सेनापति, मंत्री- सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आए हैं॥242॥

चौपाई :

सीलसिंधु मुनि गुर आगवन्। सिय समीप राखे रिपुदवन्॥

चले सबेग रामु तेहि काला। धीर धरम धुर दीनदयाला॥1॥

गुरु का आगमन सुनकर शील के समुद्र श्री रामचन्द्रजी ने सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रख दिया और वे परम धीर, धर्मधुरंधर, दीनदयालु श्री रामचन्द्रजी उसी समय वेग के साथ चल पड़े॥

1॥

गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥

मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोठ भाई॥2॥

गुरुजी के दर्शन करके लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचन्द्रजी प्रेम में भर गए और दण्डवत प्रणाम करने लगे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने दौड़कर उन्हें हृदय से लगा लिया और प्रेम में उमँगकर वे दोनों भाइयों से मिले॥2॥

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तैं दंड प्रनामू॥

राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा॥3॥

फिर प्रेम से पुलकित होकर केवट (निषादराज) ने अपना नाम लेकर दूर से ही वशिष्ठजी को दण्डवत प्रणाम किया। ऋषि वशिष्ठजी ने रामसखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदय से लगा लिया। मानो जमीन पर लोटते हुए प्रेम को समेट लिया हो॥3॥

रघुपति भगति सुमंगल मूला। नभ सराहि सुर बरिसहिं फूला॥

एहि सम निपट नीच कोठ नाहीं। बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं॥4॥

श्री रघुनाथजी की भक्ति सुंदर मंगलों का मूल है, इस प्रकार कहकर सराहना करते हुए देवता आकाश से फूल बरसाने लगे। वे कहने लगे- जगत में इसके समान सर्वथा नीच कोई नहीं और वशिष्ठजी के समान बड़ा कौन है?॥4॥

दोहा :

जेहि लखि लखनहु तैं अधिक मिले मुदित मुनिराउ।

सो सीतापति भजन को प्रगट प्रताप प्रभाउ॥243॥

जिस (निषाद) को देखकर मुनिराज वशिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक उससे आनंदित होकर मिले। यह सब सीतापति श्री रामचन्द्रजी के भजन का प्रत्यक्ष प्रताप और प्रभाव है॥243॥

चौपाई :

आरत लोग राम सबु जाना। करुनाकर सुजान भगवाना॥

जो जेहि भायँ रहा अभिलाषी। तेहि तेहि कै तसि तसि रुख राखी॥1॥

दया की खान, सुजान भगवान श्री रामजी ने सब लोगों को दुःखी (मिलने के लिए व्याकुल) जाना। तब जो जिस भाव से मिलने का अभिलाषी था, उस-उस का उस-उस प्रकार का रुख

रखते हुए (उसकी रुचि के अनुसार)॥1॥

सानुज मिलि पल महँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥2॥

उन्होंने लक्ष्मणजी सहित पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुःख और कठिन संताप को दूर कर दिया। श्री रामचन्द्रजी के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य की (पृथक-पृथक) छाया (प्रतिबिम्ब) एक साथ ही दिखती है॥2॥

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा। पुरजन सकल सराहहिं भागा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥3॥

समस्त पुरवासी प्रेम में उमंगकर केवट से मिलकर (उसके) भाग्य की सराहना करते हैं। श्री रामचन्द्रजी ने सब माताओं को दुःखी देखा। मानो सुंदर लताओं की पंक्तियों को पाला मार गया हो॥3॥

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी॥4॥

सबसे पहले रामजी कैकेयी से मिले और अपने सरल स्वभाव तथा भक्ति से उसकी बुद्धि को तर कर दिया। फिर चरणों में गिरकर काल, कर्म और विधाता के सिर दोष मढ़कर, श्री रामजी ने उनको सान्त्वना दी॥4॥

दोहा :

भेटीं रघुबर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु॥244॥

फिर श्री रघुनाथजी सब माताओं से मिले। उन्होंने सबको समझा-बुझाकर संतोष कराया कि हे माता! जगत ईश्वर के अधीन है। किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए॥244॥

गुरतिय पद बंदे दुहु भाईं। सहित बिप्रतिय जे सँग आईं॥
गंग गौरिसम सब सनमानीं। देहिं असीस मुदित मृदु बानीं॥1॥

फिर दोनों भाइयों ने ब्राह्मणों की स्त्रियों सहित- जो भरतजी के साथ आई थीं, गुरुजी की पत्नी अरुंधतीजी के चरणों की वंदना की और उन सबका गंगाजी तथा गौरीजी के समान सम्मान किया। वे सब आनंदित होकर कोमल वाणी से आशीर्वाद देने लगीं॥1॥

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेंटी संपति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोठ भ्राता। परे पेम ब्याकुल सब गाता॥2॥

तब दोनों भाई पैर पकड़कर सुमित्राजी की गोद में जा चिपटे। मानो किसी अत्यन्त दरिद्र की

सम्पत्ति से भेंट हो गई हो। फिर दोनों भाई माता कौसल्याजी के चरणों में गिर पड़े। प्रेम के मारे उनके सारे अंग शिथिल हैं॥2॥

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए॥

तेहि अवसर कर हरष बिषादू। किमि कबि कहै मूक जिमि स्वादू॥3॥

बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहे हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया। उस समय के हर्ष और विषाद को कवि कैसे कहे? जैसे गूँगा स्वाद को कैसे बतावे?॥3॥

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुर सन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥

पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि तकि उतरेउ लोगू॥4॥

श्री रघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित माता कौसल्या से मिलकर गुरु से कहा कि आश्रम पर पधारिए। तदनन्तर मुनीश्वर वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर अयोध्यावासी सब लोग जल और थल का सुभीता देख-देखकर उतर गए॥4॥

दोहा :

महिसुर मंत्री मातु गुरु गने लोग लिए साथ।

पावन आश्रम गवनु किए भरत लखन रघुनाथ॥245॥

ब्राह्मण, मंत्री, माताएँ और गुरु आदि गिने-चुने लोगों को साथ लिए हुए, भरतजी, लक्ष्मणजी और श्री रघुनाथजी पवित्र आश्रम को चले॥245॥

चौपाई :

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी॥

गुरपतिनिहि मुनितियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता॥1॥

सीताजी आकर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजी के चरणों लगीं और उन्होंने मन माँगी उचित आशीष पाई। फिर मुनियों की स्त्रियों सहित गुरु पत्नी अरुन्धतीजी से मिलीं। उनका जितना प्रेम था, वह कहा नहीं जाता॥1॥

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिरबचन लहे प्रिय जी के।

सासु सकल सब सीयँ निहारीं। मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥2॥

सीताजी ने सभी के चरणों की अलग-अलग वंदना करके अपने हृदय को प्रिय (अनुकूल) लगाने वाले आशीर्वाद पाए। जब सुकुमारी सीताजी ने सब सासुओं को देखा, तब उन्होंने सहमकर अपनी आँखें बंद कर लीं॥2॥

परीं बधिक बस मनहुँ मरालीं। काह कीन्ह करतार कुचालीं॥

तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥3॥

(सासुओं की बुरी दशा देखकर) उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो राजहंसिनियाँ अधिक के वश में पड़ गई हों। (मन में सोचने लगीं कि) कुचाली विधाता ने क्या कर डाला? उन्होंने भी सीताजी को देखकर बड़ा दुःख पाया। (सोचा) जो कुछ दैव सहावे, वह सब सहना ही पड़ता है॥3॥

जनकसुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा॥

मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई॥4॥

तब जानकीजी हृदय में धीरज धरकर, नील कमल के समान नेत्रों में जल भरकर, सब सासुओं से जाकर मिलीं। उस समय पृथ्वी पर करुणा (करुण रस) छा गई॥4॥

दोहा :

लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग।

हृदयँ असीसहिं पेम बस रहिअहु भरी सोहाग॥246॥

सीताजी सबके पैरों लग-लगकर अत्यन्त प्रेम से मिल रही हैं और सब सासुएँ स्नेहवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सुहाग से भरी रहो (अर्थात् सदा सौभाग्यवती रहो)॥246॥

चौपाई :

बिकल सनेहँ सीय सब रानीं। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानीं॥

कहि जग गति मायिक मुनिनाथा॥ कहे कछुक परमारथ गाथा॥1॥

सीताजी और सब रानियाँ स्नेह के मारे व्याकुल हैं। तब ज्ञानी गुरु ने सबको बैठ जाने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ वशिष्ठजी ने जगत की गति को मायिक कहकर (अर्थात् जगत माया का है, इसमें कुछ भी नित्य नहीं है, ऐसा कहकर) कुछ परमार्थ की कथाएँ (बातें) कहीं॥1॥

नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥

मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुर धारी॥2॥

तदनन्तर वशिष्ठजी ने राजा दशरथजी के स्वर्ग गमन की बात सुनाई। जिसे सुनकर रघुनाथजी ने दुःसह दुःख पाया और अपने प्रति उनके स्नेह को उनके मरने का कारण विचारकर धीरधुरन्धर श्री रामचन्द्रजी अत्यन्त व्याकुल हो गए॥2॥

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥

सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहूँ राजु अकाजेउ आजू॥3॥

वज्र के समान कठोर, कड़वी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी, सीताजी और सब रानियाँ विलाप करने लगीं। सारा समाज शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गया! मानो राजा आज ही मरे हों॥3॥

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥

व्रत निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहें जलु काहुँ न लीन्हा॥4॥
फिर मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने श्री रामजी को समझाया। तब उन्होंने समाज सहित श्रेष्ठ नदी
मंदाकिनीजी में स्नान किया। उस दिन प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने निर्जल व्रत किया। मुनि
वशिष्ठजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया॥4॥

दोहा :

भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्हा।

श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादरु कीन्हा॥247॥

दूसरे दिन सबेरा होने पर मुनि वशिष्ठजी ने श्री रघुनाथजी को जो-जो आज्ञा दी, वह सब कार्य
प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने श्रद्धा-भक्ति सहित आदर के साथ किया॥247॥

चौपाई :

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी॥

जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला॥1॥

वेदों में जैसा कहा गया है, उसी के अनुसार पिता की क्रिया करके, पाप रूपी अंधकार के नष्ट
करने वाले सूर्यरूप श्री रामचन्द्रजी शुद्ध हुए! जिनका नाम पाप रूपी रूई के (तुरंत जला डालने
के) लिए अग्नि है और जिनका स्मरण मात्र समस्त शुभ मंगलों का मूल है,॥1॥

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुसरिजस।

सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सनराम पिरीते॥2॥

वे (नित्य शुद्ध-बुद्ध) भगवान श्री रामजी शुद्ध हुए! साधुओं की ऐसी सम्मति है कि उनका शुद्ध
होना वैसे ही है जैसा तीर्थों के आवाहन से गंगाजी शुद्ध होती हैं! (गंगाजी तो स्वभाव से ही शुद्ध
हैं, उनमें जिन तीर्थों का आवाहन किया जाता है, उलटे वे ही गंगाजी के सम्पर्क में आने से शुद्ध
हो जाते हैं। इसी प्रकार सच्चिदानंद रूप श्रीराम तो नित्य शुद्ध हैं, उनके संसर्ग से कर्म ही शुद्ध
हो गए।) जब शुद्ध हुए दो दिन बीत गए तब श्री रामचन्द्रजी प्रीति के साथ गुरुजी से बोले-॥2॥

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कंद मूल फल अंबु आहारी॥

सानुज भरतु सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता॥3॥

हे नाथ! सब लोग यहाँ अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। कंद, मूल, फल और जल का ही आहार करते
हैं। भाई शत्रुघ्न सहित भरत को, मंत्रियों को और सब माताओं को देखकर मुझे एक-एक पल
युग के समान बीत रहा है॥3॥

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ॥

बहुत कहेँ सब कियेँ ठिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाँई॥4॥

अतः सबके साथ आप अयोध्यापुरी को पधारिए (लौट जाइए)। आप यहाँ हैं और राजा अमरावती (स्वर्ग) में हैं (अयोध्या सूनी है)! मैंने बहुत कह डाला, यह सब बड़ी ढिठाई की है। हे गोसाईं! जैसा उचित हो, वैसा ही कीजिए॥4॥

दोहा :

धर्म सेतु करुनायतन कस न कहु अस राम।

लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम॥248॥

(वशिष्ठजी ने कहा-) हे राम! तुम धर्म के सेतु और दया के धाम हो, तुम भला ऐसा क्यों न कहो? लोग दुःखी हैं। दो दिन तुम्हारा दर्शन कर शांति लाभ कर लें॥248॥

चौपाई :

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू॥

सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहुँ मारुत अनुकूला॥1॥

श्री रामजी के वचन सुनकर सारा समाज भयभीत हो गया। मानो बीच समुद्र में जहाज डगमगा गया हो, परन्तु जब उन्होंने गुरु वशिष्ठजी की श्रेष्ठ कल्याणमूलक वाणी सुनी, तो उस जहाज के लिए मानो हवा अनुकूल हो गई॥1॥

पावन पयँ तिहुँ काल नहाहीं। जो बिलोकि अघ ओघ नसाहीं॥

मंगलमूर्ति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि॥2॥

सब लोग पवित्र पयस्विनी नदी में (अथवा पयस्विनी नदी के पवित्र जल में) तीनों समय (सबेरे, दोपहर और सायंकाल) स्नान करते हैं, जिसके दर्शन से ही पापों के समूह नष्ट हो जाते हैं और मंगल मूर्ति श्री रामचन्द्रजी को दण्डवत प्रणाम कर-करके उन्हें नेत्र भर-भरकर देखते हैं॥2॥

राम सैल बन देखन जाहीं। जहँ सुख सकल सकल दुख नाहीं॥

झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी॥3॥

सब श्री रामचन्द्रजी के पर्वत (कामदगिरि) और वन को देखने जाते हैं, जहाँ सभी सुख हैं और सभी दुःखों का अभाव है। झरने अमृत के समान जल झरते हैं और तीन प्रकार की (शीतल, मंद, सुगंध) हवा तीनों प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) तापों को हर लेती है॥

3॥

बिटप बेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥

सुंदर सिला सुखद तरु छाहीं। जाइ बरनि बन छबि केहि पाहीं॥4॥

असंख्य जात के वृक्ष, लताएँ और तृण हैं तथा बहुत तरह के फल, फूल और पत्ते हैं। सुंदर शिलाएँ हैं। वृक्षों की छाया सुख देने वाली है। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है?॥

दोहा :

सरनि सरोरुह जल बिहग कूजत गुंजत भृंग।

बैर बिगत बिहरत बिपिन मृग बिहंग बहुरंग॥249॥

तालाबों में कमल खिल रहे हैं, जल के पक्षी कूज रहे हैं, भौरें गुंजार कर रहे हैं और बहुत रंगों के पक्षी और पशु वन में वैररहित होकर विहार कर रहे हैं॥249॥

चौपाई :

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुंदर स्वादु सुधा सी॥

भरि भरि परन पुटीं रचि रूरी। कंद मूल फल अंकुर जूरी॥1॥

कोल, किरात और भील आदि वन के रहने वाले लोग पवित्र, सुंदर एवं अमृत के समान स्वादिष्ट मधु (शहद) को सुंदर दोने बनाकर और उनमें भर-भरकर तथा कंद, मूल, फल और अंकुर आदि की जूड़ियों (अँटियों) को॥1॥

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वाद भेद गुण नामा॥

देहिं लोग बहु मोल न लेहीं। फेरत राम दोहाई देहीं॥2॥

सबको विनय और प्रणाम करके उन चीजों के अलग-अलग स्वाद, भेद (प्रकार), गुण और नाम बता-बताकर देते हैं। लोग उनका बहुत दाम देते हैं, पर वे नहीं लेते और लौटा देने में श्री रामजी की दुहाई देते हैं॥2॥

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु पेम पहिचानी॥

तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥3॥

प्रेम में मग्न हुए वे कोमल वाणी से कहते हैं कि साधु लोग प्रेम को पहचानकर उसका सम्मान करते हैं (अर्थात् आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए, दाम देकर या वस्तुएँ लौटाकर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए)। आप तो पुण्यात्मा हैं, हम नीच निषाद हैं। श्री रामजी की कृपा से ही हमने आप लोगों के दर्शन पाए हैं॥3॥

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥

राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजठ चहिअ जस राजा॥4॥

हम लोगों को आपके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं, जैसे मरुभूमि के लिए गंगाजी की धारा दुर्लभ है! (देखिए) कृपालु श्री रामचन्द्रजी ने निषाद पर कैसी कृपा की है। जैसे राजा हैं वैसा ही उनके परिवार और प्रजा को भी होना चाहिए॥4॥

दोहा :

यह जियँ जानि सँकोचु तजि करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतार्थ करनलगि फल तृण अंकुर लेहु॥250॥

हृदय में ऐसा जानकर संकोच छोड़कर और हमारा प्रेम देखकर कृपा कीजिए और हमको कृतार्थ करने के लिए ही फल, तृण और अंकुर लीजिए॥250॥

चौपाई :

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे॥
देब काह हम तुम्हहि गोसाँई। ईधनु पात किरात मिताई॥1॥

आप प्रिय पाहुने वन में पधारे हैं। आपकी सेवा करने के योग्य हमारे भाग्य नहीं हैं। हे स्वामी! हम आपको क्या देंगे? भीलों की मित्रता तो बस, ईधन (लकड़ी) और पत्तों ही तक है॥1॥

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥
हम जइ जीव जीव गन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती॥2॥

हमारी तो यही बड़ी भारी सेवा है कि हम आपके कपड़े और बर्तन नहीं चुरा लेते। हम लोग जड़ जीव हैं, जीवों की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं॥2॥

पाप करत निसि बासर जाहीं। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं॥
सपनेहुँ धरमबुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ॥3॥

हमारे दिन-रात पाप करते ही बीतते हैं। तो भी न तो हमारी कमर में कपड़ा है और न पेट ही भरते हैं। हममें स्वप्न में भी कभी धर्मबुद्धि कैसी? यह सब तो श्री रघुनाथजी के दर्शन का प्रभाव है॥3॥

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्ह के भाग सराहन लागे॥4॥

जब से प्रभु के चरण कमल देखे, तब से हमारे दुःसह दुःख और दोष मिट गए। वनवासियों के वचन सुनकर अयोध्या के लोग प्रेम में भर गए और उनके भाग्य की सराहना करने लगे॥4॥

छन्द :

लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावहीं
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावहीं॥
नर नारि निदरहिं नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा॥

सब उनके भाग्य की सराहना करने लगे और प्रेम के वचन सुनाने लगे। उन लोगों के बोलने और मिलने का ढंग तथा श्री सीता-रामजी के चरणों में उनका प्रेम देखकर सब सुख पा रहे हैं।

उन कोल-भीलों की वाणी सुनकर सभी नर-नारी अपने प्रेम का निरादर करते हैं (उसे धिक्कार देते हैं)। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह रघुवंशमणि श्री रामचन्द्रजी की कृपा है कि लोहा नौका को अपने ऊपर लेकर तैर गया॥

सोरठा :

बिहरहिं बन चहु ओर प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यों दादुर मोर भए पीन पावस प्रथम॥251॥

सब लोग दिनोंदिन परम आनंदित होते हुए वन में चारों ओर विचरते हैं। जैसे पहली वर्षा के जल से मेंढक और मोर मोटे हो जाते हैं (प्रसन्न होकर नाचते-कूदते हैं)॥251॥

चौपाई :

पुर जन नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥1॥

अयोध्यापुरी के पुरुष और स्त्री सभी प्रेम में अत्यन्त मग्न हो रहे हैं। उनके दिन पल के समान बीत जाते हैं। जितनी सासुएँ थीं, उतने ही वेष (रूप) बनाकर सीताजी सब सासुओं की आदरपूर्वक एक सी सेवा करती हैं॥1॥

लखा न मरमु राम बिनु काहूँ। माया सब सिय माया माहूँ॥
सीयँ सासु सेवा बस कीन्हीं। तिन्ह लहि सुख सिख आसिष दीन्हीं॥2॥

श्री रामचन्द्रजी के सिवा इस भेद को और किसी ने नहीं जाना। सब मायाएँ (पराशक्ति महामाया) श्री सीताजी की माया में ही हैं। सीताजी ने सासुओं को सेवा से वश में कर लिया। उन्होंने सुख पाकर सीख और आशीर्वाद दिए॥2॥

लखि सिय सहित सरल दोठ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥3॥

सीताजी समेत दोनों भाइयों (श्री राम-लक्ष्मण) को सरल स्वभाव देखकर कुटिल रानी कैकेयी भरपेट पछताई। वह पृथ्वी तथा यमराज से याचना करती है, किन्तु धरती बीच (फटकर समा जाने के लिए रास्ता) नहीं देती और विधाता मौत नहीं देता॥3॥

लोकहुँ बेद बिदित कबि कहहीं। राम बिमुख थलु नरक न लहहीं॥
यहु संसठ सब के मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥4॥

लोक और वेद में प्रसिद्ध है और कवि (ज्ञानी) भी कहते हैं कि जो श्री रामजी से विमुख हैं, उन्हें नरक में भी ठौर नहीं मिलती। सबके मन में यह संदेह हो रहा था कि हे विधाता! श्री रामचन्द्रजी का अयोध्या जाना होगा या नहीं॥4॥

दोहा :

निसि न नीद नहिं भूख दिन भरतु बिकल सुचि सोच।
नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सँकोच॥252॥

भरतजी को न तो रात को नींद आती है, न दिन में भूख ही लगती है। वे पवित्र सोच में ऐसे विकल हैं, जैसे नीचे (तल) के कीचड़ में डूबी हुई मछली को जल की कमी से व्याकुलता होती है॥252॥

चौपाई :

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली। ईति भीति जस पाकत साली॥
केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू॥1॥

(भरतजी सोचते हैं कि) माता के मिस से काल ने कुचाल की है। जैसे धान के पकते समय ईति का भय आ उपस्थित हो। अब श्री रामचन्द्रजी का राज्याभिषेक किस प्रकार हो, मुझे तो एक भी उपाय नहीं सूझ पड़ता॥1॥

अवसि फिरहिं गुर आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी॥
मातु कहेहुँ बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ॥2॥

गुरुजी की आज्ञा मानकर तो श्री रामजी अवश्य ही अयोध्या को लौट चलेंगे, परन्तु मुनि वशिष्ठजी तो श्री रामचन्द्रजी की रुचि जानकर ही कुछ कहेंगे। (अर्थात् वे श्री रामजी की रुचि देखे बिना जाने को नहीं कहेंगे)। माता कौसल्याजी के कहने से भी श्री रघुनाथजी लौट सकते हैं, पर भला, श्री रामजी को जन्म देने वाली माता क्या कभी हठ करेगी?॥2॥

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महुँ कुसमउ बाम बिधाता॥
जौं हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि तें गुरु सेवक धरमू॥3॥

मुझ सेवक की तो बात ही कितनी है? उसमें भी समय खराब है (मेरे दिन अच्छे नहीं हैं) और विधाता प्रतिकूल है। यदि मैं हठ करता हूँ तो यह घोर कुकर्म (अधर्म) होगा, क्योंकि सेवक का धर्म शिवजी के पर्वत कैलास से भी भारी (निबाहने में कठिन) है॥3॥

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिर नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥4॥

एक भी युक्ति भरतजी के मन में न ठहरी। सोचते ही सोचते रात बीत गई। भरतजी प्रातःकाल स्नान करके और प्रभु श्री रामचन्द्रजी को सिर नवाकर बैठे ही थे कि ऋषि वशिष्ठजी ने उनको बुलवा भेजा॥4॥

दोहा :

गुर पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।

बिप्र महाजन सचिव सब जुरे सभासद आइ॥253॥

भरतजी गुरु के चरणकमलों में प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठ गए। उसी समय ब्राह्मण, महाजन, मंत्री आदि सभी सभासद आकर जुट गए॥253॥

चौपाई :

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना॥

धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा रामु स्वबस भगवानू॥1॥

श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठजी समयोचित वचन बोले- हे सभासदों! हे सुजान भरत! सुनो। सूर्यकुल के सूर्य महाराज श्री रामचन्द्र धर्मधुरंधर और स्वतंत्र भगवान हैं॥1॥

सत्यसंध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मंगल हेतु॥

गुर पितु मातु बचन अनुसारी। खल दलु दलन देव हितकारी॥2॥

वे सत्य प्रतिज्ञ हैं और वेद की मर्यादा के रक्षक हैं। श्री रामजी का अवतार ही जगत के कल्याण के लिए हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के हितकारी हैं॥2॥

नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोठ न राम सम जान जथारथु॥

बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला॥3॥

नीति, प्रेम, परमार्थ और स्वार्थ को श्री रामजी के समान यथार्थ (तत्त्व से) कोई नहीं जानता।

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल,॥3॥

अहिप महिप जहँ लगी प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई॥

करि बिचार जियँ देखहु नीकै। राम रजाइ सीस सबही कै॥4॥

शेषजी और (पृथ्वी एवं पाताल के अन्यान्य) राजा आदि जहाँ तक प्रभुता है और योग की सिद्धियाँ, जो वेद और शास्त्रों में गाई गई हैं, हृदय में अच्छी तरह विचार कर देखो, (तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि) श्री रामजी की आज्ञा इन सभी के सिर पर है (अर्थात् श्री रामजी ही सबके एक मात्र महान महेश्वर हैं)॥4॥

दोहा :

राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।

समुझि सयाने करहु अब सब मिलि संमत सोइ॥254॥

अतएव श्री रामजी की आज्ञा और रुख रखने में ही हम सबका हित होगा। (इस तत्त्व और रहस्य को समझकर) अब तुम सयाने लोग जो सबको सम्मत हो, वही मिलकर करो॥254॥

चौपाई :

सब कहूँ सुखद राम अभिषेक। मंगल मोद मूल मग एक॥

केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥1॥

श्री रामजी का राज्याभिषेक सबके लिए सुखदायक है। मंगल और आनंद का मूल यही एक मार्ग है। (अब) श्री रघुनाथजी अयोध्या किस प्रकार चलें? विचारकर कहो, वही उपाय किया जाए॥1॥

सब सादर सुनि मुनिबर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी॥

उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥2॥

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी की नीति, परमार्थ और स्वार्थ (लौकिक हित) में सनी हुई वाणी सबने आदरपूर्वक सुनी। पर किसी को कोई उत्तर नहीं आता, सब लोग भोले (विचार शक्ति से रहित) हो गए। तब भरत ने सिर नवाकर हाथ जोड़े॥2॥

भानुबंस भए भूप घनेरे। अधिक एक तें एक बड़ेरे॥

जनम हेतु सब कहँ कितु माता। करम सुभासुभ देइ विधाता॥3॥

(और कहा-) सूर्यवंश में एक से एक अधिक बड़े बहुत से राजा हो गए हैं। सभी के जन्म के कारण पिता-माता होते हैं और शुभ-अशुभ कर्मों को (कर्मों का फल) विधाता देते हैं॥3॥

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राठरि जगु जाना॥

सो गोसाइँ बिधि गति जेहिं छँकी। सकइ को टारि टेक जो टेकी॥4॥

आपकी आशीष ही एक ऐसी है, जो दुःखों का दमन करके, समस्त कल्याणों को सज देती है, यह जगत जानता है। हे स्वामी! आप ही हैं, जिन्होंने विधाता की गति (विधान) को भी रोक दिया। आपने जो टेक टेक दी (जो निश्चय कर दिया) उसे कौन टाल सकता है?॥4॥

बूझिअ मोहि उपाठ अब सो सब मोर अभागु।

सुनि सनेहमय बचनगुर उर उमगा अनुरागु॥255॥

अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं, यह सब मेरा अभाग्य है। भरतजी के प्रेममय वचनों को सुनकर गुरुजी के हृदय में प्रेम उमड़ आया॥255॥

चौपाई :

तात बात फुरि राम कृपाहीं। राम बिमुख सिधि सपनेहुँ नाहीं॥

सकुचउँ तात कहत एक बाता। अरथ तजहिं बुध सरबस जाता॥1॥

(वे बोले-) हे तात! बात सत्य है, पर है रामजी की कृपा से ही। राम विमुख को तो स्वप्न में भी सिद्धि नहीं मिलती। हे तात! मैं एक बात कहने में सकुचाता हूँ। बुद्धिमान लोग सर्वस्व जाता देखकर (आधे की रक्षा के लिए) आधा छोड़ दिया करते हैं॥1॥

तुम्ह कानन गवनहु दोठ भाई। फेरिअहिं लखन सीय रघुराई॥

सुनि सुबचन हरषे दोठ भाता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥2॥

अतः तुम दोनों भाई (भरत-शत्रुघ्न) वन को जाओ और लक्ष्मण, सीता और श्री रामचन्द्र को लौटा दिया जाए। ये सुंदर वचन सुनकर दोनों भाई हर्षित हो गए। उनके सारे अंग परमानंद से परिपूर्ण हो गए॥2॥

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राठ रामु भए राजा॥

बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी॥3॥

उनके मन प्रसन्न हो गए। शरीर में तेज सुशोभित हो गया। मानो राजा दशरथजी उठे हों और श्री रामचन्द्रजी राजा हो गए हों! अन्य लोगों को तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥3॥

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे॥

कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि तैं अधिक न मोर सुपासू॥4॥

भरतजी कहने लगे- मुनि ने जो कहा, वह करने से जगतभर के जीवों को उनकी इच्छित वस्तु देने का फल होगा। (चौदह वर्ष की कोई अवधि नहीं) मैं जन्मभर वन में वास करूँगा। मेरे लिए इससे बढ़कर और कोई सुख नहीं है॥4॥

दोहा :

अंतरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।

जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचनु प्रवान॥256॥

श्री रामचन्द्रजी और सीताजी हृदय की जानने वाले हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप यह सत्य कह रहे हैं तो हे नाथ! अपने वचनों को प्रमाण कीजिए (उनके अनुसार व्यवस्था कीजिए)॥256॥

चौपाई :

भरत बचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भए बिदेहू॥

भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी॥1॥

भरतजी के वचन सुनकर और उनका प्रेम देखकर सारी सभा सहित मुनि वशिष्ठजी विदेह हो गए (किसी को अपने देह की सुधि न रही)। भरतजी की महान महिमा समुद्र है, मुनि की बुद्धि उसके तट पर अबला स्त्री के समान खड़ी है॥1॥

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावति नाव न बोहितु बेरा॥

औरु करिहि को भरत बड़ाई। सरसी सीपि कि सिंधु समाई॥2॥

वह (उस समुद्र के) पार जाना चाहती है, इसके लिए उसने हृदय में उपाय भी ढूँढे! पर (उसे पार करने का साधन) नाव, जहाज या बेड़ा कुछ भी नहीं पाती। भरतजी की बड़ाई और कौन करेगा?
तलैया की सीपी में भी कहीं समुद्र समा सकता है?॥2॥

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥3॥

मुनि वशिष्ठजी की अन्तरात्मा को भरतजी बहुत अच्छे लगे और वे समाज सहित श्री रामजी के पास आए। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने प्रणाम कर उत्तम आसन दिया। सब लोग मुनि की आज्ञा सुनकर बैठ गए॥3॥

बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥

सुनहु राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥4॥

श्रेष्ठ मुनि देश, काल और अवसर के अनुसार विचार करके वचन बोले- हे सर्वज्ञ! हे सुजान! हे धर्म, नीति, गुण और ज्ञान के भण्डार राम! सुनिए-॥4॥

दोहा :

सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।

पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥257॥

आप सबके हृदय के भीतर बसते हैं और सबके भले-बुरे भाव को जानते हैं, जिसमें पुरवासियों का, माताओं का और भरत का हित हो, वही उपाय बतलाइए॥257॥

चौपाई :

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥

सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ॥ नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ॥1॥

आर्त (दुःखी) लोग कभी विचारकर नहीं कहते। जुआरी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनि के वचन सुनकर श्री रघुनाथजी कहने लगे- हे नाथ! उपाय तो आप ही के हाथ है॥1॥

सब कर हित रुख राउरि राखें। आयसु किए मुदित फुर भाषें॥

प्रथम जो आयसु मो कहूँ होई। माथें मानि करौं सिख सोई॥2॥

आपका रुख रखने में और आपकी आज्ञा को सत्य कहकर प्रसन्नता पूर्वक पालन करने में ही सबका हित है। पहले तो मुझे जो आज्ञा हो, मैं उसी शिक्षा को माथे पर चढ़ाकर करूँ॥2॥

मुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाईं। सो सब भाँति घटिहि सेवकाईं॥

कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेहँ बिचारु न राखा॥3॥

फिर हे गोसाईं! आप जिसको जैसा कहेंगे वह सब तरह से सेवा में लग जाएगा (आज्ञा पालन करेगा)। मुनि वशिष्ठजी कहने लगे- हे राम! तुमने सच कहा। पर भरत के प्रेम ने विचार को नहीं रहने दिया॥3॥

तेहि तैं कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी॥

मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी॥4॥

इसीलिए मैं बार-बार कहता हूँ, मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गई है। मेरी समझ में तो भरत की रुचि रखकर जो कुछ किया जाएगा, शिवजी साक्षी हैं, वह सब शुभ ही होगा॥4॥

दोहा :

भरत बिनय सादर सुनिअ करिअ बिचारु बहोरि।

करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि॥258॥

पहले भरत की विनती आदरपूर्वक सुन लीजिए, फिर उस पर विचार कीजिए। तब साधुमत, लोकमत, राजनीति और वेदों का निचोड़ (सार) निकालकर वैसा ही (उसी के अनुसार) कीजिए॥

258॥

चौपाई :

गुरु अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥

भरतहि धरम धुरंधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी॥1॥

भरतजी पर गुरुजी का स्नेह देखकर श्री रामचन्द्रजी के हृदय में विशेष आनंद हुआ। भरतजी को धर्मधुरंधर और तन, मन, वचन से अपना सेवक जानकर-॥1॥

बोले गुरु आयस अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला॥

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥2॥

श्री रामचन्द्रजी गुरु की आज्ञा अनुकूल मनोहर, कोमल और कल्याण के मूल वचन बोले- हे नाथ! आपकी सौगंध और पिताजी के चरणों की दुहाई है (मैं सत्य कहता हूँ कि) विश्वभर में भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं॥2॥

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥

राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू॥3॥

जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (परमार्थिक दृष्टि से) भी बड़भागी होते हैं! (फिर) जिस पर आप (गुरु) का ऐसा स्नेह है, उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है?॥3॥

लखि लघु बंधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई॥

भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥4॥

छोटा भाई जानकर भरत के मुँह पर उसकी बड़ाई करने में मेरी बुद्धि सकुचाती है। (फिर भी मैं तो यही कहूँगा कि) भरत जो कुछ कहें, वही करने में भलाई है। ऐसा कहकर श्री रामचन्द्रजी चुप हो रहे॥4॥

दोहा :

तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।

कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कै बात॥259॥

तब मुनि भरतजी से बोले- हे तात! सब संकोच त्यागकर कृपा के समुद्र अपने प्यारे भाई से अपने हृदय की बात कहो॥259॥

चौपाई :

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुरु साहिब अनुकूल अघाई॥

लखि अपनैँ सिर सबु छरु भारु। कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारु॥1॥

मुनि के वचन सुनकर और श्री रामचन्द्रजी का रुख पाकर गुरु तथा स्वामी को भरपेट अपने अनुकूल जानकर सारा बोझ अपने ही ऊपर समझकर भरतजी कुछ कह नहीं सकते। वे विचार करने लगे॥1॥

पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढे। नीरज नयन नेह जल बाढे॥

कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि तें अधिक कहीं में काहा॥2॥

शरीर से पुलकित होकर वे सभा में खड़े हो गए। कमल के समान नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की बाढ़ आ गई। (वे बोले-) मेरा कहना तो मुनिनाथ ने ही निबाह दिया (जो कुछ मैं कह सकता था वह उन्होंने ही कह दिया)। इससे अधिक मैं क्या कहूँ?॥2॥

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥

मो पर कृपा सनेहु बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥3॥

अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूँ। वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते। मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है। मैंने खेल में भी कभी उनकी रीस (अप्रसन्नता) नहीं देखी॥3॥

सिसुपन तें परिहरेउँ न संगू। कबहूँ न कीन्ह मोर मन भंगू॥

मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहूँ खेल जितावहिं मोही॥4॥

बचपन में ही मैंने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा (मेरे मन के प्रतिकूल कोई काम नहीं किया)। मैंने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भलीभाँति देखा है (अनुभव किया है)। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं॥4॥

दोहा :

महँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।

दरसन तृपित न आजु लागि प्रेम पिआसे नैन॥260॥

मैंने भी प्रेम और संकोचवश कभी सामने मुँह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए॥260॥

चौपाई :

बिधि न सकेऊ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥

यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनी समुझि साधु सुचि को भा॥1॥

परन्तु विधाता मेरा दुलार न सह सका। उसने नीच माता के बहाने (मेरे और स्वामी के बीच) अंतर डाल दिया। यह भी कहना आज मुझे शोभा नहीं देता, क्योंकि अपनी समझ से कौन साधु और पवित्र हुआ है? (जिसको दूसरे साधु और पवित्र मानें, वही साधु है)॥1॥

मातु मंदि में साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥

फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि संबुक काली॥2॥

माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु हूँ, ऐसा हृदय में लाना ही करोड़ों दुराचारों के समान है। क्या कोदों की बाली उत्तम धान फल सकती है? क्या काली घोंघी मोती उत्पन्न कर सकती है?॥2॥

सपनेहूँ दोसक लेसु न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू॥

बिनु समुझें निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू॥3॥

स्वप्न में भी किसी को दोष का लेश भी नहीं है। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है। मैंने अपने पापों का परिणाम समझे बिना ही माता को कटु वचन कहकर व्यर्थ ही जलाया॥3॥

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहिं भल मोरा॥

गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू॥4॥

मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया (मेरी भलाई का कोई साधन नहीं सूझता)। एक ही प्रकार भले ही (निश्चय ही) मेरा भला है। वह यह है कि गुरु महाराज सर्वसमर्थ हैं और श्री सीता-रामजी मेरे स्वामी हैं। इसी से परिणाम मुझे अच्छा जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

साधु सभाँ गुर प्रभु निकट कहउँ सुथल सतिभाउ।

प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर जानहिं मुनि रघुराउ॥261॥

साधुओं की सभा में गुरुजी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ स्थान में मैं सत्य भाव से

कहता हूँ। यह प्रेम है या प्रपंच (छल-कपट)? झूठ है या सच? इसे (सर्वज्ञ) मुनि वशिष्ठजी और (अन्तर्यामी) श्री रघुनाथजी जानते हैं॥261॥

चौपाई :

भूपति मरन प्रेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी॥

देखि न जाहिं बिकल महतारीं। जरहिं दुसह जर पुर नर नारीं॥1॥

प्रेम के प्रण को निबाहकर महाराज (पिताजी) का मरना और माता की कुबुद्धि, दोनों का सारा संसार साक्षी है। माताएँ व्याकुल हैं, वे देखी नहीं जातीं। अवधपुरी के नर-नारी दुःसह ताप से जल रहे हैं॥1॥

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिऊँ सब सूला॥

सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा॥2॥

बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकरु साखि रहेऊँ एहि घाएँ॥

बहुरि निहारि निषाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भयउ न बेहू॥3॥

मैं ही इन सारे अनर्थों का मूल हूँ, यह सुन और समझकर मैंने सब दुःख सहा है। श्री रघुनाथजी लक्ष्मण और सीताजी के साथ मुनियों का सा वेष धारणकर बिना जूते पहने पाँव-प्यादे (पैदल) ही वन को चले गए, यह सुनकर, शंकरजी साक्षी हैं, इस घाव से भी मैं जीता रह गया (यह सुनते ही मेरे प्राण नहीं निकल गए)! फिर निषादराज का प्रेम देखकर भी इस वज्र से भी कठोर हृदय में छेद नहीं हुआ (यह फटा नहीं)॥2-3॥

अब सबु आँखिन्ह देखेऊँ आई। जिअत जीव जइ सबइ सहाई॥

जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहिं बिषम बिषु तामस तीछी॥4॥

अब यहाँ आकर सब आँखों देख लिया। यह जइ जीव जीता रह कर सभी सहावेगा। जिनको देखकर रास्ते की साँपिनी और बीछी भी अपने भयानक विष और तीव्र क्रोध को त्याग देती हैं-॥4॥

दोहा :

तेइ रघुनंदनु लखनु सिय अनहित लागे जाहि।

तासु तनय तजि दुसह दुख दैउ सहावइ काहि॥262॥

वे ही श्री रघुनंदन, लक्ष्मण और सीता जिसको शत्रु जान पड़े, उस कैकेयी के पुत्र मुझको छोड़कर दैव दुःसह दुःख और किसे सहावेगा?॥262॥

चौपाई :

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी॥

सोक मगन सब सभाँ खभारू। मनहुँ कमल बन परेउ तुसारू॥1॥

अत्यन्त व्याकुल तथा दुःख, प्रेम, विनय और नीति में सनी हुई भरतजी की श्रेष्ठ वाणी सुनकर सब लोग शोक में मग्न हो गए, सारी सभा में विषाद छा गया। मानो कमल के वन पर पाला पड़ गया हो॥1॥

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी॥

बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥2॥

तब ज्ञानी मुनि वशिष्ठजी ने अनेक प्रकार की पुरानी (ऐतिहासिक) कथाएँ कहकर भरतजी का समाधान किया। फिर सूर्यकुल रूपी कुमुदवन के प्रफुल्लित करने वाले चन्द्रमा श्री रघुनंदन उचित वचन बोले-॥2॥

तात जायँ जियँ करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥

तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥3॥

हे तात! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। मेरे मत में (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालों और (स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल) तीनों लोकों के सब पुण्यात्मा पुरुष तुम से नीचे हैं॥3॥

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई॥

दोसु देहिं जननिहि जइ तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥4॥

हृदय में भी तुम पर कुटिलता का आरोप करने से यह लोक (यहाँ के सुख, यश आदि) बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है (मरने के बाद भी अच्छी गति नहीं मिलती)। माता कैकेयी को तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है॥4॥

दोहा :

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।

लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥263॥

हे भरत! तुम्हारा नाम स्मरण करते ही सब पाप, प्रपंच (अज्ञान) और समस्त अमंगलों के समूह मिट जाएँगे तथा इस लोक में सुंदर यश और परलोक में सुख प्राप्त होगा॥263॥

चौपाई :

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥

तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहिं दुरइ दुराएँ॥1॥

हे भरत! मैं स्वभाव से ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रखी रह रही

है। हे तात! तुम व्यर्थ कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाए नहीं छिपते॥1॥

मुनिगन निकट बिहग मृग जाहीं। बाधक बधिक बिलोकि पराहीं॥

हित अनहित पसु पच्छिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥2॥

पक्षी और पशु मुनियों के पास (बेधड़क) चले जाते हैं, पर हिंसा करने वाले बधिकों को देखते ही भाग जाते हैं। मित्र और शत्रु को पशु-पक्षी भी पहचानते हैं। फिर मनुष्य शरीर तो गुण और ज्ञान का भंडार ही है॥2॥

तात तुम्हहि में जानउँ नीकें। करौं काह असमंजस जीकें॥

राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥3॥

हे तात! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। क्या करूँ? जी में बड़ा असमंजस (दुविधा) है। राजा ने मुझे त्याग कर सत्य को रखा और प्रेम-प्रण के लिए शरीर छोड़ दिया॥3॥

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तैं अधिक तुम्हार संकोचू॥

ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा॥4॥

उनके वचन को मेटते मन में सोच होता है। उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। उस पर भी गुरुजी ने मुझे आज्ञा दी है, इसलिए अब तुम जो कुछ कहो, अवश्य ही मैं वही करना चाहता हूँ॥

4॥

दोहा :

मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु।

सत्यसंध रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥264॥

तुम मन को प्रसन्न कर और संकोच को त्याग कर जो कुछ कहो, मैं आज वही करूँ। सत्य प्रतिज्ञ रघुकुल श्रेष्ठ श्री रामजी का यह वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया॥264॥

चौपाई :

सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥

बनत उपाउ करत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥1॥

देवगणों सहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे कि अब बना-बनाया काम बिगड़ना ही चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे सब मन ही मन श्री रामजी की शरण गए॥1॥

बहुरि बिचारि परस्पर कहहीं। रघुपति भगत भगति बस अहहीं॥

सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥2॥

फिर वे विचार करके आपस में कहने लगे कि श्री रघुनाथजी तो भक्त की भक्ति के वश हैं। अम्बरीष और दुर्वासा की (घटना) याद करके तो देवता और इन्द्र बिल्कुल ही निराश हो गए॥2॥

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रह्लादा॥

लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥3॥

पहले देवताओं ने बहुत समय तक दुःख सहे। तब भक्त प्रह्लाद ने ही नृसिंह भगवान को प्रकट किया था। सब देवता परस्पर कानों से लग-लगकर और सिर धुनकर कहते हैं कि अब (इस बार) देवताओं का काम भरतजी के हाथ है॥3॥

आन उपाठ न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा॥

हियँ सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन शील राम बस करतहि॥4॥

हे देवताओं! और कोई उपाय नहीं दिखाई देता। श्री रामजी अपने श्रेष्ठ सेवकों की सेवा को मानते हैं (अर्थात् उनके भक्त की कोई सेवा करता है, तो उस पर बहुत प्रसन्न होते हैं)। अतएव अपने गुण और शील से श्री रामजी को वश में करने वाले भरतजी का ही सब लोग अपने-अपने हृदय में प्रेम सहित स्मरण करो॥4॥

दोहा :

सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ भल तुम्हार बड़ भागु।

सकल सुमंगल मूल जग भरत चरन अनुरागु॥265॥

देवताओं का मत सुनकर देवगुरु बृहस्पतिजी ने कहा- अच्छा विचार किया, तुम्हारे बड़े भाग्य हैं। भरतजी के चरणों का प्रेम जगत में समस्त शुभ मंगलों का मूल है॥265॥

चौपाई :

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई॥

भरत भगति तुम्हरें मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई॥1॥

सीतानाथ श्री रामजी के सेवक की सेवा सैकड़ों कामधेनुओं के समान सुंदर है। तुम्हारे मन में भरतजी की भक्ति आई है, तो अब सोच छोड़ दो। विधाता ने बात बना दी॥1॥

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सजह सुभायँ बिबस रघुराऊ॥

मन थिर करहु देव डरु नाहीं। भरतहि जानि राम परिछाहीं॥2॥

हे देवराज! भरतजी का प्रभाव तो देखो। श्री रघुनाथजी सहज स्वभाव से ही उनके पूर्णरूप से वश में हैं। हे देवताओं ! भरतजी को श्री रामचन्द्रजी की परछाई (परछाई की भाँति उनका अनुसरण करने वाला) जानकर मन स्थिर करो, डर की बात नहीं है॥2॥

सुनि सुरगुर सुर संमत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि सकोचू॥

निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥3॥

देवगुरु बृहस्पतिजी और देवताओं की सम्मति (आपस का विचार) और उनका सोच सुनकर

अन्तर्यामी प्रभु श्री रामजी को संकोच हुआ। भरतजी ने अपने मन में सब बोझा अपने ही सिर जाना और वे हृदय में करोड़ों (अनेकों) प्रकार के अनुमान (विचार) करने लगे॥3॥

करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायस आपन नीका॥

निज पन तजि राखेउ पनु मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा॥4॥

सब तरह से विचार करके अंत में उन्होंने मन में यही निश्चय किया कि श्री रामजी की आज्ञा में ही अपना कल्याण है। उन्होंने अपना प्रण छोड़कर मेरा प्रण रखा। यह कुछ कम कृपा और स्नेह नहीं किया (अर्थात् अत्यन्त ही अनुग्रह और स्नेह किया)॥4॥

दोहा :

कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।

करि प्रनामु बोले भरतु जोरि जलज जुग हाथ॥266॥

श्री जानकीनाथजी ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अपार अनुग्रह किया। तदनन्तर भरतजी दोनों करकमलों को जोड़कर प्रणाम करके बोले-॥266॥

चौपाई :

कहाँ कहावों का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥

गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित सूला॥1॥

हे स्वामी! हे कृपा के समुद्र! हे अन्तर्यामी! अब मैं (अधिक) क्या कहूँ और क्या कहाऊँ? गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गई॥1॥

अपडर डरेऊँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें॥

मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई॥2॥

मैं मिथ्या डर से ही डर गया था। मेरे सोच की जड़ ही न थी। दिशा भूल जाने पर हे देव! सूर्य का दोष नहीं है। मेरा दुर्भाग्य, माता की कुटिलता, विधाता की टेढ़ी चाल और काल की कठिनता,॥2॥

पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥

यह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बेद बिदित नहिं गोई॥3॥

इन सबने मिलकर पैर रोपकर (प्रण करके) मुझे नष्ट कर दिया था, परन्तु शरणागत के रक्षक आपने अपना (शरणागत की रक्षा का) प्रण निबाहा (मुझे बचा लिया)। यह आपकी कोई नई रीति नहीं है। यह लोक और वेदों में प्रकट है, छिपी नहीं है॥3॥

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाई॥

देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥4॥

सारा जगत बुरा (करने वाला) हो, किन्तु हे स्वामी! केवल एक आप ही भले (अनुकूल) हों, तो फिर कहिए, किसकी भलाई से भला हो सकता है? हे देव! आपका स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है, वह न कभी किसी के सम्मुख (अनुकूल) है, न विमुख (प्रतिकूल)॥4॥

दोहा :

जाइ निकट पहिचानि तरु छाहँ समनि सब सोच।

मागत अभिमत पाव जग राउ रंकु भल पोच॥267॥

उस वृक्ष (कल्पवृक्ष) को पहचानकर जो उसके पास जाए, तो उसकी छाया ही सारी चिंताओं का नाश करने वाली है। राजा-रंक, भले-बुरे, जगत में सभी उससे माँगते ही मनचाही वस्तु पाते हैं॥

267॥

चौपाई :

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहिं मन संदेहू॥

अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥1॥

गुरु और स्वामी का सब प्रकार से स्नेह देखकर मेरा क्षोभ मिट गया, मन में कुछ भी संदेह नहीं रहा। हे दया की खान! अब वही कीजिए जिससे दास के लिए प्रभु के चित्त में क्षोभ (किसी प्रकार का विचार) न हो॥1॥

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची॥

सेवक हित साहिब सेवकाई। करै सकल सुख लोभ बिहाई॥2॥

जो सेवक स्वामी को संकोच में डालकर अपना भला चाहता है, उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी में है कि वह समस्त सुखों और लोभों को छोड़कर स्वामी की सेवा ही करे॥2॥

स्वारथु नाथ फिरें सबही का। किँ रजाइ कोटि बिधि नीका॥

यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू॥3॥

हे नाथ! आपके लौटने में सभी का स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालन करने में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार (निचोड़) है, समस्त पुण्यों का फल और सम्पूर्ण शुभ गतियों का श्रृंगार है॥3॥

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥

तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥4॥

हे देव! आप मेरी एक विनती सुनकर, फिर जैसा उचित हो वैसा ही कीजिए। राजतिलक की सब सामग्री सजाकर लाई गई है, जो प्रभु का मन माने तो उसे सफल कीजिए (उसका उपयोग

कीजिए)॥4॥

दोहा :

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं में साथ॥268॥

छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिए और (अयोध्या लौटकर) सबको सनाथ कीजिए। नहीं तो किसी तरह भी (यदि आप अयोध्या जाने को तैयार न हों) हे नाथ! लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को लौटा दीजिए और मैं आपके साथ चलूँ॥268॥

चौपाई :

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥1॥

अथवा हम तीनों भाई वन चले जाएँ और हे श्री रघुनाथजी! आप श्री सीताजी सहित (अयोध्या को) लौट जाइए। हे दयासागर! जिस प्रकार से प्रभु का मन प्रसन्न हो, वही कीजिए॥1॥

देवँ दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरें नीति न धरम बिचारू॥

कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥2॥

हे देव! आपने सारा भार (जिम्मेवारी) मुझ पर रख दिया। पर मुझमें न तो नीति का विचार है, न धर्म का। मैं तो अपने स्वार्थ के लिए सब बातें कह रहा हूँ। आर्त (दुःखी) मनुष्य के चित्त में चेत (विवेक) नहीं रहता॥2॥

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥

अस मैं अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥3॥

स्वामी की आज्ञा सुनकर जो उत्तर दे, ऐसे सेवक को देखकर लज्जा भी लजा जाती है। मैं अवगुणों का ऐसा अथाह समुद्र हूँ (कि प्रभु को उत्तर दे रहा हूँ), किन्तु स्वामी (आप) स्नेह वश साधु कहकर मुझे सराहते हैं!॥3॥

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाई न पावा॥

प्रभु पद सपथ कहउँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥4॥

हे कृपालु! अब तो वही मत मुझे भाता है, जिससे स्वामी का मन संकोच न पावे। प्रभु के चरणों की शपथ है, मैं सत्यभाव से कहता हूँ, जगत के कल्याण के लिए एक यही उपाय है॥4॥

दोहा :

प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देब।

सो सिर धरि धरि करिहि सबु मिटिहि अनट अवरेब॥269॥

प्रसन्न मन से संकोच त्यागकर प्रभु जिसे जो आज्ञा देंगे, उसे सब लोग सिर चढ़ा-चढ़ाकर (पालन) करेंगे और सब उपद्रव और उलझनें मिट जाएँगी॥269॥

चौपाई :

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥

असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥1॥

भरतजी के पवित्र वचन सुनकर देवता हर्षित हुए और 'साधु-साधु' कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाए। अयोध्या निवासी असमंजस के वश हो गए (कि देखें अब श्री रामजी क्या कहते हैं) तपस्वी तथा वनवासी लोग (श्री रामजी के वन में बने रहने की आशा से) मन में परम आनन्दित हुए॥1॥

चुपहिं रहे रघुनाथ संकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची॥

जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥2॥

किन्तु संकोची श्री रघुनाथजी चुप ही रह गए। प्रभु की यह स्थिति (मौन) देख सारी सभा सोच में पड़ गई। उसी समय जनकजी के दूत आए, यह सुनकर मुनि वशिष्ठजी ने उन्हें तुरंत बुलवा लिया॥2॥

करि प्रनाम तिन्ह रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥

दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥3॥

उन्होंने (आकर) प्रणाम करके श्री रामचन्द्रजी को देखा। उनका (मुनियों का सा) वेष देखकर वे बहुत ही दुःखी हुए। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने दूतों से बात पूछी कि राजा जनक का कुशल समाचार कहो॥3॥

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥

बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं॥4॥

यह (मुनि का कुशल प्रश्न) सुनकर सकुचाकर पृथ्वी पर मस्तक नवाकर वे श्रेष्ठ दूत हाथ जोड़कर बोले- हे स्वामी! आपका आदर के साथ पूछना, यही हे गोसाईं! कुशल का कारण हो गया॥4॥

दोहा :

नाहिं त कोसलनाथ केँ साथ कुसल गइ नाथ।

मिथिला अवध बिसेष तैं जगु सब भयउ अनाथ॥270॥

नहीं तो हे नाथ! कुशल-क्षेम तो सब कोसलनाथ दशरथजी के साथ ही चली गई। (उनके चले जाने से) यों तो सारा जगत ही अनाथ (स्वामी के बिना असहाय) हो गया, किन्तु मिथिला और अवध तो विशेष रूप से अनाथ हो गया॥270॥

चौपाई :

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोक सोकबस बौरा॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू॥1॥

अयोध्यानाथ की गति (दशरथजी का मरण) सुनकर जनकपुर वासी सभी लोग शोकवश बावले हो गए (सुध-बुध भूल गए)। उस समय जिन्होंने विदेह को (शोकमग्न) देखा, उनमें से किसी को ऐसा न लगा कि उनका विदेह (देहाभिमानरहित) नाम सत्य है! (क्योंकि देहाभिमान से शून्य पुरुष को शोक कैसा?)॥1॥

रानि कुचालि सुनत नरपालहि। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहि॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू॥2॥

रानी की कुचाल सुनकर राजा जनकजी को कुछ सूझ न पड़ा, जैसे मणि के बिना साँप को नहीं सूझता। फिर भरतजी को राज्य और श्री रामचन्द्रजी को वनवास सुनकर मिथिलेश्वर जनकजी के हृदय में बड़ा दुःख हुआ॥2॥

नृप बूझे बुध सचिव समाजू। कहहु बिचारि उचित का आजू॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ। चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ॥3॥

राजा ने विद्वानों और मंत्रियों के समाज से पूछा कि विचारकर कहिए, आज (इस समय) क्या करना उचित है? अयोध्या की दशा समझकर और दोनों प्रकार से असमंजस जानकर 'चलिए या रहिए?' किसी ने कुछ नहीं कहा॥3॥

नृपहिं धीर धरि हृदयँ बिचारी। पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाऊ। आएहु बेगि न होइ लखाऊ॥4॥

(जब किसी ने कोई सम्मति नहीं दी) तब राजा ने धीरज धर हृदय में विचारकर चार चतुर गुप्तचर (जासूस) अयोध्या को भेजे (और उनसे कह दिया कि) तुम लोग (श्री रामजी के प्रति) भरतजी के सद्भाव (अच्छे भाव, प्रेम) या दुर्भाव (बुरा भाव, विरोध) का (यथार्थ) पता लगाकर जल्दी लौट आना, किसी को तुम्हारा पता न लगने पावे॥4॥

दोहा :

गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरतु चार चले तेरहूति॥271॥

गुप्तचर अवध को गए और भरतजी का ढंग जानकर और उनकी करनी देखकर, जैसे ही भरतजी चित्रकूट को चले, वे तिरहुत (मिथिला) को चल दिए॥271॥

चौपाई :

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी॥

सुनि गुर परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेहँ बिकल अति॥1॥

(गुप्त) दूतों ने आकर राजा जनकजी की सभा में भरतजी की करनी का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन किया। उसे सुनकर गुरु, कुटुम्बी, मंत्री और राजा सभी सोच और स्नेह से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई॥

घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे॥2॥

फिर जनकजी ने धीरज धरकर और भरतजी की बड़ाई करके अच्छे योद्धाओं और साहनियों को बुलाया। घर, नगर और देश में रक्षकों को रखकर, घोड़े, हाथी, रथ आदि बहुत सी सवारियाँ सजवाईं॥2॥

दुधरी साधि चले ततकाला। किए विश्रामु न मग महिपाला॥

भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा॥3॥

वे दुघड़िया मुहूर्त साधकर उसी समय चल पड़े। राजा ने रास्ते में कहीं विश्राम भी नहीं किया। आज ही सबेरे प्रयागराज में स्नान करके चले हैं। जब सब लोग यमुनाजी उतरने लगे,॥3॥

खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नायठ माथा॥

साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत बिदा चर कीन्हे॥4॥

तब हे नाथ! हमें खबर लेने को भेजा। उन्होंने (दूतों ने) ऐसा कहकर पृथ्वी पर सिर नवाया। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने कोई छह-सात भीलों को साथ देकर दूतों को तुरंत विदा कर दिया॥4॥

दोहा :

सुनत जनक आगवनु सबु हरषेठ अवध समाजु।

रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु॥272॥

जनकजी का आगमन सुनकर अयोध्या का सारा समाज हर्षित हो गया। श्री रामजी को बड़ा संकोच हुआ और देवराज इन्द्र तो विशेष रूप से सोच के वश में हो गए॥272॥

चौपाई :

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई॥

अस मन आनि मुदित नर नारी। भयठ बहोरि रहब दिन चारी॥1॥

कुटिल कैकेयी मन ही मन गलानि (पश्चाताप) से गली जाती है। किससे कहे और किसको दोष दे? और सब नर-नारी मन में ऐसा विचार कर प्रसन्न हो रहे हैं कि (अच्छा हुआ, जनकजी के आने से) चार (कुछ) दिन और रहना हो गया॥1॥

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥

करि मज्जनु पूजहिं नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥2॥

इस तरह वह दिन भी बीत गया। दूसरे दिन प्रातःकाल सब कोई स्नान करने लगे। स्नान करके सब नर-नारी गणेशजी, गौरीजी, महादेवजी और सूर्य भगवान की पूजा करते हैं॥2॥

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥

राजा रामु जानकी रानी। आनँद अवधि अवध रजधानी॥3॥

फिर लक्ष्मीपति भगवान विष्णु के चरणों की वंदना करके, दोनों हाथ जोड़कर, आँचल पसारकर विनती करते हैं कि श्री रामजी राजा हों, जानकीजी रानी हों तथा राजधानी अयोध्या आनंद की सीमा होकर-॥3॥

सुबस बसठ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥

एहि सुख सुधाँ सींचि सब काहू। देव देहु जग जीवन लाहू॥4॥

फिर समाज सहित सुखपूर्वक बसे और श्री रामजी भरतजी को युवराज बनावें। हे देव! इस सुख रूपी अमृत से सींचकर सब किसी को जगत में जीने का लाभ दीजिए॥4॥

दोहा :

गुर समाज भाइन्ह सहित राम राजु पुर होठ।

अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोठ॥273॥

गुरु, समाज और भाइयों समेत श्री रामजी का राज्य अवधपुरी में हो और श्री रामजी के राजा रहते ही हम लोग अयोध्या में मरें। सब कोई यही माँगते हैं॥273॥

चौपाई :

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहिं जोग बिरति मुनि ग्यानी॥

एहि बिधि नित्यकरम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन॥1॥

अयोध्या वासियों की प्रेममयी वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि भी अपने योग और वैराग्य की निंदा करते हैं। अवधवासी इस प्रकार नित्यकर्म करके श्री रामजी को पुलकित शरीर हो प्रणाम करते हैं॥1॥

ऊँच नीच मध्यम नर नारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी॥

सावधान सबही सनमानहिं। सकल सराहत कृपानिधानहिं॥2॥

ऊँच, नीच और मध्यम सभी श्रेणियों के स्त्री-पुरुष अपने-अपने भाव के अनुसार श्री रामजी का दर्शन प्राप्त करते हैं। श्री रामचन्द्रजी सावधानी के साथ सबका सम्मान करते हैं और सभी कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी की सराहना करते हैं॥2॥

लरिकाइहि तें रघुबर बानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी॥

शील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ॥3॥

श्री रामजी की लड़कपन से ही यह बान है कि वे प्रेम को पहचानकर नीति का पालन करते हैं। श्री रघुनाथजी शील और संकोच के समुद्र हैं। वे सुंदर मुख के (या सबके अनुकूल रहने वाले), सुंदर नेत्र वाले (या सबको कृपा और प्रेम की दृष्टि से देखने वाले) और सरल स्वभाव हैं॥3॥

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे॥

हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे॥4॥

श्री रामजी के गुण समूहों को कहते-कहते सब लोग प्रेम में भर गए और अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि जगत में हमारे समान पुण्य की बड़ी पूँजी वाले थोड़े ही हैं, जिन्हें श्री रामजी अपना करके जानते हैं (ये मेरे हैं ऐसा जानते हैं)॥4॥

दोहा :

प्रेम मगन तेहि समय सब सुनि आवत मिथिलेसु।

सहित सभा संभ्रम उठेउ रबिकुल कमल दिनेसु॥274॥

उस समय सब लोग प्रेम में मग्न हैं। इतने में ही मिथिलापति जनकजी को आते हुए सुनकर सूर्यकुल रूपी कमल के सूर्य श्री रामचन्द्रजी सभा सहित आदरपूर्वक जल्दी से उठ खड़े हुए॥

274॥

चौपाई :

भाइ सचिव गुर पुरजन साथ। आगें गवनु कीन्ह रघुनाथा॥

गिरिबरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥1॥

भाई, मंत्री, गुरु और पुरवासियों को साथ लेकर श्री रघुनाथजी आगे (जनकजी की अगवानी में) चले। जनकजी ने ज्यों ही पर्वत श्रेष्ठ कामदनाथ को देखा, त्यों ही प्रणाम करके उन्होंने रथ छोड़ दिया। (पैदल चलना शुरू कर दिया)॥1॥

राम दरस लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू॥

मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही॥2॥

श्री रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह के कारण किसी को रास्ते की थकावट और क्लेश जरा भी नहीं है। मन तो वहाँ है जहाँ श्री राम और जानकीजी हैं। बिना मन के शरीर के सुख-दुःख की सुध किसको हो?॥2॥

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥

आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥3॥

जनकजी इस प्रकार चले आ रहे हैं। समाज सहित उनकी बुद्धि प्रेम में मतवाली हो रही है। निकट आए देखकर सब प्रेम में भर गए और आदरपूर्वक आपस में मिलने लगे॥3॥

लगे जनक मुनिजन पद बंदन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनंदन॥

भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लवाइ समेत समाजहि॥4॥

जनकजी (वशिष्ठ आदि अयोध्यावासी) मुनियों के चरणों की वंदना करने लगे और श्री रामचन्द्रजी ने (शतानंद आदि जनकपुरवासी) ऋषियों को प्रणाम किया। फिर भाइयों समेत श्री रामजी राजा जनकजी से मिलकर उन्हें समाज सहित अपने आश्रम को लिवा चले॥4॥

दोहा :

आश्रम सागर शांत रस पूरन पावन पाथु।

सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथु॥275॥

श्री रामजी का आश्रम शांत रस रूपी पवित्र जल से परिपूर्ण समुद्र है। जनकजी की सेना (समाज) मानो करुणा (करुण रस) की नदी है, जिसे श्री रघुनाथजी (उस आश्रम रूपी शांत रस के समुद्र में मिलाने के लिए) लिए जा रहे हैं॥275॥

चौपाई :

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥

सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥1॥

यह करुणा की नदी (इतनी बढी हुई है कि) ज्ञान-वैराग्य रूपी किनारों को डुबाती जाती है। शोक भरे वचन नद और नाले हैं, जो इस नदी में मिलते हैं और सोच की लंबी साँसें (आहें) ही वायु के झकोरों से उठने वाली तरंगें हैं, जो धैर्य रूपी किनारे के उत्तम वृक्षों को तोड़ रही हैं॥1॥

बिषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अबर्त अपारा॥

केवट बुध बिद्या बडि नावा। सकहिं न खेइ ऐक नहिं आवा॥2॥

भयानक विषाद (शोक) ही उस नदी की तेज धारा है। भय और भ्रम (मोह) ही उसके असंख्य भँवर और चक्र हैं। विद्वान मल्लाह हैं, विद्या ही बडी नाव है, परन्तु वे उसे खे नहीं सकते हैं, (उस विद्या का उपयोग नहीं कर सकते हैं) किसी को उसकी अटकल ही नहीं आती है॥2॥

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हियँ हारे॥

आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अंबुधि अकुलाई॥3॥

वन में विचरने वाले बेचारे कोल-किरात ही यात्री हैं, जो उस नदी को देखकर हृदय में हारकर थक गए हैं। यह करुणा नदी जब आश्रम-समुद्र में जाकर मिली, तो मानो वह समुद्र अकुला उठा (खौल उठा)॥3॥

सोक बिकल दोठ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा॥

भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही॥4॥

दोनों राज समाज शोक से व्याकुल हो गए। किसी को न ज्ञान रहा, न धीरज और न लाज ही रही। राजा दशरथजी के रूप, गुण और शील की सराहना करते हुए सब रो रहे हैं और शोक समुद्र में डुबकी लगा रहे हैं॥4॥

छन्द :

अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।

दै दोष सकल सरोष बोलहिं बाम बिधि कीन्हो कहा॥

सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।

तुलसी न समरथु कोठ जो तरि सकै सरित सनेह की॥

शोक समुद्र में डुबकी लगाते हुए सभी स्त्री-पुरुष महान व्याकुल होकर सोच (चिंता) कर रहे हैं। वे सब विधाता को दोष देते हुए क्रोधयुक्त होकर कह रहे हैं कि प्रतिकूल विधाता ने यह क्या किया? तुलसीदासजी कहते हैं कि देवता, सिद्ध, तपस्वी, योगी और मुनिगणों में कोई भी समर्थ नहीं है, जो उस समय विदेह (जनकराज) की दशा देखकर प्रेम की नदी को पार कर सके (प्रेम में मग्न हुए बिना रह सके)।

सोरठा :

किए अमित उपदेस जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन्ह।

धीरजु धरिअ नरेस कहेठ बसिष्ठ बिदेह सन॥276॥

जहाँ-तहाँ श्रेष्ठ मुनियों ने लोगों को अपरिमित उपदेश दिए और वशिष्ठजी ने विदेह (जनकजी) से कहा- हे राजन्! आप धैर्य धारण कीजिए॥276॥

चौपाई :

जासु ग्यान रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥

तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥1॥

जिन राजा जनक का ज्ञान रूपी सूर्य भव (आवागमन) रूपी रात्रि का नाश कर देता है और जिनकी वचन रूपी किरणें मुनि रूपी कमलों को खिला देती हैं (आनंदित करती हैं), क्या मोह और ममता उनके निकट भी आ सकते हैं? यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है! (अर्थात् राजा जनक की यह दशा श्री सीता-रामजी के अलौकिक प्रेम के कारण हुई, लौकिक मोह-ममता के कारण नहीं। जो लौकिक मोह-ममता को पार कर चुके हैं, उन पर भी श्री सीता-रामजी का प्रेम अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रहता)॥1॥

बिषई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने॥

राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥2॥

विषयी, साधक और ज्ञानवान सिद्ध पुरुष-जगत में तीन प्रकार के जीव वेदों ने बताए हैं। इन तीनों में जिसका चित्त श्री रामजी के स्नेह से सरस (सराबोर) रहता है, साधुओं की सभा में उसी का बड़ा आदर होता है॥2॥

सोह न राम पेम बिनु ग्यानु। करनधार बिनु जिमि जलजानू॥

मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। राम घाट सब लोग नहाए॥3॥

श्री रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान शोभा नहीं देता, जैसे कर्णधार के बिना जहाज। वशिष्ठजी ने विदेहराज (जनकजी) को बहुत प्रकार से समझाया। तदनंतर सब लोगों ने श्री रामजी के घाट पर स्नान किया॥3॥

सकल सोक संकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥

पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारु। प्रिय परिजन कर कौन बिचारु॥4॥

स्त्री-पुरुष सब शोक से पूर्ण थे। वह दिन बिना ही जल के बीत गया (भोजन की बात तो दूर रही, किसी ने जल तक नहीं पिया)। पशु-पक्षी और हिरनों तक ने कुछ आहार नहीं किया। तब प्रियजनों एवं कुटुम्बियों का तो विचार ही क्या किया जाए?॥4॥

दोहा :

दोउ समाज निमिराजु रघुराजु नहाने प्रात।

बैठे सब बट बिटप तर मन मलीन कृस गात॥277॥

निमिराज जनकजी और रघुराज रामचन्द्रजी तथा दोनों ओर के समाज ने दूसरे दिन सबेरे स्नान किया और सब बड़ के वृक्ष के नीचे जा बैठे। सबके मन उदास और शरीर दुबले हैं॥277॥

चौपाई :

जे महिसुर दसरथ पुर बासी। जे मिथिलापति नगर निवासी॥

हंस बंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा॥1॥

जो दशरथजी की नगरी अयोध्या के रहने वाले और जो मिथिलापति जनकजी के नगर जनकपुर के रहने वाले ब्राह्मण थे तथा सूर्यवंश के गुरु वशिष्ठजी तथा जनकजी के पुरोहित शतानंदजी, जिन्होंने सांसारिक अभ्युदय का मार्ग तथा परमार्थ का मार्ग छान डाला था,॥1॥

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका॥

कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समुझाई सब सभा सुबानी॥2॥

वे सब धर्म, नीति वैराग्य तथा विवेकयुक्त अनेकों उपदेश देने लगे। विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ

(इतिहास) कह-कहकर सारी सभा को सुंदर वाणी से समझाया॥2॥

तब रघुनाथ कौंसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सुब रहेऊ॥

मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढाई॥3॥

तब श्री रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग बिना जल पिए ही रह गए थे। (अब कुछ आहार करना चाहिए)। विश्वामित्रजी ने कहा कि श्री रघुनाथजी उचित ही कह रहे हैं। ढाई पहर दिन (आज भी) बीत गया॥3॥

रिषि रुख लखि कह तेरहुतिराजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥

कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥4॥

विश्वामित्रजी का रुख देखकर तिरहुत राज जनकजी ने कहा- यहाँ अन्न खाना उचित नहीं है। राजा का सुंदर कथन सबके मन को अच्छा लगा। सब आज्ञा पाकर नहाने चले॥4॥

दोहा :

तेहि अवसर फल फूल दल मूल अनेक प्रकार।

लइ आए बनचर बिपुल भरि भरि काँवरि भार॥278॥

उसी समय अनेकों प्रकार के बहुत से फल, फूल, पत्ते, मूल आदि बहंगियों और बोझों में भर-भरकर वनवासी (कोल-किरात) लोग ले आए॥278॥

चौपाई :

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥

सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनंद अनुरागा॥1॥

श्री रामचन्द्रजी की कृपा से सब पर्वत मनचाही वस्तु देने वाले हो गए। वे देखने मात्र से ही दुःखों को सर्वथा हर लेते थे। वहाँ के तालाबों, नदियों, वन और पृथ्वी के सभी भागों में मानो आनंद और प्रेम उमड़ रहा है॥1॥

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला॥

तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू॥2॥

बेलें और वृक्ष सभी फल और फूलों से युक्त हो गए। पक्षी, पशु और भौरें अनुकूल बोलने लगे। उस अवसर पर वन में बहुत उत्साह (आनंद) था, सब किसी को सुख देने वाली शीतल, मंद, सुगंध हवा चल रही थी॥2॥

जाइ न बरनि मनोहरताई। जनु महि करति जनक पहनाई॥

तब सब लोग नहाइ नहाई। राम जनक मुनि आयसु पाई॥3॥

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे॥

दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुंदर सुधा समाना॥4॥

वन की मनोहरता वर्णन नहीं की जा सकती, मानो पृथ्वी जनकजी की पहनाई कर रही है। तब जनकपुर वासी सब लोग नहा-नहाकर श्री रामचन्द्रजी, जनकजी और मुनि की आज्ञा पाकर, सुंदर वृक्षों को देख-देखकर प्रेम में भरकर जहाँ-तहाँ उतरने लगे। पवित्र, सुंदर और अमृत के समान (स्वादिष्ट) अनेकों प्रकार के पत्ते, फल, मूल और कंद-॥3-4॥

दोहा :

सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।

पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फरहार॥279॥

श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी ने सबके पास बोझे भर-भरकर आदरपूर्वक भेजे। तब वे पितर-देवता, अतिथि और गुरु की पूजा करके फलाहार करने लगे॥279॥

चौपाई :

एहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥

दुहु समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥1॥

इस प्रकार चार दिन बीत गए। श्री रामचन्द्रजी को देखकर सभी नर-नारी सुखी हैं। दोनों समाजों के मन में ऐसी इच्छा है कि श्री सीता-रामजी के बिना लौटना अच्छा नहीं है॥1॥

सीता राम संग बनबासू। कोटि अमरपुर सरिस सुपासू॥

परिहरि लखन रामु बैदेही। जेहि घरु भाव बाम बिधि तेही॥2॥

श्री सीता-रामजी के साथ वन में रहना करोड़ों देवलोकों के (निवास के) समान सुखदायक है। श्री लक्ष्मणजी, श्री रामजी और श्री जानकीजी को छोड़कर जिसको घर अच्छा लगे, विधाता उसके विपरीत हैं॥2॥

दाहिन दइउ होइ जब सबही। राम समीप बसिअ बन तबही॥

मंदाकिनि मज्जनु तिहु काला। राम दरसु मुद मंगल माला॥3॥

जब दैव सबके अनुकूल हो, तभी श्री रामजी के पास वन में निवास हो सकता है। मंदाकिनीजी का तीनों समय स्नान और आनंद तथा मंगलों की माला (समूह) रूप श्री राम का दर्शन,॥3॥

अटनु राम गिरि बन तापस थल। असनु अमिअ सम कंद मूल फल॥

सुख समेत संबत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता॥4॥

श्री रामजी के पर्वत (कामदनाथ), वन और तपस्वियों के स्थानों में घूमना और अमृत के समान कंद, मूल, फलों का भोजन। चौदह वर्ष सुख के साथ पल के समान हो जाएँगे (बीत जाएँगे), जाते हुए जान ही न पड़ेंगे॥4॥

दोहा :

एहि सुख जोग न लोग सब कहहिं कहाँ अस भागु।
सहज सुभायँ समाज दुहु राम चरन अनुरागु॥280॥

सब लोग कह रहे हैं कि हम इस सुख के योग्य नहीं हैं, हमारे ऐसे भाग्य कहाँ? दोनों समाजों का श्री रामचन्द्रजी के चरणों में सहज स्वभाव से ही प्रेम है॥280॥

चौपाई :

एहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। बचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥

सीय मातु तेहि समय पठाई। दासीं देखि सुअवसरु आई॥1॥

इस प्रकार सब मनोरथ कर रहे हैं। उनके प्रेमयुक्त वचन सुनते ही (सुनने वालों के) मनो को हर लेते हैं। उसी समय सीताजी की माता श्री सुनयनाजी की भेजी हुई दासियाँ (कौसल्याजी आदि के मिलने का) सुंदर अवसर देखकर आईं॥1॥

सावकास सुनि सब सिय सासू। आयउ जनकराज रनिवासू॥

कौसल्याँ सादर सनमानी। आसन दिए समय सम आनी॥2॥

उनसे यह सुनकर कि सीता की सब सासुएँ इस समय फुरसत में हैं, जनकराज का रनिवास उनसे मिलने आया। कौसल्याजी ने आदरपूर्वक उनका सम्मान किया और समयोचित आसन लाकर दिए॥2॥

सीलु सनेहु सकल दुहु ओरा। द्रवहिं देखि सुनि कुलिस कठोरा॥

पुलक सिथिल तन बारि बिलोचन। महि नख लिखन लगीं सब सोचन॥3॥

दोनों ओर सबके शील और प्रेम को देखकर और सुनकर कठोर वज्र भी पिघल जाते हैं। शरीर पुलकित और शिथिल हैं और नेत्रों में (शोक और प्रेम के) आँसू हैं। सब अपने (पैरों के) नखों से जमीन कुरेदने और सोचने लगीं॥3॥

सब सिय राम प्रीति की सि मूरति। जनु करुना बहु बेष बिसूरति॥

सीय मातु कह बिधि बुधि बाँकी। जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥4॥

सभी श्री सीता-रामजी के प्रेम की मूर्ति सी हैं, मानो स्वयं करुणा ही बहुत से वेष (रूप) धारण करके विसूर रही हो (दुःख कर रही हो)। सीताजी की माता सुनयनाजी ने कहा- विधाता की बुद्धि बड़ी टेढ़ी है, जो दूध के फेन जैसी कोमल वस्तु को वज्र की टाँकी से फोड़ रहा है (अर्थात् जो अत्यन्त कोमल और निर्दोष हैं उन पर विपत्ति पर विपत्ति ढहा रहा है)॥4॥

दोहा :

सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल सब करतूति कराल।

जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल॥281॥

अमृत केवल सुनने में आता है और विष जहाँ-तहाँ प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। विधाता की सभी करतूतें भयंकर हैं। जहाँ-तहाँ कौए, उल्लू और बगुले ही (दिखाई देते) हैं, हंस तो एक मानसरोवर में ही हैं॥281॥

चौपाई :

सुनि ससोच कह देबि सुमित्रा। बिधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥

जो सृजि पालइ हरइ बहोरी। बालकेलि सम बिधि मति भोरी॥1॥

यह सुनकर देवी सुमित्राजी शोक के साथ कहने लगीं- विधाता की चाल बड़ी ही विपरीत और विचित्र है, जो सृष्टि को उत्पन्न करके पालता है और फिर नष्ट कर डालता है। विधाता की बुद्धि बालकों के खेल के समान भोली (विवेक शून्य) है॥1॥

कौसल्या कह दोसु न काहू। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥

कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥2॥

कौसल्याजी ने कहा- किसी का दोष नहीं है, दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्म के अधीन हैं। कर्म की गति कठिन (दुर्विज्ञेय) है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ और अशुभ सभी फलों का देने वाला है॥2॥

ईस रजाइ सीस सबही कें। उत्पति थिति लय बिषहु अमी कें॥

देबि मोह बस सोचिअ बादी। बिधि प्रपंचु अस अचल अनादी॥3॥

ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। उत्पत्ति, स्थिति (पालन) और लय (संहार) तथा अमृत और विष के भी सिर पर है (ये सब भी उसी के अधीन हैं)। हे देवि! मोहवश सोच करना व्यर्थ है। विधाता का प्रपंच ऐसा ही अचल और अनादि है॥3॥

भूपति जिअब मरब उर आनी। सोचिअ सखि लखि निज हित हानी॥

सीय मातु कह सत्य सुबानी। सुकृती अवधि अवधपति रानी॥4॥

महाराज के मरने और जीने की बात को हृदय में याद करके जो चिन्ता करती हैं, वह तो हे सखी! हम अपने ही हित की हानि देखकर (स्वार्थवश) करती हैं। सीताजी की माता ने कहा- आपका कथन उत्तम है और सत्य है। आप पुण्यात्माओं के सीमा रूप अवधपति (महाराज दशरथजी) की ही तो रानी हैं। (फिर भला, ऐसा क्यों न कहेंगी)॥4॥

दोहा :

लखनु रामु सिय जाहुँ बन भल परिनाम न पोचु।

गहबरि हियँ कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु॥282॥

कौसल्याजी ने दुःख भरे हृदय से कहा- श्री राम, लक्ष्मण और सीता वन में जाएँ, इसका परिणाम तो अच्छा ही होगा, बुरा नहीं। मुझे तो भरत की चिन्ता है॥282॥

चौपाई :

ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधू देवसरि बारी॥

राम सपथ में कीन्हि न काऊ। सो करि कहउँ सखी सति भाऊ॥1॥

ईश्वर के अनुग्रह और आपके आशीर्वाद से मेरे (चारों) पुत्र और (चारों) बहुएँ गंगाजी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी! मैंने कभी श्री राम की सौगंध नहीं की, सो आज श्री राम की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूँ-॥1॥

भरत शील गुण बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥

कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥2॥

भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वतीजी की बुद्धि भी हिचकती है। सीप से कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं?॥2॥

जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥

कसैं कनकु मनि पारिखि पाएँ। पुरुष परिखिअहिं समयँ सुभाएँ॥3॥

मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूँ। महाराज ने भी बार-बार मुझे यही कहा था। सोना कसौटी पर कसे जाने पर और रत्न पारखी (जौहरी) के मिलने पर ही पहचाना जाता है। वैसे ही पुरुष की परीक्षा समय पड़ने पर उसके स्वभाव से ही (उसका चरित्र देखकर) हो जाती है॥3॥

अनुचित आजु कहब अस मोरा। सोक सनेहँ सयानप थोरा॥

सुनि सुरसरि सम पावनि बानी। भईं सनेह बिकल सब रानी॥4॥

किन्तु आज मेरा ऐसा कहना भी अनुचित है। शोक और स्नेह में सयानापन (विवेक) कम हो जाता है (लोग कहेंगे कि मैं स्नेहवश भरत की बड़ाई कर रही हूँ)। कौसल्याजी की गंगाजी के समान पवित्र करने वाली वाणी सुनकर सब रानियाँ स्नेह के मारे विकल हो उठीं॥4॥

दोहा :

कौसल्या कह धीर धरि सुनहु देबि मिथिलेसि।

को बिबेकनिधि बल्लभहि तुम्हहि सकइ उपदेसि॥283॥

कौसल्याजी ने फिर धीरज धरकर कहा- हे देवी मिथिलेश्वरी! सुनिए, ज्ञान के भंडार श्री जनकजी की प्रिया आपको कौन उपदेश दे सकता है?॥283॥

चौपाई :

रानि राय सन अवसरु पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई॥

रखिअहिं लखनु भरतु गवनहिं बन। जौं यह मत मानै महीप मन॥1॥

हे रानी! मौका पाकर आप राजा को अपनी ओर से जहाँ तक हो सके समझाकर कहिएगा कि लक्ष्मण को घर रख लिया जाए और भरत वन को जाएँ। यदि यह राय राजा के मन में (ठीक) जँच जाए,॥1॥

तौ भल जतनु करब सुबिचारी। मोरें सोचु भरत कर भारी॥

गूढ सनेह भरत मन माहीं। रहें नीक मोहि लागत नाहीं॥2॥

तो भलीभाँति खूब विचारकर ऐसा यत्न करें। मुझे भरत का अत्यधिक सोच है। भरत के मन में गूढ प्रेम है। उनके घर रहने में मुझे भलाई नहीं जान पड़ती (यह डर लगता है कि उनके प्राणों को कोई भय न हो जाए)॥2॥

लखि सुभाउ सुनि सरल सुबानी। सब भइ मगन करुन रस रानी॥

नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि। सिथिल सनेहँ सिद्ध जोगी मुनि॥3॥

कौसल्याजी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर सब रानियाँ करुण रस में निमग्न हो गईं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गई और धन्य-धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, योगी और मुनि स्नेह से शिथिल हो गए॥3॥

सबु रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ। तब धरि धीर सुमित्राँ कहेऊ॥

देबि दंड जुग जामिनि बीती। राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥4॥

सारा रनिवास देखकर थकित रह गया (निस्तब्ध हो गया), तब सुमित्राजी ने धीरज करके कहा कि हे देवी! दो घड़ी रात बीत गई है। यह सुनकर श्री रामजी की माता कौसल्याजी प्रेमपूर्वक उठीं-॥4॥

दोहाथ बेगि पाउ धारिअ थलहि कह सनेहँ सतिभाय।

हमरें तौ अब ईस गति कै मिथिलेस सहाय॥284॥

और प्रेम सहित सद्भाव से बोलीं- अब आप शीघ्र डेरे को पधारिए। हमारे तो अब ईश्वर ही गति हैं, अथवा मिथिलेश्वर जनकजी सहायक हैं॥284॥

चौपाई :

लखि सनेह सुनि बचन बिनीता। जनकप्रिया गह पाय पुनीता॥

देबि उचित असि बिनय तुम्हारी। दसरथ घरिनि राम महतारी॥1॥

कौसल्याजी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनकजी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिए और कहा- हे देवी! आप राजा दशरथजी की रानी और श्री रामजी की माता हैं। आपकी ऐसी नम्रता उचित ही है॥1॥

प्रभु अपने नीचहु आदरहीं। अग्नि धूम गिरि सिर तिनु धरहीं॥

सेवकु राउ करम मन बानी। सदा सहाय महेसु भवानी॥2॥

प्रभु अपने निज जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धुएँ को और पर्वत तृण (घास) को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्री महादेव-पार्वतीजी हैं॥2॥

रउरे अंग जोगु जग को है। दीप सहाय की दिनकर सोहै॥

रामु जाइ बनू करि सुर काजू। अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥3॥

आपका सहायक होने योग्य जगत में कौन है? दीपक सूर्य की सहायता करने जाकर कहीं शोभा पा सकता है? श्री रामचन्द्रजी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे॥3॥

अमर नाग नर राम बाहुबल। सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥

यह सब जागबलिक कहि राखा। देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥4॥

देवता, नाग और मनुष्य सब श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले ही से कह रखा है। हे देवि! मुनि का कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता॥4॥

दोहा :

अस कहि पग परि प्रेम अति सिय हित बिनय सुनाइ।

सिय समेत सियमातु तब चली सुआयसु पाइ॥285॥

ऐसा कहकर बड़े प्रेम से पैरों पड़कर सीताजी (को साथ भेजने) के लिए विनती करके और सुंदर आज्ञा पाकर तब सीताजी समेत सीताजी की माता डेरे को चलीं॥285॥

चौपाई :

प्रिय परिजनहि मिली बैदेही। जो जेहि जोगु भाँति तेहि तेही॥

तापस बेष जानकी देखी। भा सबु बिकल बिषाद बिसेषी॥1॥

जानकीजी अपने प्यारे कुटुम्बियों से- जो जिस योग्य था, उससे उसी प्रकार मिलीं। जानकीजी को तपस्विनी के वेष में देखकर सभी शोक से अत्यन्त व्याकुल हो गए॥1॥

जनक राम गुर आयसु पाई। चले थलहि सिय देखी आई॥

लीन्हि लाइ उर जनक जानकी। पाहुनि पावन प्रेम प्रान की॥2॥

जनकजी श्री रामजी के गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर डेरे को चले और आकर उन्होंने सीताजी को देखा। जनकजी ने अपने पवित्र प्रेम और प्राणों की पाहुनी जानकीजी को हृदय से लगा

लिया॥2॥

उर उमगेठ अंबुधि अनुरागू। भयउ भूप मनु मनहुँ पयागू॥

सिय सनेह बटु बाढत जोहा। ता पर राम पेम सिसु सोहा॥3॥

उनके हृदय में (वात्सल्य) प्रेम का समुद्र उमड़ पड़ा। राजा का मन मानो प्रयाग हो गया। उस समुद्र के अंदर उन्होंने (आदि शक्ति) सीताजी के (अलौकिक) स्नेह रूपी अक्षयवट को बढ़ते हुए देखा। उस (सीताजी के प्रेम रूपी वट) पर श्री रामजी का प्रेम रूपी बालक (बाल रूप धारी भगवान) सुशोभित हो रहा है॥3॥

चिरजीवी मुनि ग्यान बिकल जनु। बूडत लहेउ बाल अवलंबनु॥

मोह मगन मति नहिं बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की॥4॥

जनकजी का ज्ञान रूपी चिरंजीवी (मार्कण्डेय) मुनि व्याकुल होकर डूबते-डूबते मानो उस श्री राम प्रेम रूपी बालक का सहारा पाकर बच गया। वस्तुतः (ज्ञानिशिरोमणि) विदेहराज की बुद्धि मोह में मग्न नहीं है। यह तो श्री सीता-रामजी के प्रेम की महिमा है (जिसने उन जैसे महान ज्ञानी के ज्ञान को भी विकल कर दिया)॥4॥

दोहा :

सिय पितु मातु सनेह बस बिकल न सकी सँभारि।

धरनिसुताँ धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारि॥286॥

पिता-माता के प्रेम के मारे सीताजी ऐसी विकल हो गईं कि अपने को सँभाल न सकीं। (परन्तु परम धैर्यवती) पृथ्वी की कन्या सीताजी ने समय और सुंदर धर्म का विचार कर धैर्य धारण किया॥286॥

चौपाई :

तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ पेमु परितोषु बिसेषी॥

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ॥1॥

सीताजी को तपस्विनी वेष में देखकर जनकजी को विशेष प्रेम और संतोष हुआ। (उन्होंने कहा-) बेटी! तूने दोनों कुल पवित्र कर दिए। तेरे निर्मल यश से सारा जगत उज्ज्वल हो रहा है, ऐसा सब कोई कहते हैं॥1॥

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥

गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किए साधु समाज घनेरे॥2॥

तेरी कीर्ति रूपी नदी देवनदी गंगाजी को भी जीतकर (जो एक ही ब्रह्माण्ड में बहती है) करोड़ों ब्रह्माण्डों में बह चली है। गंगाजी ने तो पृथ्वी पर तीन ही स्थानों (हरिद्वार, प्रयागराज और

गंगासागर) को बड़ा (तीर्थ) बनाया है। पर तेरी इस कीर्ति नदी ने तो अनेकों संत समाज रूपी तीर्थ स्थान बना दिए हैं॥2॥

पितु कह सत्य सनेहँ सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥

पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥3॥

पिता जनकजी ने तो स्नेह से सच्ची सुंदर वाणी कही, परन्तु अपनी बड़ाई सुनकर सीताजी मानो संकोच में समा गई। पिता-माता ने उन्हें फिर हृदय से लगा लिया और हितभरी सुंदर सीख और आशीष दिया॥3॥

कहति न सीय सकुचि मन माहीं। इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं॥

लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥4॥

सीताजी कुछ कहती नहीं हैं, परन्तु सकुचा रही हैं कि रात में (सासुओं की सेवा छोड़कर) यहाँ रहना अच्छा नहीं है। रानी सुनयनाजी ने जानकीजी का रुख देखकर (उनके मन की बात समझकर) राजा जनकजी को जना दिया। तब दोनों अपने हृदयों में सीताजी के शील और स्वभाव की सराहना करने लगे॥4॥

दोहा :

बार बार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।

कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥287॥

राजा-रानी ने बार-बार मिलकर और हृदय से लगाकर तथा सम्मान करके सीताजी को विदा किया। चतुर रानी ने समय पाकर राजा से सुंदर वाणी में भरतजी की दशा का वर्णन किया॥

287॥

चौपाई :

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगंध सुधा ससि सारू॥

मूदे सजन नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥1॥

सोने में सुगंध और (समुद्र से निकली हुई) सुधा में चन्द्रमा के सार अमृत के समान भरतजी का व्यवहार सुनकर राजा ने (प्रेम विह्वल होकर) अपने (प्रेमाश्रुओं के) जल से भरे नेत्रों को मूँद लिया (वे भरतजी के प्रेम में मानो ध्यानस्थ हो गए)। वे शरीर से पुलकित हो गए और मन में आनंदित होकर भरतजी के सुंदर यश की सराहना करने लगे॥1॥

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥

धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू॥2॥

(वे बोले-) हे सुमुखि! हे सुनयनी! सावधान होकर सुनो। भरतजी की कथा संसार के बंधन से

छुड़ाने वाली है। धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार- इन तीनों विषयों में अपनी बुद्धि के अनुसार मेरी (थोड़ी-बहुत) गति है (अर्थात इनके संबंध में मैं कुछ जानता हूँ)॥2॥

सो मति मोरि भरत महिमाही। कहै काह छलि छुअति न छाँही॥

बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद॥3॥

वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञान में प्रवेश रखने वाली) मेरी बुद्धि भरतजी की महिमा का वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छाया तक को नहीं छू पाती! ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, ज्ञानी, पण्डित और बुद्धिमान-॥3॥

भरत चरित कीरति करतूती। धरम सील गुन बिमल बिभूती॥

समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू॥4॥

सब किसी को भरतजी के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील, गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देने वाले हैं और पवित्रता में गंगाजी का तथा स्वाद (मधुरता) में अमृत का भी तिरस्कार करने वाले हैं॥4॥

दोहा :

निरवधि गुन निरुपम पुरुषु भरतु भरत सम जानि।

कहिअ सुमेरु कि सेर सम कबिकुल मति सकुचानि॥288॥

भरतजी असीम गुण सम्पन्न और उपमारहित पुरुष हैं। भरतजी के समान बस, भरतजी ही हैं, ऐसा जानो। सुमेरु पर्वत को क्या सेर के बराबर कह सकते हैं? इसलिए (उन्हें किसी पुरुष के साथ उपमा देने में) कवि समाज की बुद्धि भी सकुचा गई!॥288॥

चौपाई :

अगम सबहि बरनत बरबरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी॥

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥1॥

हे श्रेष्ठ वर्णवाली! भरतजी की महिमा का वर्णन करना सभी के लिए वैसे ही अगम है जैसे जलरहित पृथ्वी पर मछली का चलना। हे रानी! सुनो, भरतजी की अपरिमित महिमा को एक श्री रामचन्द्रजी ही जानते हैं, किन्तु वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते॥1॥

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ॥

बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं। सब कर भल सब के मन माहीं॥2॥

इस प्रकार प्रेमपूर्वक भरतजी के प्रभाव का वर्णन करके, फिर पत्नी के मन की रुचि जानकर राजा ने कहा- लक्ष्मणजी लौट जाँ और भरतजी वन को जाँ, इसमें सभी का भला है और यही सबके मन में है॥2॥

देवि परन्तु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

भरतु अवधि सनेह ममता की। जद्यपि रामु सीम समता की॥3॥

परन्तु हे देवि! भरतजी और श्री रामचन्द्रजी का प्रेम और एक-दूसरे पर विश्वास, बुद्धि और विचार की सीमा में नहीं आ सकता। यद्यपि श्री रामचन्द्रजी समता की सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममता की सीमा हैं॥3॥

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे॥

साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥4॥

(श्री रामचन्द्रजी के प्रति अनन्य प्रेम को छोड़कर) भरतजी ने समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखों की ओर स्वप्न में भी मन से भी नहीं ताका है। श्री रामजी के चरणों का प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है। मुझे तो भरतजी का बस, यही एक मात्र सिद्धांत जान पड़ता है॥4॥

दोहा :

भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाइ।

करिअ न सोचु सनेह बस कहेउ भूप बिलखाइ॥289॥

राजा ने बिलखकर (प्रेम से गद्गद होकर) कहा- भरतजी भूलकर भी श्री रामचन्द्रजी की आज्ञा को मन से भी नहीं टालेंगे। अतः स्नेह के वश होकर चिंता नहीं करनी चाहिए॥289॥

चौपाई :

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दंपतिहि पलक सम बीती॥

राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे॥1॥

श्री रामजी और भरतजी के गुणों की प्रेमपूर्वक गणना करते (कहते-सुनते) पति-पत्नी को रात पलक के समान बीत गई। प्रातःकाल दोनों राजसमाज जागे और नहा-नहाकर देवताओं की पूजा करने लगे॥1॥

गे नहाइ गुर पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई॥

नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनबास दुखारी॥2॥

श्री रघुनाथजी स्नान करके गुरु वशिष्ठजी के पास गए और चरणों की वंदना करके उनका रुख पाकर बोले- हे नाथ! भरत, अवधपुर वासी तथा माताएँ, सब शोक से व्याकुल और वनवास से दुःखी हैं॥2॥

सहित समाज राठ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू॥

उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रौरें हाथा॥3॥

मिथिलापति राजा जनकजी को भी समाज सहित क्लेश सहते बहुत दिन हो गए, इसलिए हे

नाथ! जो उचित हो वही कीजिए। आप ही के हाथ सभी का हित है॥3॥

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुल के लखि सीलु सुभाऊ॥

तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥4॥

ऐसा कहकर श्री रघुनाथजी अत्यन्त ही सकुचा गए। उनका शील स्वभाव देखकर (प्रेम और आनंद से) मुनि वशिष्ठजी पुलकित हो गए। (उन्होंने खुलकर कहा-) हे राम! तुम्हारे बिना (घर-बार आदि) सम्पूर्ण सुखों के साज दोनों राजसमाजों को नरक के समान हैं॥4॥

दोहा :

प्राण-प्राण के जीव के जिव सुख के सुख राम।

तुम्ह तजि तात सोहात गृह जिन्हहि तिन्हहि बिधि बाम॥290॥

हे राम! तुम प्राणों के भी प्राण, आत्मा के भी आत्मा और सुख के भी सुख हो। हे तात! तुम्हें छोड़कर जिन्हें घर सुहाता है, उन्हे विधाता विपरीत है॥290॥

चौपाई :

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानु। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू॥1॥

जहाँ श्री राम के चरण कमलों में प्रेम नहीं है, वह सुख, कर्म और धर्म जल जाए, जिसमें श्री राम प्रेम की प्रधानता नहीं है, वह योग क्योग है और वह ज्ञान अज्ञान है॥1॥

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेहीं। तुम्ह जानहु जिय जो जेहि केहीं॥

राउर आयसु सिर सबही कैं। बिदित कृपालहि गति सब नीकैं॥2॥

तुम्हारे बिना ही सब दुःखी हैं और जो सुखी हैं वे तुम्हीं से सुखी हैं। जिस किसी के जी में जो कुछ है तुम सब जानते हो। आपकी आज्ञा सभी के सिर पर है। कृपालु (आप) को सभी की स्थिति अच्छी तरह मालूम है॥2॥

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ॥

करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए॥3॥

अतः आप आश्रम को पधारिए। इतना कह मुनिराज स्नेह से शिथिल हो गए। तब श्री रामजी प्रणाम करके चले गए और ऋषि वशिष्ठजी धीरज धरकर जनकजी के पास आए॥3॥

राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए॥

महाराज अब कीजिअ सोई। सब कर धरम सहित हित होई॥4॥

गुरुजी ने श्री रामचन्द्रजी के शील और स्नेह से युक्त स्वभाव से ही सुंदर वचन राजा जनकजी को सुनाए (और कहा-) हे महाराज! अब वही कीजिए, जिसमें सबका धर्म सहित हित हो॥4॥

दोहा :

ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।

तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥291॥

हे राजन्! तुम ज्ञान के भंडार, सुजान, पवित्र और धर्म में धीर हो। इस समय तुम्हारे बिना इस दुविधा को दूर करने में और कौन समर्थ है?॥291॥

चौपाई :

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे॥

सिथिल सनेहँ गुनत मन माहीं। आए इहाँ कीन्ह भल नाहीं॥1॥

मुनि वशिष्ठजी के वचन सुनकर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए। उनकी दशा देखकर ज्ञान और वैराग्य को भी वैराग्य हो गया (अर्थात् उनके ज्ञान-वैराग्य छूट से गए)। वे प्रेम से शिथिल हो गए और मन में विचार करने लगे कि हम यहाँ आए, यह अच्छा नहीं किया॥1॥

रामहि रायँ कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रवाना॥

हम अब बन तें बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब बिबेक बड़ाई॥2॥

राजा दशरथजी ने श्री रामजी को वन जाने के लिए कहा और स्वयं अपने प्रिय के प्रेम को प्रमाणित (सच्चा) कर दिया (प्रिय वियोग में प्राण त्याग दिए), परन्तु हम अब इन्हें वन से (और गहन) वन को भेजकर अपने विवेक की बड़ाई में आनन्दित होते हुए लौटेंगे (कि हमें जरा भी मोह नहीं है, हम श्री रामजी को वन में छोड़कर चले आए, दशरथजी की तरह मरे नहीं!)॥2॥

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भए प्रेम बस बिकल बिसेषी॥

समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिँ सहित समाजा॥3॥

तपस्वी, मुनि और ब्राह्मण यह सब सुन और देखकर प्रेमवश बहुत ही व्याकुल हो गए। समय का विचार करके राजा जनकजी धीरज धरकर समाज सहित भरतजी के पास चले॥3॥

भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे॥

तात भरत कह तेरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ॥4॥

भरतजी ने आकर उन्हें आगे होकर लिया (सामने आकर उनका स्वागत किया) और समयानुकूल अच्छे आसन दिए। तिरहुतराज जनकजी कहने लगे- हे तात भरत! तुमको श्री रामजी का स्वभाव मालूम ही है॥4॥

दोहा :

राम सत्यव्रत धरम रत सब कर सीलु स्नेहु।

संकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु ॥292॥

श्री रामचन्द्रजी सत्यव्रती और धर्मपरायण हैं, सबका शील और स्नेह रखने वाले हैं, इसीलिए वे संकोचवश संकट सह रहे हैं, अब तुम जो आज्ञा दो, वह उनसे कही जाए॥292॥

चौपाई :

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी॥

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू॥1॥

भरतजी यह सुनकर पुलकित शरीर हो नेत्रों में जल भरकर बड़ा भारी धीरज धरकर बोले- हे प्रभो! आप हमारे पिता के समान प्रिय और पूज्य हैं और कुल गुरु श्री वशिष्ठजी के समान हितैषी तो माता-पिता भी नहीं है॥1॥

कौंसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू॥

सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी॥2॥

विश्वामित्रजी आदि मुनियों और मंत्रियों का समाज है और आज के दिन ज्ञान के समुद्र आप भी उपस्थित हैं। हे स्वामी! मुझे अपना बच्चा, सेवक और आज्ञानुसार चलने वाला समझकर शिक्षा दीजिए॥2॥

एहिं समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन में बोलब बाउर॥

छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता॥3॥

इस समाज और (पुण्य) स्थल में आप (जैसे ज्ञानी और पूज्य) का पूछना! इस पर यदि मैं मौन रहता हूँ तो मलिन समझा जाऊँगा और बोलना पागलपन होगा तथापि मैं छोटे मुँह बड़ी बात कहता हूँ। हे तात! विधाता को प्रतिकूल जानकर क्षमा कीजिएगा॥3॥

आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवाधरमु कठिन जगु जाना॥

स्वामि धरम स्वार्थहि बिरोधू। बैरु अंध प्रेमहि न प्रबोधू॥4॥

वेद, शास्त्र और पुराणों में प्रसिद्ध है और जगत जानता है कि सेवा धर्म बड़ा कठिन है। स्वामी धर्म में (स्वामी के प्रति कर्तव्य पालन में) और स्वार्थ में विरोध है (दोनों एक साथ नहीं निभ सकते) वैर अंधा होता है और प्रेम को ज्ञान नहीं रहता (में स्वार्थवश कहूँगा या प्रेमवश, दोनों में ही भूल होने का भय है)॥4॥

दोहा :

राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।

सब केँ संमत सर्व हित करिअ प्रेमु पहिचानि॥293॥

अतएव मुझे पराधीन जानकर (मुझसे न पूछकर) श्री रामचन्द्रजी के रुख (रुचि), धर्म और (सत्य के) व्रत को रखते हुए, जो सबके सम्मत और सबके लिए हितकारी हो आप सबका प्रेम

पहचानकर वही कीजिए॥293॥

चौपाई :

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ॥

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥1॥

भरतजी के वचन सुनकर और उनका स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक उनकी सराहना करने लगे। भरतजी के वचन सुगम और अगम, सुंदर, कोमल और कठोर हैं। उनमें अक्षर थोड़े हैं, परन्तु अर्थ अत्यन्त अपार भरा हुआ है॥1॥

ज्यों मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥

भूप भरतू मुनि सहित समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥2॥

जैसे मुख (का प्रतिबिम्ब) दर्पण में दिखता है और दर्पण अपने हाथ में है, फिर भी वह (मुख का प्रतिबिम्ब) पकड़ा नहीं जाता, इसी प्रकार भरतजी की यह अद्भुत वाणी भी पकड़ में नहीं आती (शब्दों से उसका आशय समझ में नहीं आता)। (किसी से कुछ उत्तर देते नहीं बना) तब राजा जनकजी, भरतजी तथा मुनि वशिष्ठजी समाज के साथ वहाँ गए, जहाँ देवता रूपी कुमुदों को खिलाने वाले (सुख देने वाले) चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी थे॥2॥

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥

देवँ प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥3॥

यह समाचार सुनकर सब लोग सोच से व्याकुल हो गए, जैसे नए (पहली वर्षा के) जल के संयोग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओं ने पहले कुलगुरु वशिष्ठजी की (प्रेमविह्वल) दशा देखी, फिर विदेहजी के विशेष स्नेह को देखा,॥3॥

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हियँ हारे॥

सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख सोच बस लेखा॥4॥

और तब श्री रामभक्ति से ओतप्रोत भरतजी को देखा। इन सबको देखकर स्वार्थी देवता घबड़ाकर हृदय में हार मान गए (निराश हो गए)। उन्होंने सब किसी को श्री राम प्रेम में सराबोर देखा। इससे देवता इतने सोच के वश हो गए कि जिसका कोई हिसाब नहीं॥4॥

दोहा :

रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।

रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नाहिं त भयउ अकाजु॥294॥

देवराज इन्द्र सोच में भरकर कहने लगे कि श्री रामचन्द्रजी तो स्नेह और संकोच के वश में हैं, इसलिए सब लोग मिलकर कुछ प्रपंच (माया) रचो, नहीं तो काम बिगड़ा (ही समझो)॥294॥

चौपाई :

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥

फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥1॥

देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी सराहना (स्तुति) की और कहा- हे देवी! देवता आपके शरणागत हैं, उनकी रक्षा कीजिए। अपनी माया रचकर भरतजी की बुद्धि को फेर दीजिए और छल की छाया कर देवताओं के कुल का पालन (रक्षा) कीजिए॥1॥

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥

मो सन कहहु भरत मति फेरु। लोचन सहस न सूझ सुमेरु॥2॥

देवताओं की विनती सुनकर और देवताओं को स्वार्थ के वश होने से मूर्ख जानकर बुद्धिमती सरस्वतीजी बोलीं- मुझसे कह रहे हो कि भरतजी की मति पलट दो! हजार नेत्रों से भी तुमको सुमेरु नहीं सूझ पड़ता!॥2॥

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोठ न भरत मति सकड़ निहारी॥

सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥3॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश की माया बड़ी प्रबल है! किन्तु वह भी भरतजी की बुद्धि की ओर ताक नहीं सकती। उस बुद्धि को, तुम मुझसे कह रहे हो कि, भोली कर दो (भुलावे में डाल दो)! अरे! चाँदनी कहीं प्रचंड किरण वाले सूर्य को चुरा सकती है?॥3॥

भरत हृदयँ सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥

अस कहि सारद गड़ बिधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहुँ कोका॥4॥

भरतजी के हृदय में श्री सीता-रामजी का निवास है। जहाँ सूर्य का प्रकाश है, वहाँ कहीं अँधेरा रह सकता है? ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक को चली गईं। देवता ऐसे व्याकुल हुए जैसे रात्रि में चकवा व्याकुल होता है॥4॥

दोहा :

सुर स्वारथी मलीन मन कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।

रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाटु॥295॥

मलिन मन वाले स्वार्थी देवताओं ने बुरी सलाह करके बुरा ठाट (षड्यन्त्र) रचा। प्रबल माया-जाल रचकर भय, भ्रम, अप्रीति और उच्चाटन फैला दिया॥295॥

चौपाई :

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥

गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥1॥

कुचाल करके देवराज इन्द्र सोचने लगे कि काम का बनना-बिगड़ना सब भरतजी के हाथ है। इधर राजा जनकजी (मुनि वशिष्ठ आदि के साथ) श्री रघुनाथजी के पास गए। सूर्यकुल के दीपक श्री रामचन्द्रजी ने सबका सम्मान किया,॥1॥

समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥

जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥2॥

तब रघुकुल के पुरोहित वशिष्ठजी समय, समाज और धर्म के अविरोधी (अर्थात अनुकूल) वचन बोले। उन्होंने पहले जनकजी और भरतजी का संवाद सुनाया। फिर भरतजी की कही हुई सुंदर बातें कह सुनाई॥2॥

तात राम जस आयसु देहू। सो सबु करै मोर मत एहू॥

सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥3॥

(फिर बोले-) हे तात राम! मेरा मत तो यह है कि तुम जैसी आज्ञा दो, वैसा ही सब करें! यह सुनकर दोनों हाथ जोड़कर श्री रघुनाथजी सत्य, सरल और कोमल वाणी बोले-॥3॥

बिद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥

राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥4॥

आपके और मिथिलेश्वर जनकजी के विद्यमान रहते मेरा कुछ कहना सब प्रकार से भद्दा (अनुचित) है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा होगी, मैं आपकी शपथ करके कहता हूँ वह सत्य ही सबको शिरोधार्य होगी॥4॥

दोहा :

राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।

सकल बिलोकत भरत मुखु बनइ न ऊतरु देत॥296॥

श्री रामचन्द्रजी की शपथ सुनकर सभा समेत मुनि और जनकजी सकुचा गए (स्तम्भित रह गए)। किसी से उत्तर देते नहीं बनता, सब लोग भरतजी का मुँह ताक रहे हैं॥296॥

चौपाई :

सभा सकुच बस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरजु भारी॥

कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढत बिंधि जिमि घटज निवारा॥1॥

भरतजी ने सभा को संकोच के वश देखा। रामबंधु (भरतजी) ने बड़ा भारी धीरज धरकर और कुसमय देखकर अपने (उमड़ते हुए) प्रेम को संभाला, जैसे बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोका था॥1॥

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी॥

भरत बिबेक बराहँ बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥2॥

शोक रूपी हिरण्याक्ष ने (सारी सभा की) बुद्धि रूपी पृथ्वी को हर लिया जो विमल गुण समूह रूपी जगत की योनि (उत्पन्न करने वाली) थी। भरतजी के विवेक रूपी विशाल वराह (वराह रूप धारी भगवान) ने (शोक रूपी हिरण्याक्ष को नष्ट कर) बिना ही परिश्रम उसका उद्धार कर दिया!॥

2॥

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राठ गुर साधु निहोरे॥

छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥3॥

भरतजी ने प्रणाम करके सबके प्रति हाथ जोड़े तथा श्री रामचन्द्रजी, राजा जनकजी, गुरु वशिष्ठजी और साधु-संत सबसे विनती की और कहा- आज मेरे इस अत्यन्त अनुचित बर्ताव को क्षमा कीजिएगा। मैं कोमल (छोटे) मुख से कठोर (धृष्टतापूर्ण) वचन कह रहा हूँ॥3॥

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥

बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥4॥

फिर उन्होंने हृदय में सुहावनी सरस्वती का स्मरण किया। वे मानस से (उनके मन रूपी मानसरोवर से) उनके मुखारविंद पर आ विराजीं। निर्मल विवेक, धर्म और नीति से युक्त भरतजी की वाणी सुंदर हंसिनी (के समान गुण-दोष का विवेचन करने वाली) है॥4॥

दोहा :

निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेहँ समाजु।

करि प्रनामु बोले भरतु सुमिरि सीय रघुराजु॥297॥

विवेक के नेत्रों से सारे समाज को प्रेम से शिथिल देख, सबको प्रणाम कर, श्री सीताजी और श्री रघुनाथजी का स्मरण करके भरतजी बोले-॥297॥

चौपाई :

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥

सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपाल सर्वग्य सुजानू॥1॥

हे प्रभु! आप पिता, माता, सुहृद् (मित्र), गुरु, स्वामी, पूज्य, परम हितैषी और अन्तर्यामी हैं। सरल हृदय, श्रेष्ठ मालिक, शील के भंडार, शरणागत की रक्षा करने वाले, सर्वज्ञ, सुजान,॥1॥

समरथ सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघ हारी॥

स्वामि गोसाँइहि सरिस गोसाँइ। मोहि समान में साँइ दोहाँइ॥2॥

समर्थ, शरणागत का हित करने वाले, गुणों का आदर करने वाले और अवगुणों तथा पापों को हरने वाले हैं। हे गोसाँइ! आप सरीखे स्वामी आप ही हैं और स्वामी के साथ द्रोह करने में मेरे

समान में ही हूँ॥2॥

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाजु सकेली॥

जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअ अमरपद माहुरु मीचू॥3॥

में मोहवश प्रभु (आप) के और पिताजी के वचनों का उल्लंघन कर और समाज बटोरकर यहाँ आया हूँ। जगत में भले-बुरे, ऊँचे और नीचे, अमृत और अमर पद (देवताओं का पद), विष और मृत्यु आदि-॥3॥

राम रजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोठ नाहीं॥

सो में सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥4॥

किसी को भी कहीं ऐसा नहीं देखा-सुना जो मन में भी श्री रामचन्द्रजी (आप) की आज्ञा को मेट दे। मैंने सब प्रकार से वही ढिठाई की, परन्तु प्रभु ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया!॥4॥

दोहा :

कृपाँ भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।

दूषन भे भूषन सरिस सुजसु चारु चहुँ ओर॥298॥

हे नाथ! आपने अपनी कृपा और भलाई से मेरा भला किया, जिससे मेरे दूषण (दोष) भी भूषण (गुण) के समान हो गए और चारों ओर मेरा सुंदर यश छा गया॥298॥

चौपाई :

राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥

क्रूर कुटिल खल कुमति कलंकी। नीच निसील निरीस निसंकी॥1॥

हे नाथ! आपकी रीति और सुंदर स्वभाव की बड़ाई जगत में प्रसिद्ध है और वेद-शास्त्रों ने गाई है। जो क्रूर, कुटिल, दुष्ट, कुबुद्धि, कलंकी, नीच, शीलरहित, निरीश्वरवादी (नास्तिक) और निःशंक (निडर) है॥1॥

तेउ सुनि सरन सामुहें आए। सकृत प्रनामु किहें अपनाए॥

देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने॥2॥

उन्हें भी आपने शरण में सम्मुख आया सुनकर एक बार प्रणाम करने पर ही अपना लिया। उन (शरणागतों) के दोषों को देखकर भी आप कभी हृदय में नहीं लाए और उनके गुणों को सुनकर साधुओं के समाज में उनका बखान किया॥2॥

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥

निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपनें॥3॥

ऐसा सेवक पर कृपा करने वाला स्वामी कौन है, जो आप ही सेवक का सारा साज-सामान सज दे (उसकी सारी आवश्यकताओं को पूर्ण कर दे) और स्वप्न में भी अपनी कोई करनी न समझकर (अर्थात् मैंने सेवक के लिए कुछ किया है, ऐसा न जानकर) उलटा सेवक को संकोच होगा, इसका सोच अपने हृदय में रखे!॥3॥

सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥

पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥4॥

मैं भुजा उठाकर और प्रण रोपकर (बड़े जोर के साथ) कहता हूँ, ऐसा स्वामी आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। (बंदर आदि) पशु नाचते और तोते (सीखे हुए) पाठ में प्रवीण हो जाते हैं, परन्तु तोते का (पाठ प्रवीणता रूप) गुण और पशु के नाचने की गति (क्रमशः) पढ़ाने वाले और नचाने वाले के अधीन है॥4॥

दोहा :

यों सुधारि सनमानि जन किए साधु सिरमोर।

को कृपाल बिनु पालिहैं बिरिदावलि बरजोर॥299॥

इस प्रकार अपने सेवकों की (बिगड़ी) बात सुधारकर और सम्मान देकर आपने उन्हें साधुओं का शिरोमणि बना दिया। कृपालु (आप) के सिवा अपनी विरदावली का और कौन जबर्दस्ती (हठपूर्वक) पालन करेगा?॥299॥

चौपाई :

सोक सनेहँ कि बाल सुभाएँ। आयउँ लाइ रजायसु बाएँ॥

तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा॥1॥

मैं शोक से या स्नेह से या बालक स्वभाव से आज्ञा को बाएँ लाकर (न मानकर) चला आया, तो भी कृपालु स्वामी (आप) ने अपनी ओर देखकर सभी प्रकार से मेरा भला ही माना (मेरे इस अनुचित कार्य को अच्छा ही समझा)॥1॥

देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला।

बड़ें समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ीं चूक साहिब अनुरागू॥2॥

मैंने सुंदर मंगलों के मूल आपके चरणों का दर्शन किया और यह जान लिया कि स्वामी मुझ पर स्वभाव से ही अनुकूल हैं। इस बड़े समाज में अपने भाग्य को देखा कि इतनी बड़ी चूक होने पर भी स्वामी का मुझ पर कितना अनुराग है!॥2॥

कृपा अनुग्रह अंगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई॥

राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई॥3॥

कृपानिधान ने मुझ पर सांगोपांग भरपेट कृपा और अनुग्रह, सब अधिक ही किए हैं (अर्थात् मैं जिसके जरा भी लायक नहीं था, उतनी अधिक सर्वांगपूर्ण कृपा आपने मुझ पर की है)। हे गोसाईं! आपने अपने शील, स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रखा॥3॥

नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई॥

अबिनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥4॥

हे नाथ! मैंने स्वामी और समाज के संकोच को छोड़कर अविनय या विनय भरी जैसी रुचि हुई वैसी ही वाणी कहकर सर्वथा ढिठाई की है। हे देव! मेरे आर्तभाव (आतुरता) को जानकर आप क्षमा करेंगे॥4॥

दोहा :

सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।

आयसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥300॥

सुहृद् (बिना ही हेतु के हित करने वाले), बुद्धिमान और श्रेष्ठ मालिक से बहुत कहना बड़ा अपराध है, इसलिए हे देव! अब मुझे आज्ञा दीजिए, आपने मेरी सभी बात सुधार दी॥300॥

चौपाई :

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीवँ सुहाई॥

सो करि कहउँ हिए अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥1॥

प्रभु (आप) के चरणकमलों की रज, जो सत्य, सुकृत (पुण्य) और सुख की सुहावनी सीमा (अवधि) है, उसकी दुहाई करके मैं अपने हृदय को जागते, सोते और स्वप्न में भी बनी रहने वाली रुचि (इच्छा) कहता हूँ॥1॥

सहज सनेहँ स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

अग्यासम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावै देवा॥2॥

वह रुचि है- कपट, स्वार्थ और (अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष रूप) चारों फलों को छोड़कर स्वाभाविक प्रेम से स्वामी की सेवा करना। और आज्ञा पालन के समान श्रेष्ठ स्वामी की और कोई सेवा नहीं है। हे देव! अब वही आज्ञा रूप प्रसाद सेवक को मिल जाए॥2॥

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥3॥

भरतजी ऐसा कहकर प्रेम के बहुत ही विवश हो गए। शरीर पुलकित हो उठा, नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। अकुलाकर (व्याकुल होकर) उन्होंने प्रभु श्री रामचन्द्रजी के चरणकमल पकड़ लिए। उस समय को और स्नेह को कहा नहीं जा सकता॥3॥

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥

भरत बिनय सुनिदेखि सुभाऊ। सिथिल सनेहँ सभा रघुराऊ॥4॥

कृपासिंधु श्री रामचन्द्रजी ने सुंदर वाणी से भरतजी का सम्मान करके हाथ पकड़कर उनको अपने पास बिठा लिया। भरतजी की विनती सुनकर और उनका स्वभाव देखकर सारी सभा और श्री रघुनाथजी स्नेह से शिथिल हो गए॥4॥

छन्द :

रघुराऊ सिथिल सनेहँ साधु समाज मुनि मिथिला धनी।

मन महुँ सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥

भरतहि प्रसंसत बिबुध बरषत सुमन मानस मलिन से।

तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

श्री रघुनाथजी, साधुओं का समाज, मुनि वशिष्ठजी और मिथिलापति जनकजी स्नेह से शिथिल हो गए। सब मन ही मन भरतजी के भाईपन और उनकी भक्ति की अतिशय महिमा को सराहने लगे। देवता मलिन से मन से भरतजी की प्रशंसा करते हुए उन पर फूल बरसाने लगे। तुलसीदासजी कहते हैं- सब लोग भरतजी का भाषण सुनकर व्याकुल हो गए और ऐसे सकुचा गए जैसे रात्रि के आगमन से कमल!

सोरठा :

देखि दुखारी दीन दुहु समाज नर नारि सब।

मघवा महा मलीन मुए मारि मंगल चहत॥301॥

दोनों समाजों के सभी नर-नारियों को दीन और दुःखी देखकर महामलिन मन इन्द्र मरे हुआं को मारकर अपना मंगल चाहता है॥301॥

चौपाई :

कपट कुचालि सीवँ सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥

काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहुँ न प्रतीती॥1॥

देवराज इन्द्र कपट और कुचाल की सीमा है। उसे पराई हानि और अपना लाभ ही प्रिय है। इन्द्र की रीति कौए के समान है। वह छली और मलिन मन है, उसका कहीं किसी पर विश्वास नहीं है॥1॥

प्रथम कुमत करि कपटु सँकेला। सो उचाटु सब कँ सिर मेला॥

सुरमायाँ सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे॥2॥

पहले तो कुमत (बुरा विचार) करके कपट को बटोरा (अनेक प्रकार के कपट का साज सजा)।

फिर वह (कपटजनित) उचाट सबके सिर पर डाल दिया। फिर देवमाया से सब लोगों को विशेष रूप से मोहित कर दिया, किन्तु श्री रामचन्द्रजी के प्रेम से उनका अत्यन्त बिछोह नहीं हुआ (अर्थात् उनका श्री रामजी के प्रति प्रेम कुछ तो बना ही रहा)॥2॥

भय उचाट बस मन थिर नहीं। छन बन रुचि छन सदन सोहारी॥

दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी॥3॥

भय और उचाट के वश किसी का मन स्थिर नहीं है। क्षण में उनकी वन में रहने की इच्छा होती है और क्षण में उन्हें घर अच्छे लगने लगते हैं। मन की इस प्रकार की दुविधामयी स्थिति से प्रजा दुःखी हो रही है। मानो नदी और समुद्र के संगम का जल क्षुब्ध हो रहा हो। (जैसे नदी और समुद्र के संगम का जल स्थिर नहीं रहता, कभी इधर आता और कभी उधर जाता है, उसी प्रकार की दशा प्रजा के मन की हो गई)॥3॥

दुचित कतहुँ परितोषु न लहरीं। एक एक सन मरमु न कहरीं॥

लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुबानू॥4॥

चित्त दो तरफा हो जाने से वे कहीं संतोष नहीं पाते और एक-दूसरे से अपना मर्म भी नहीं कहते। कृपानिधान श्री रामचन्द्रजी यह दशा देखकर हृदय में हँसकर कहने लगे- कुत्ता, इन्द्र और नवयुवक (कामी पुरुष) एक सरीखे (एक ही स्वभाव के) हैं। (पाणिनीय व्याकरण के अनुसार, श्वन, युवन और मघवन शब्दों के रूप भी एक सरीखे होते हैं)॥4॥

दोहा :

भरतु जनकु मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ।

लागि देवमाया सबहि जथाजोगु जनु पाइ॥302॥

भरतजी, जनकजी, मुनिजन, मंत्री और ज्ञानी साधु-संतों को छोड़कर अन्य सभी पर जिस मनुष्य को जिस योग्य (जिस प्रकृति और जिस स्थिति का) पाया, उस पर वैसे ही देवमाया लग गई॥

302॥

चौपाई :

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेहँ सुरपति छल भारे॥

सभा राउ गुर महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जंत्री॥1॥

कृपासिंधु श्री रामचन्द्रजी ने लोगों को अपने स्नेह और देवराज इन्द्र के भारी छल से दुःखी देखा। सभा, राजा जनक, गुरु, ब्राह्मण और मंत्री आदि सभी की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने

कील दिया॥1॥

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥

भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥2॥

सब लोग चित्रलिखे से श्री रामचन्द्रजी की ओर देख रहे हैं। सकुचाते हुए सिखाए हुए से वचन बोलते हैं। भरतजी की प्रीति, नम्रता, विनय और बड़ाई सुनने में सुख देने वाली है, पर उसका वर्णन करने में कठिनता है॥2॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥

महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभायँ सुमति हियँ हुलसी॥3॥

जिनकी भक्ति का लवलेश देखकर मुनिगण और मिथिलेश्वर जनकजी प्रेम में मग्न हो गए, उन भरतजी की महिमा तुलसीदास कैसे कहे? उनकी भक्ति और सुंदर भाव से (कवि के) हृदय में सुबुद्धि हुलस रही है (विकसित हो रही है)॥3॥

आपु छोटि महिमा बड़ि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥

कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥4॥

परन्तु वह बुद्धि अपने को छोटी और भरतजी की महिमा को बड़ी जानकर कवि परम्परा की मर्यादा को मानकर सकुचा गई (उसका वर्णन करने का साहस नहीं कर सकी)। उसकी गुणों में रुचि तो बहुत है, पर उन्हें कह नहीं सकती। बुद्धि की गति बालक के वचनों की तरह हो गई (वह कुण्ठित हो गई)॥4॥

दोहा :

भरत बिमल जसु बिमल बिधु सुमति चकोरकुमारि।

उदित बिमल जन हृदय नभ एकटक रही निहारि॥303॥

भरतजी का निर्मल यश निर्मल चन्द्रमा है और कवि की सुबुद्धि चकोरी है, जो भक्तों के हृदय रूपी निर्मल आकाश में उस चन्द्रमा को उदित देखकर उसकी ओर टकटकी लगाए देखती ही रह गई है (तब उसका वर्णन कौन करे?)॥303॥

चौपाई :

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कबि छमहूँ॥

कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥1॥

भरतजी के स्वभाव का वर्णन वेदों के लिए भी सुगम नहीं है। (अतः) मेरी तुच्छ बुद्धि की चंचलता को कवि लोग क्षमा करें! भरतजी के सद्भाव को कहते-सुनते कौन मनुष्य श्री सीता-रामजी के चरणों में अनुरक्त न हो जाएगा॥1॥

सुमिरत भरतहि प्रेमू राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को॥

देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की॥2॥

भरतजी का स्मरण करने से जिसको श्री रामजी का प्रेम सुलभ न हुआ, उसके समान वाम (अभागा) और कौन होगा? दयालु और सुजान श्री रामजी ने सभी की दशा देखकर और भक्त (भरतजी) के हृदय की स्थिति जानकर,॥2॥

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर॥

देसु कालु लखि समठ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥3॥

धर्मधुरंधर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह, शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालन करने वाले श्री रघुनाथजी देश, काल, अवसर और समाज को देखकर,॥3॥

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥4॥

(तदनुसार) ऐसे वचन बोले जो मानो वाणी के सर्वस्व ही थे, परिणाम में हितकारी थे और सुनने में चन्द्रमा के रस (अमृत) सरीखे थे। (उन्होंने कहा-) हे तात भरत! तुम धर्म की धुरी को धारण करने वाले हो, लोक और वेद दोनों के जानने वाले और प्रेम में प्रवीण हो॥4॥

दोहा :

करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।

गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥304॥

हे तात! कर्म से, वचन से और मन से निर्मल तुम्हारे समान तुम्हीं हो। गुरुजनों के समाज में और ऐसे कुसमय में छोटे भाई के गुण किस तरह कहे जा सकते हैं?॥304॥

चौपाई :

जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसंध पितु कीरति प्रीती॥

समठ समाजु लाज गुरजन की। उदासीन हित अनहित मन की॥1॥

हे तात! तुम सूर्यकुल की रीति को, सत्यप्रतिज्ञ पिताजी की कीर्ति और प्रीति को, समय, समाज और गुरुजनों की लज्जा (मर्यादा) को तथा उदासीन, मित्र और शत्रु सबके मन की बात को जानते हो॥1॥

तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥

मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहँ अवसर अनुसार॥2॥

तुमको सबके कर्मों (कर्तव्यों) का और अपने तथा मेरे परम हितकारी धर्म का पता है। यद्यपि मुझे तुम्हारा सब प्रकार से भरोसा है, तथापि मैं समय के अनुसार कुछ कहता हूँ॥2॥

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपाँ सँभारी॥

नतरु प्रजा परिजन परिवारु। हमहि सहित सबु होत खुआरु॥3॥

हे तात! पिताजी के बिना (उनकी अनुपस्थिति में) हमारी बात केवल गुरुवंश की कृपा ने ही सम्हाल रखी है, नहीं तो हमारे समेत प्रजा, कुटुम्ब, परिवार सभी बर्बाद हो जाते॥3॥

जौं बिनु अवसर अथवँ दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू॥

तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा॥4॥

यदि बिना समय के (सन्ध्या से पूर्व ही) सूर्य अस्त हो जाए, तो कहो जगत में किस को क्लेश न होगा? हे तात! उसी प्रकार का उत्पात विधाता ने यह (पिता की असामयिक मृत्यु) किया है। पर मुनि महाराज ने तथा मिथिलेश्वर ने सबको बचा लिया॥4॥

दोहा :

राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।

गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥305॥

राज्य का सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथ्वी, धन, घर- इन सभी का पालन (रक्षण) गुरुजी का प्रभाव (सामर्थ्य) करेगा और परिणाम शुभ होगा॥305॥

चौपाई :

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुर प्रसाद रखवारा॥

मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥1॥

गुरुजी का प्रसाद (अनुग्रह) ही घर में और वन में समाज सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक है। माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा (का पालन) समस्त धर्म रूपी पृथ्वी को धारण करने में शेषजी के समान है॥1॥

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥

साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी॥2॥

हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुल के रक्षक बनो। साधक के लिए यह एक ही (आज्ञा पालन रूपी साधना) सम्पूर्ण सिद्धियों की देने वाली, कीर्तिमयी, सद्गतिमयी और ऐश्वर्यमयी त्रिवेणी है॥2॥

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥

बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बडि कठिनाई॥3॥

इसे विचारकर भारी संकट सहकर भी प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई! मेरी विपत्ति सभी ने बाँट ली है, परन्तु तुमको तो अवधि (चौदह वर्ष) तक बड़ी कठिनाई है (सबसे अधिक दुःख है)॥3॥

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥

होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए। ओडिअहिं हाथ असनिहु के धाए॥4॥

तुमको कोमल जानकर भी मैं कठोर (वियोग की बात) कह रहा हूँ। हे तात! बुरे समय में मेरे लिए यह कोई अनुचित बात नहीं है। कुठौर (कुअवसर) में श्रेष्ठ भाई ही सहायक होते हैं। वज्र के आघात भी हाथ से ही रोके जाते हैं॥4॥

दोहा :

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिबु होइ।

तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ॥306॥

सेवक हाथ, पैर और नेत्रों के समान और स्वामी मुख के समान होना चाहिए। तुलसीदासजी कहते हैं कि सेवक-स्वामी की ऐसी प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी सराहना करते हैं॥306॥

चौपाई :

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअँ जनु सानी॥

सिथिल समाज सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी॥1॥

श्री रघुनाथजी की वाणी सुनकर, जो मानो प्रेम रूपी समुद्र के (मंथन से निकले हुए) अमृत में सनी हुई थी, सारा समाज शिथिल हो गया, सबको प्रेम समाधि लग गई। यह दशा देखकर सरस्वती ने चुप साध ली॥1॥

भरतहि भयउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू॥

मुख प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू॥2॥

भरतजी को परम संतोष हुआ। स्वामी के सम्मुख (अनुकूल) होते ही उनके दुःख और दोषों ने मुँह मोड़ लिया (वे उन्हें छोड़कर भाग गए)। उनका मुख प्रसन्न हो गया और मन का विषाद मिट गया। मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गई हो॥2॥

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥

नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेऊँ लाहु जग जनमु भए को॥3॥

उन्होंने फिर प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमलों को जोड़कर वे बोले- हे नाथ! मुझे आपके साथ जाने का सुख प्राप्त हो गया और मैंने जगत में जन्म लेने का लाभ भी पा लिया॥3॥

अब कृपाल जस आयसु होई। करों सीस धरि सादर सोई॥

सो अवलंब देव मोहि देई। अवधि पारु पावों जेहि सेई॥4॥

हे कृपालु! अब जैसी आज्ञा हो, उसी को मैं सिर पर धर कर आदरपूर्वक करूँ! परन्तु देव! आप मुझे वह अवलम्बन (कोई सहारा) दें, जिसकी सेवा कर मैं अवधि का पार पा जाऊँ (अवधि को बिता दूँ)॥4॥

दोहा :

देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।

आनेऊँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥307॥

हे देव! स्वामी (आप) के अभिषेक के लिए गुरुजी की आज्ञा पाकर मैं सब तीर्थों का जल लेता आया हूँ, उसके लिए क्या आज्ञा होती है?॥307॥

चौपाई :

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभयँ सकोच जात कहि नाहीं॥

कहहु तात प्रभु आयसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई॥1॥

मेरे मन में एक और बड़ा मनोरथ है, जो भय और संकोच के कारण कहा नहीं जाता। (श्री रामचन्द्रजी ने कहा-) हे भाई! कहो। तब प्रभु की आज्ञा पाकर भरतजी स्नेहपूर्ण सुंदर वाणी बोले-॥1॥

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥

प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयसु होइ त आवौं देखी॥2॥

आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थान, तीर्थ, वन, पक्षी-पशु, तालाब-नदी, झरने और पर्वतों के समूह तथा विशेष कर प्रभु (आप) के चरण चिह्नों से अंकित भूमि को देख आऊँ॥2॥

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगतभय कानन चरहू॥

मुनि प्रसाद बनू मंगल दाता। पावन परम सुहावन भाता॥3॥

(श्री रघुनाथजी बोले-) अवश्य ही अत्रि ऋषि की आज्ञा को सिर पर धारण करो (उनसे पूछकर वे जैसा कहें वैसा करो) और निर्भय होकर वन में विचरो। हे भाई! अत्रि मुनि के प्रसाद से वन मंगलों का देने वाला, परम पवित्र और अत्यन्त सुंदर है-॥3॥

रिषिनायकु जहँ आयसु देहीं। राखेहु तीरथ जलु थल तेहीं॥

सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥4॥

और ऋषियों के प्रमुख अत्रिजी जहाँ आज्ञा दें, वहीं (लाया हुआ) तीर्थों का जल स्थापित कर देना। प्रभु के वचन सुनकर भरतजी ने सुख पाया और आनंदित होकर मुनि अत्रिजी के चरणकमलों में सिर नवाया॥4॥

दोहा :

भरत राम संबादु सुनि सकल सुमंगल मूल।

सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरु फूल॥308॥

समस्त सुंदर मंगलों का मूल भरतजी और श्री रामचन्द्रजी का संवाद सुनकर स्वार्थी देवता

रघुकुल की सराहना करके कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे॥308॥

चौपाई :

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआई॥

मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयउ उछाहू॥1॥

'भरतजी धन्य हैं, स्वामी श्री रामजी की जय हो!' ऐसा कहते हुए देवता बलपूर्वक (अत्यधिक) हर्षित होने लगे। भरतजी के वचन सुनकर मुनि वशिष्ठजी, मिथिलापति जनकजी और सभा में सब किसी को बड़ा उत्साह (आनंद) हुआ॥1॥

भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू॥

सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अति पावन पावन॥2॥

भरतजी और श्री रामचन्द्रजी के गुण समूह की तथा प्रेम की विदेहराज जनकजी पुलकित होकर प्रशंसा कर रहे हैं। सेवक और स्वामी दोनों का सुंदर स्वभाव है। इनके नियम और प्रेम पवित्र को भी अत्यन्त पवित्र करने वाले हैं॥2॥

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे॥

सुनि सुनि राम भरत संबादू। दुहु समाज हियँ हरषु विषादू॥3

मंत्री और सभासद सभी प्रेममुग्ध होकर अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सराहना करने लगे। श्री रामचन्द्रजी और भरतजी का संवाद सुन-सुनकर दोनों समाजों के हृदयों में हर्ष और विषाद (भरतजी के सेवा धर्म को देखकर हर्ष और रामवियोग की सम्भावना से विषाद) दोनों हुए॥3॥

राम मातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधीं रानी॥

एक कहहिं रघुबीर बड़ाई। एक सराहत भरत भलाई॥4॥

श्री रामचन्द्रजी की माता कौसल्याजी ने दुःख और सुख को समान जानकर श्री रामजी के गुण कहकर दूसरी रानियों को धैर्य बँधाया। कोई श्री रामजी की बड़ाई (बड़प्पन) की चर्चा कर रहे हैं, तो कोई भरतजी के अच्छेपन की सराहना करते हैं॥4॥

दोहा :

अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।

राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥309॥

तब अत्रिजी ने भरतजी से कहा- इस पर्वत के समीप ही एक सुंदर कुआँ है। इस पवित्र, अनुपम और अमृत जैसे तीर्थजल को उसी में स्थापित कर दीजिए॥309॥

चौपाई :

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥

सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गए जहाँ कूप अगाधू॥1॥

भरतजी ने अत्रिमुनि की आज्ञा पाकर जल के सब पात्र रवाना कर दिए और छोटे भाई शत्रुघ्न,
अत्रि मुनि तथा अन्य साधु-संतों सहित आप वहाँ गए, जहाँ वह अथाह कुआँ था॥1॥

पावन पाथ पुन्यथल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥

तात अनादि सिद्ध थल एहू। लोपेठ काल बिदित नहिं केहू॥2॥

और उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल में रख दिया। तब अत्रि ऋषि ने प्रेम से आनंदित
होकर ऐसा कहा- हे तात! यह अनादि सिद्धस्थल है। कालक्रम से यह लोप हो गया था, इसलिए
किसी को इसका पता नहीं था॥2॥

तब सेवकन्ह सरस थलुदेखा। कीन्ह सुजल हित कूप बिसेषा॥

बिधि बस भयठ बिस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥3॥

तब (भरतजी के) सेवकों ने उस जलयुक्त स्थान को देखा और उस सुंदर (तीर्थों के) जल के लिए
एक खास कुआँ बना लिया। दैवयोग से विश्वभर का उपकार हो गया। धर्म का विचार जो
अत्यन्त अगम था, वह (इस कूप के प्रभाव से) सुगम हो गया॥3॥

भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥

प्रेम सनेम निमज्जत प्राणी। होइहहिं बिमल करम मन बानी॥4॥

अब इसको लोग भरतकूप कहेंगे। तीर्थों के जल के संयोग से तो यह अत्यन्त ही पवित्र हो
गया। इसमें प्रेमपूर्वक नियम से स्नान करने पर प्राणी मन, वचन और कर्म से निर्मल हो
जाएँगे॥4॥

दोहा :

कहत कूप महिमा सकल गए जहाँ रघुराठ।

अत्रि सुनायठ रघुबरहि तीरथ पुन्य प्रभाठ॥310॥

कूप की महिमा कहते हुए सब लोग वहाँ गए जहाँ श्री रघुनाथजी थे। श्री रघुनाथजी को अत्रिजी
ने उस तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया॥310॥

चौपाई :

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयठ भोरु निसि सो सुख बीती॥

नित्य निबाहि भरत दोठ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥1॥

प्रेमपूर्वक धर्म के इतिहास कहते वह रात सुख से बीत गई और सबेरा हो गया। भरत-शत्रुघ्न
दोनों भाई नित्यक्रिया पूरी करके, श्री रामजी, अत्रिजी और गुरु वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर,॥1॥

सहित समाज साज सब सादें। चले राम बन अटन पयादें॥

कोमल चरन चलत बिनु पनहीं। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनहीं॥2॥

समाज सहित सब सादे साज से श्री रामजी के वन में भ्रमण (प्रदक्षिणा) करने के लिए पैदल ही चले। कोमल चरण हैं और बिना जूते के चल रहे हैं, यह देखकर पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गई॥2॥

कुस कंटक काँकरीं कुराईं। कटुक कठोर कुबस्तु दुराईं॥

महि मंजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे॥3॥

कुश, काँटे, कंकड़ी, दरारों आदि कड़वी, कठोर और बुरी वस्तुओं को छिपाकर पृथ्वी ने सुंदर और कोमल मार्ग कर दिए। सुखों को साथ लिए (सुखदायक) शीतल, मंद, सुगंध हवा चलने लगी॥3॥

सुमन बरषि सुर घन करि छाहीं। बिटप फूलि फलि तृण मृदुताहीं॥

मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी॥4॥

रास्ते में देवता फूल बरसाकर, बादल छाया करके, वृक्ष फूल-फलकर, तृण अपनी कोमलता से, मृग (पशु) देखकर और पक्षी सुंदर वाणी बोलकर सभी भरतजी को श्री रामचन्द्रजी के प्यारे जानकर उनकी सेवा करने लगे॥4॥

दोहा :

सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु राम कहत जमुहात।

राम प्रानप्रिय भरत कहँ यह न होइ बडि बात॥311॥

जब एक साधारण मनुष्य को भी (आलस्य से) जँभाई लेते समय 'राम' कह देने से ही सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं, तब श्री रामचन्द्रजी के प्राण प्यारे भरतजी के लिए यह कोई बड़ी (आश्चर्य की) बात नहीं है॥311॥

चौपाई :

एहि बिधि भरतु फिरत बन माहीं। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥

पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृण गिरि बन बागा॥1॥

इस प्रकार भरतजी वन में फिर रहे हैं। उनके नियम और प्रेम को देखकर मुनि भी सकुचा जाते हैं। पवित्र जल के स्थान (नदी, बावली, कुंड आदि) पृथ्वी के पृथक-पृथक भाग, पक्षी, पशु, वृक्ष, तृण (घास), पर्वत, वन और बगीचे-॥1॥

चारु बिचित्र पबित्र बिसेषी। बूझत भरतु दिव्य सब देखी॥

सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुण पुन्य प्रभाऊ॥2॥

सभी विशेष रूप से सुंदर, विचित्र, पवित्र और दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और उनका प्रश्न सुनकर ऋषिराज अत्रिजी प्रसन्न मन से सबके कारण, नाम, गुण और पुण्य प्रभाव को कहते हैं॥

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई॥3॥

भरतजी कहीं स्नान करते हैं, कहीं प्रणाम करते हैं, कहीं मनोहर स्थानों के दर्शन करते हैं और कहीं मुनि अत्रिजी की आज्ञा पाकर बैठकर, सीताजी सहित श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों का स्मरण करते हैं॥3॥ तो इसमें लाभ अधिक और हानि कम प्रतीत हुई, परन्तु रानियों को दुःख-सुख समान ही थे (राम-लक्ष्मण वन में रहें या भरत-शत्रुघ्न, दो पुत्रों का वियोग तो रहेगा ही), यह समझकर वे सब रोने लगीं॥3॥

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा॥

फिरहिं गएँ दिनु पहर अढाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥4॥

भरतजी के स्वभाव, प्रेम और सुंदर सेवाभाव को देखकर वनदेवता आनंदित होकर आशीर्वाद देते हैं। यों घूम-फिरकर ढाई पहर दिन बीतने पर लौट पड़ते हैं और आकर प्रभु श्री रघुनाथजी के चरणकमलों का दर्शन करते हैं॥4॥

दोहा :

देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माझ।

कहत सुनत हरि हर सुजसु गयउ दिवसु भइ साँझ॥312॥

भरतजी ने पाँच दिन में सब तीर्थ स्थानों के दर्शन कर लिए। भगवान विष्णु और महादेवजी का सुंदर यश कहते-सुनते वह (पाँचवाँ) दिन भी बीत गया, संध्या हो गई॥312॥

चौपाई :

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुति राजू॥

भल दिन आजु जानि मन माहीं। रामु कृपाल कहत सकुचाहीं॥1॥

(अगले छठे दिन) सबेरे स्नान करके भरतजी, ब्राह्मण, राजा जनक और सारा समाज आ जुटा। आज सबको विदा करने के लिए अच्छा दिन है, यह मन में जानकर भी कृपालु श्री रामजी कहने में सकुचा रहे हैं॥1॥

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी॥

शील सराहि सभा सब सोची। कहूँ न राम सम स्वामि सँकोची॥2॥

श्री रामचन्द्रजी ने गुरु वशिष्ठजी, राजा जनकजी, भरतजी और सारी सभा की ओर देखा, किन्तु फिर सकुचाकर दृष्टि फेरकर वे पृथ्वी की ओर ताकने लगे। सभा उनके शील की सराहना करके सोचती है कि श्री रामचन्द्रजी के समान संकोची स्वामी कहीं नहीं है॥2॥

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखीं नाथ सकल रुचि मोरी॥3॥

सुजान भरतजी श्री रामचन्द्रजी का रुख देखकर प्रेमपूर्वक उठकर, विशेष रूप से धीरज धारण कर दण्डवत करके हाथ जोड़कर कहने लगे- हे नाथ! आपने मेरी सभी रुचियाँ रखीं॥3॥

मोहि लागि सहेठ सबहिं संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाईँ मोहि देठ रजाई। सेवों अवध अवधि भरि जाई॥4॥

मेरे लिए सब लोगों ने संताप सहा और आपने भी बहुत प्रकार से दुःख पाया। अब स्वामी मुझे आज्ञा दें। मैं जाकर अवधि भर (चौदह वर्ष तक) अवध का सेवन करूँ॥4॥

दोहा :

जेहिं उपाय पुनि पाय जनु देखै दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लागि कोसलपाल कृपाल॥313॥

हे दीनदयालु! जिस उपाय से यह दास फिर चरणों का दर्शन करे- हे कोसलाधीश! हे कृपालु! अवधिभर के लिए मुझे वही शिक्षा दीजिए॥313॥

चौपाई :

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईँ। सब सुचि सरस सनेहँ सगाईँ॥
राठर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू॥1॥

हे गोसाईँ! आपके प्रेम और संबंध में अवधपुर वासी, कुटुम्बी और प्रजा सभी पवित्र और रस (आनंद) से युक्त हैं। आपके लिए भवदुःख (जन्म-मरण के दुःख) की ज्वाला में जलना भी अच्छा है और प्रभु (आप) के बिना परमपद (मोक्ष) का लाभ भी व्यर्थ है॥1॥

स्वामि सुजानु जानि सब ही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥
प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देठ दुहू दिसि ओर निबाहू॥2॥

हे स्वामी! आप सुजान हैं, सभी के हृदय की और मुझ सेवक के मन की रुचि, लालसा (अभिलाषा) और रहनी जानकर, हे प्रणतपाल! आप सब किसी का पालन करेंगे और हे देव! दोनों ओर अन्त तक निबाहेंगे॥2॥

अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो। किँ बिचारु न सोचु खरो सो॥
आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू॥3॥

मुझे सब प्रकार से ऐसा बहुत बड़ा भरोसा है। विचार करने पर तिनके के बराबर (जरा सा) भी सोच नहीं रह जाता! मेरी दीनता और स्वामी का स्नेह दोनों ने मिलकर मुझे जबर्दस्ती ढीठ बना दिया है॥3॥

यह बड़ दोष दूर करि स्वामी। तजि सकोच सिखइअ अनुगामी॥

भरत बिनय सुनि सबहिं प्रसंसी। खीर नीर बिबरन गति हंसी॥4॥

हे स्वामी! इस बड़े दोष को दूर करके संकोच त्याग कर मुझ सेवक को शिक्षा दीजिए। दूध और जल को अलग-अलग करने में हंसिनी की सी गति वाली भरतजी की विनती सुनकर उसकी सभी ने प्रशंसा की॥4॥

दोहा :

दीनबंधु सुनि बंधु के वचन दीन छलहीन।

देस काल अवसर सरिस बोले रामु प्रबीन॥314॥

दीनबन्धु और परम चतुर श्री रामजी ने भाई भरतजी के दीन और छलरहित वचन सुनकर देश, काल और अवसर के अनुकूल वचन बोले-॥314॥

चौपाई :

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहि नृपहि घर बन की॥

माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहूँ न कलेसू॥1॥

हे तात! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिंता गुरु वशिष्ठजी और महाराज जनकजी को है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्रजी और मिथिलापति जनकजी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न नें भी क्लेश नहीं है॥1॥

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु॥

पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई॥2॥

मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिताजी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई (उनके व्रत की रक्षा) से ही लोक और वेद दोनों में भला है॥2॥

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहूँ कुमग पग परहिं न खालें॥

अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई॥3॥

गुरु, पिता, माता और स्वामी की शिक्षा (आज्ञा) का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने पर पैर गड़ढे में नहीं पड़ता (पतन नहीं होता)। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधिभर उसका पालन करो॥3॥

देसु कोसु परिजन परिवारु। गुर पद रजहिं लाग छरुभारु॥

तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी॥4॥

देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरुजी की चरण रज पर है। तुम तो

मुनि वशिष्ठजी, माताओं और मन्त्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन (रक्षा) भर करते रहना॥4॥

दोहा :

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहँ एक।

पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥315॥

तुलसीदासजी कहते हैं- (श्री रामजी ने कहा-) मुखिया मुख के समान होना चाहिए, जो खाने-पीने को तो एक (अकेला) है, परन्तु विवेकपूर्वक सब अंगों का पालन-पोषण करता है॥315॥

चौपाई :

राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥

बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥1॥

राजधर्म का सर्वस्व (सार) भी इतना ही है। जैसे मन के भीतर मनोरथ छिपा रहता है। श्री रघुनाथजी ने भाई भरत को बहुत प्रकार से समझाया, परन्तु कोई अवलम्बन पाए बिना उनके मन में न संतोष हुआ, न शान्ति॥1॥

भरत सील गुर सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू॥

प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥2॥

इधर तो भरतजी का शील (प्रेम) और उधर गुरुजनों, मंत्रियों तथा समाज की उपस्थिति! यह देखकर श्री रघुनाथजी संकोच तथा स्नेह के विशेष वशीभूत हो गए (अर्थात् भरतजी के प्रेमवश उन्हें पाँवरी देना चाहते हैं, किन्तु साथ ही गुरु आदि का संकोच भी होता है।) आखिर (भरतजी के प्रेमवश) प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने कृपा कर खड़ाऊँ दे दीं और भरतजी ने उन्हें आदरपूर्वक सिर पर धारण कर लिया॥2॥

चरनपीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥

संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के॥3॥

करुणानिधान श्री रामचंद्रजी के दोनों खड़ाऊँ प्रजा के प्राणों की रक्षा के लिए मानो दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए मानो डिब्बा है और जीव के साधन के लिए मानो राम-नाम के दो अक्षर हैं॥3॥

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥

भरत मुदित अवलंब लहे तैं। अस सुख जस सिय रामु रहे तैं॥4॥

रघुकुल (की रक्षा) के लिए दो क्वाड हैं। कुशल (श्रेष्ठ) कर्म करने के लिए दो हाथ की भाँति (सहायक) हैं और सेवा रूपी श्रेष्ठ धर्म के सुझाने के लिए निर्मल नेत्र हैं। भरतजी इस अवलंब के

मिल जाने से परम आनंदित हैं। उन्हें ऐसा ही सुख हुआ, जैसा श्री सीता-रामजी के रहने से होता है॥4॥

दोहा :

मागेठ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।

लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसरु पाइ॥316॥

भरतजी ने प्रणाम करके विदा माँगी, तब श्री रामचंद्रजी ने उन्हें हृदय से लगा लिया। इधर कुटिल इंद्र ने बुरा मौका पाकर लोगों का उच्चाटन कर दिया॥316॥

चौपाई :

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की॥

नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा॥1॥

वह कुचाल भी सबके लिए हितकर हो गई। अवधि की आशा के समान ही वह जीवन के लिए संजीवनी हो गई। नहीं तो (उच्चाटन न होता तो) लक्ष्मणजी, सीताजी और श्री रामचंद्रजी के वियोग रूपी बुरे रोग से सब लोग घबड़ाकर (हाय-हाय करके) मर ही जाते॥1॥

रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥

भँटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेम रसु न कहि न परत सो॥2॥

श्री रामजी की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की सेना जो लूटने आई थी, वही गुणदायक (हितकरी) और रक्षक बन गई। श्री रामजी भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे हैं। श्री रामजी के प्रेम का वह रस (आनंद) कहते नहीं बनता॥2॥

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा॥

बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी॥3॥

तन, मन और वचन तीनों में प्रेम उमड़ पड़ा। धीरज की धुरी को धारण करने वाले श्री रघुनाथजी ने भी धीरज त्याग दिया। वे कमल सदृश नेत्रों से (प्रेमाश्रुओं का) जल बहाने लगे। उनकी यह दशा देखकर देवताओं की सभा (समाज) दुःखी हो गई॥3॥

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसँ कनक से॥

जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥4॥

मुनिगण, गुरु वशिष्ठजी और जनकजी सरीखे धीरधुरन्धर जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्माजी ने निर्लेप ही रचा और जो जगत् रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही (जगत् में रहते हुए भी जगत् से अनासक्त) पैदा हुए॥4॥

दोहा :

तेठ बिलोकि रघुबर भरत प्रीति अनूप अपार।

भए मगन मन तन बचन सहित बिराग बिचार॥317॥

वे भी श्री रामजी और भरतजी के उपमारहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन, मन, वचन से उस प्रेम में मग्न हो गए॥317॥

चौपाई :

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी॥

बरनत रघुबर भरत बियोगू। सुनि कठोर कबि जानिहि लोगू॥1॥

जहाँ जनकजी और गुरु वशिष्ठजी की बुद्धि की गति कुण्ठित हो, उस दिव्य प्रेम को प्राकृत (लौकिक) कहने में बड़ा दोष है। श्री रामचंद्रजी और भरतजी के वियोग का वर्णन करते सुनकर लोग कवि को कठोर हृदय समझेंगे॥1॥

सो सकोच रसु अकथ सुबानी। समठ सनेहु सुमिरि सकुचानी॥

भैंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥2॥

वह संकोच रस अकथनीय है। अतएव कवि की सुंदर वाणी उस समय उसके प्रेम को स्मरण करके सकुचा गई। भरतजी को भेंट कर श्री रघुनाथजी ने उनको समझाया। फिर हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगा लिया॥2॥

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई॥

सुनि दारुन दुखु दुहँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा॥3॥

सेवक और मंत्री भरतजी का रुख पाकर सब अपने-अपने काम में जा लगे। यह सुनकर दोनों समाजों में दारुण दुःख छा गया। वे चलने की तैयारियाँ करने लगे॥3॥

प्रभु पद पदुम बंदि दोठ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥

मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी॥4॥

प्रभु के चरणकमलों की वंदना करके तथा श्री रामजी की आज्ञा को सिर पर रखकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई चले। मुनि, तपस्वी और वनदेवता सबका बार-बार सम्मान करके उनकी विनती की॥4॥

दोहा :

लखनहि भैंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।

चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥318॥

फिर लक्ष्मणजी को क्रमशः भेंटकर तथा प्रणाम करके और सीताजी के चरणों की धूलि को सिर पर धारण करके और समस्त मंगलों के मूल आशीर्वाद सुनकर वे प्रेमसहित चले॥318॥

चौपाई :

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥

देव दया बस बड़ दुखु पायउ। सहित समाज काननहिं आयउ॥1॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत श्री रामजी ने राजा जनकजी को सिर नवाकर उनकी बहुत प्रकार से विनती और बड़ाई की (और कहा-) हे देव! दयावश आपने बहुत दुःख पाया। आप समाज सहित वन में आए॥1॥

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥

मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥2॥

अब आशीर्वाद देकर नगर को पधारिए। यह सुन राजा जनकजी ने धीरज धरकर गमन किया। फिर श्री रामचंद्रजी ने मुनि, ब्राह्मण और साधुओं को विष्णु और शिव के समान जानकर सम्मान करके उनको विदा किया॥2॥

सासु समीप गए दोठ भाई। फिरे बंदि पग आसिष पाई॥

कौंसिक बामदेव जाबाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥3॥

तब श्री राम-लक्ष्मण दोनों भाई सास (सुनयनाजी) के पास गए और उनके चरणों की वंदना करके आशीर्वाद पाकर लौट आए। फिर विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि और शुभ आचरण वाले कुटुम्बी, नगर निवासी और मंत्री-॥3॥

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥

नारि पुरुष लघु मध्य बड़ेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥4॥

सबको छोटे भाई लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी ने यथायोग्य विनय एवं प्रणाम करके विदा किया। कृपानिधान श्री रामचंद्रजी ने छोटे, मध्यम (मझले) और बड़े सभी श्रेणी के स्त्री-पुरुषों का सम्मान करके उनको लौटाया॥4॥

दोहा :

भरत मातु पद बंदि प्रभु सुचि सनेहँ मिलि भेंटि।

बिदा कीन्ह सजि पालकी सकुच सोच सब मेटि॥319॥

भरत की माता कैकेयी के चरणों की वंदना करके प्रभु श्री रामचंद्रजी ने पवित्र (निश्छल) प्रेम के साथ उनसे मिल-भेंट कर तथा उनके सारे संकोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर उनको विदा किया॥319॥

चौपाई :

परिजन मातु पितहि मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥

करि प्रनामु भैंटीं सब सासू। प्रीति कहत कबि हियँ न हुलासू॥1॥

प्राणप्रिय पति श्री रामचंद्रजी के साथ पवित्र प्रेम करने वाली सीताजी नैहर के कुटुम्बियों से तथा माता-पिता से मिलकर लौट आईं। फिर प्रणाम करके सब सासुओं से गले लगकर मिलीं। उनके प्रेम का वर्णन करने के लिए कवि के हृदय में हुलास (उत्साह) नहीं होता॥1॥

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥

रघुपति पटु पालकीं मगाई। करि प्रबोध सब मातु चढाई॥2॥

उनकी शिक्षा सुनकर और मनचाहा आशीर्वाद पाकर सीताजी सासुओं तथा माता-पिता दोनों ओर की प्रीति में समाई (बहुत देर तक निमग्न) रहीं! (तब) श्री रघुनाथजी ने सुंदर पालकियाँ मँगवाई और सब माताओं को आश्वासन देकर उन पर चढ़ाया॥2॥

बार बार हिलि मिलि दुहु भाईं। सम सनेहँ जननीं पहुँचाईं॥

साजि बाजि गज बाहन नाना। भरत भूप दल कीन्ह पयाना॥3॥

दोनों भाइयों ने माताओं से समान प्रेम से बार-बार मिल-जुलकर उनको पहुँचाया। भरतजी और राजा जनकजी के दलों ने घोड़े, हाथी और अनेकों तरह की सवारियाँ सजाकर प्रस्थान किया॥3॥

हृदयँ रामु सिय लखन समेता। चले जाहिं सब लोग अचेता॥

बसह बाजि गज पसु हियँ हारें। चले जाहिं परबस मन मारें॥4॥

सीताजी एवं लक्ष्मणजी सहित श्री रामचंद्रजी को हृदय में रखकर सब लोग बेसुध हुए चले जा रहे हैं। बैल-घोड़े, हाथी आदि पशु हृदय में हारे (शिथिल) हुए परवश मन मारे चले जा रहे हैं॥4॥

दोहा :

गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।

फिरे हरष बिसमय सहित आए परन निकेत॥320॥

गुरु वशिष्ठजी और गुरु पत्नी अरुन्धतीजी के चरणों की वंदना करके सीताजी और लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्री रामचंद्रजी हर्ष और विषाद के साथ लौटकर पर्णकुटी पर आए॥320॥

चौपाई :

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥

कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥1॥

फिर सम्मान करके निषादराज को विदा किया। वह चला तो सही, किन्तु उसके हृदय में विरह का भारी विषाद था। फिर श्री रामजी ने कोल, किरात, भील आदि वनवासी लोगों को लौटाया। वे सब जोहार-जोहार कर (वंदना कर-करके) लौटे॥1॥

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं॥

भरत सनेह सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी॥2॥

प्रभु श्री रामचंद्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी बड़ की छाया में बैठकर प्रियजन एवं परिवार के वियोग से दुःखी हो रहे हैं। भरतजी के स्नेह, स्वभाव और सुंदर वाणी को बखान-बखान कर वे प्रिय पत्नी सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजी से कहने लगे॥2॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥

तेहि अवसर खम मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥3॥

श्री रामचंद्रजी ने प्रेम के वश होकर भरतजी के वचन, मन, कर्म की प्रीति तथा विश्वास का अपने श्रीमुख से वर्णन किया। उस समय पक्षी, पशु और जल की मछलियाँ, चित्रकूट के सभी चेतन और जड़ जीव उदास हो गए॥3॥

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥

प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥4॥

श्री रघुनाथजी की दशा देखकर देवताओं ने उन पर फूल बरसाकर अपनी घर-घर की दशा कही (दुखड़ा सुनाया)। प्रभु श्री रामचंद्रजी ने उन्हें प्रणाम कर आश्वासन दिया। तब वे प्रसन्न होकर चले, मन में जरा सा भी डर न रहा॥4॥

भरतजी का अयोध्या लौटना, भरतजी द्वारा पादुका की स्थापना, नन्दिग्राम में निवास और श्री भरतजी के चरित्र श्रवण की महिमा

दोहा :

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।

भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥321॥

छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजी समेत प्रभु श्री रामचंद्रजी पर्णकुटी में ऐसे सुशोभित हो रहे हैं मानो वैराग्य, भक्ति और ज्ञान शरीर धारण कर के शोभित हो रहे हों॥321॥

चौपाई :

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरहँ सबु साजु बिहालू।

प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं। सब चुपचाप चले मग जाहीं॥1॥

मुनि, ब्राह्मण, गुरु वशिष्ठजी, भरतजी और राजा जनकजी सारा समाज श्री रामचन्द्रजी के विरह में विह्वल है। प्रभु के गुण समूहों का मन में स्मरण करते हुए सब लोग मार्ग में चुपचाप चले जा रहे हैं॥1॥

जमुना उतरि पार सबु भयऊ। सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥

उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू॥2॥

(पहले दिन) सब लोग यमुनाजी उतरकर पार हुए। वह दिन बिना भोजन के ही बीत गया। दूसरा मुकाम गंगाजी उतरकर (गंगापार श्रृंगवेरपुर में) हुआ। वहाँ राम सखा निषादराज ने सब सुप्रबंध कर दिया॥2॥

सई उतरि गोमती नहाए। चौथे दिवस अवधपुर आए॥

जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥3॥

फिर सई उतरकर गोमतीजी में स्नान किया और चौथे दिन सब अयोध्याजी जा पहुँचे। जनकजी चार दिन अयोध्याजी में रहे और राजकाज एवं सब साज-सामान को सम्हालकर,॥3॥

सौँपि सचिव गुर भरतहिं राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥

नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी॥4॥

तथा मंत्री, गुरुजी तथा भरतजी को राज्य सौँपकर, सारा साज-सामान ठीक करके तिरहुत को चले। नगर के स्त्री-पुरुष गुरुजी की शिक्षा मानकर श्री रामजी की राजधानी अयोध्याजी में सुखपूर्वक रहने लगे॥4॥

दोहा :

राम दरस लागि लोग सब करत नेम उपवास।

तजि तजि भूषण भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥322॥

सब लोग श्री रामचन्द्रजी के दर्शन के लिए नियम और उपवास करने लगे। वे भूषण और भोग-सुखों को छोड़-छाड़कर अवधि की आशा पर जी रहे हैं॥322॥

चौपाई :

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥

पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौँपी सकल मातु सेवकाई॥1॥

भरतजी ने मंत्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर उद्यत किया। वे सब सीख पाकर अपने-अपने काम में लग गए। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी को बुलाकर शिक्षा दी और सब माताओं की सेवा उनको सौँपी॥1॥

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे॥

ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सँकोचू॥2॥

ब्राह्मणों को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम कर अवस्था के अनुसार विनय और निहोरा किया कि आप लोग ऊँचा-नीचा (छोटा-बड़ा), अच्छा-मन्दा जो कुछ भी कार्य हो, उसके लिए आज्ञा दीजिएगा। संकोच न कीजिएगा॥2॥

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥

सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥3॥

भरतजी ने फिर परिवार के लोगों को, नागरिकों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर, उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया। फिर छोटे भाई शत्रुघ्नजी सहित वे गुरुजी के घर गए और दंडवत करके हाथ जोड़कर बोले-॥3॥

आयसु होइ त रहौं सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा॥

समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई॥4॥

आज्ञा हो तो मैं नियमपूर्वक रहूँ! मुनि वशिष्ठजी पुलकित शरीर हो प्रेम के साथ बोले- हे भरत! तुम जो कुछ समझोगे, कहोगे और करोगे, वही जगत में धर्म का सार होगा॥4॥

दोहा :

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।

सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि॥323॥

भरतजी ने यह सुनकर और शिक्षा तथा बड़ा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाया और दिन (अच्छा मुहूर्त) साधकर प्रभु की चरणपादुकाओं को निर्विघ्नतापूर्वक सिंहासन पर विराजित कराया॥323॥

चौपाई :

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥

नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥1॥

फिर श्री रामजी की माता कौसल्याजी और गुरुजी के चरणों में सिर नवाकर और प्रभु की चरणपादुकाओं की आज्ञा पाकर धर्म की धुरी धारण करने में धीर भरतजी ने नन्दिग्राम में पर्णकुटी बनाकर उसी में निवास किया॥1॥

जटाजूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥

असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥2॥

सिर पर जटाजूट और शरीर में मुनियों के (वलकल) वस्त्र धारण कर, पृथ्वी को खोदकर उसके अंदर कुश की आसनी बिछाई। भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम सभी बातों में वे ऋषियों के कठिन धर्म का प्रेम सहित आचरण करने लगे॥2॥

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी॥

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥3॥

गहने-कपड़े और अनेकों प्रकार के भोग-सुखों को मन, तन और वचन से तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया। जिस अयोध्या के राज्य को देवराज इन्द्र सिहाते थे और (जहाँ के राजा)

दशरथजी की सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे,॥3॥

तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी॥4॥

उसी अयोध्यापुरी में भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पा के बाग में भौरा। श्री रामचन्द्रजी के प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मी के विलास (भोगेश्वर्य) को वमन की भाँति त्याग देते हैं (फिर उसकी ओर ताकते भी नहीं)॥4॥

दोहा :

राम प्रेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टैंक बिबेक बिभूति॥324॥

फिर भरतजी तो (स्वयं) श्री रामचन्द्रजी के प्रेम के पात्र हैं। वे इस (भोगेश्वर्य त्याग रूप) करनी से बड़े नहीं हुए (अर्थात् उनके लिए यह कोई बड़ी बात नहीं है)। (पृथ्वी पर का जल न पीने की) टेक से चातक की और नीर-क्षीर-विवेक की विभूति (शक्ति) से हंस की भी सराहना होती है॥

324॥

चौपाई :

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम प्रेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना॥1॥

भरतजी का शरीर दिनों-दिन दुबला होता जाता है। तेज (अन्न, घृत आदि से उत्पन्न होने वाला मेद) घट रहा है। बल और मुख छबि (मुख की कान्ति अथवा शोभा) वैसी ही बनी हुई है। राम प्रेम का प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है, धर्म का दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है (अर्थात् प्रसन्न है)॥1॥

संस्कृत कोष में 'तेज' का अर्थ मेद मिलता है और यह अर्थ लेने से 'घटइ' के अर्थ में भी किसी प्रकार की खींच-तान नहीं करनी पड़ती।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम संजम नियम उपासा। नखत भरत हिय बिमल अकासा॥2॥

जैसे शरद ऋतु के प्रकाश (विकास) से जल घटता है, किन्तु बेंत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं। शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि भरतजी के हृदयरूपी निर्मल आकाश के नक्षत्र (तारागण) हैं॥2॥

ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी। स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा॥3॥

विश्वास ही (उस आकाश में) ध्रुव तारा है, चौदह वर्ष की अवधि (का ध्यान) पूर्णिमा के समान है और स्वामी श्री रामजी की सुरति (स्मृति) आकाशगंगा सरीखी प्रकाशित है। राम प्रेम ही अचल (सदा रहने वाला) और कलंकरहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (नक्षत्रों) सहित नित्य सुंदर सुशोभित है॥3॥

भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती॥

बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं। सेस गनेस गिरा गमु नाही॥4॥

भरतजी की रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल, गुण और ऐश्वर्य का वर्णन करने में सभी सुकवि सकुचाते हैं, क्योंकि वहाँ (औरों की तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वती की भी पहुँच नहीं है॥4॥

दोहा :

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।

मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति॥325॥

वे नित्य प्रति प्रभु की पादुकाओं का पूजन करते हैं, हृदय में प्रेम समाता नहीं है। पादुकाओं से आज्ञा माँग-माँगकर वे बहुत प्रकार (सब प्रकार के) राज-काज करते हैं॥325॥

चौपाई :

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं॥1॥

शरीर पुलकित है, हृदय में श्री सीता-रामजी हैं। जीभ राम नाम जप रही है, नेत्रों में प्रेम का जल भरा है। लक्ष्मणजी, श्री रामजी और सीताजी तो वन में बसते हैं, परन्तु भरतजी घर ही में रहकर तप के द्वारा शरीर को कस रहे हैं॥1॥

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥

सुनि ब्रत नेम साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥2॥

दोनों ओर की स्थिति समझकर सब लोग कहते हैं कि भरतजी सब प्रकार से सराहने योग्य हैं। उनके व्रत और नियमों को सुनकर साधु-संत भी सकुचा जाते हैं और उनकी स्थिति देखकर मुनिराज भी लज्जित होते हैं॥2॥

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥

हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥3॥

भरतजी का परम पवित्र आचरण (चरित्र) मधुर, सुंदर और आनंद-मंगलों का करने वाला है। कलियुग के कठिन पापों और क्लेशों को हरने वाला है। महामोह रूपी रात्रि को नष्ट करने के

लिए सूर्य के समान है॥3॥

पाप पुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥
जन रंजन भंजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू॥4॥

पाप समूह रूपी हाथी के लिए सिंह है। सारे संतापों के दल का नाश करने वाला है। भक्तों को आनंद देने वाला और भव के भार (संसार के दुःख) का भंजन करने वाला तथा श्री राम प्रेम रूपी चन्द्रमा का सार (अमृत) है॥4॥

छन्द :

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद्र दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

श्री सीतारामजी के प्रेमरूपी अमृत से परिपूर्ण भरतजी का जन्म यदि न होता, तो मुनियों के मन को भी अगम यम, नियम, शम, दम आदि कठिन व्रतों का आचरण कौन करता? दुःख, संताप, दरिद्रता, दम्भ आदि दोषों को अपने सुयश के बहाने कौन हरण करता? तथा कलिकाल में तुलसीदास जैसे शठों को हठपूर्वक कौन श्री रामजी के सम्मुख करता?

सोरठा :

भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥326॥

तुलसीदासजी कहते हैं- जो कोई भरतजी के चरित्र को नियम से आदरपूर्वक सुनेंगे, उनको अवश्य ही श्रीसीतारामजी के चरणों में प्रेम होगा और सांसारिक विषय रस से वैराग्य होगा॥326॥

मासपारायण, इक्कीसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने द्वितीयः
सोपानः समाप्तः। कलियुग के सम्पूर्ण पापों को विध्वंस
करने वाले श्री रामचरित मानस का यह दूसरा सोपान
समाप्त हुआ॥

(अयोध्याकाण्ड समाप्त)